मध्यस्थ दर्शन - सहअस्तित्ववाद

मानव अभ्यास दर्शन

मध्यस्थ दर्शन भाग-3

मान्यताः ज्ञान की व्यापकता एवं प्रकृति का अनादित्व
सिद्धांत : श्रम-गति-परिणाम

ए. नागराज
श्री भजनाश्रम, अमरकंटक,
जिला अनूपपुर, म.प्र. (भारत) 484886

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन

प्रकाशक :
जीवन विद्या प्रकाशन
दिव्यपथ संस्थान
अमरकंटक, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत - 484886

प्रणेता एवं लेखक :
ए. नागराज
सर्वाधिकार प्रणेता एवं लेखक के पास सुरक्षित

पूर्व संस्करण : 2004
मुद्रण : जनवरी, 2018

सहयोग राशि : 200/-

जानकारी :
Website : www.madhyasth-darshan.info
Emal : info@madhyasth-darshan.info

सदुपयोग नीति :
यह प्रकाशन, सर्वशुभ के अर्थ में है और इसका कोई व्यापारिक उद्देश्य नहीं है। इसका उपयोग एवं नकल, निजी अध्ययन के लिए उपलब्ध है। इसके अलावा किसी भी अर्थ में प्रयोग (नकल, मुद्रण, आदि) करने के लिए 'दिव्य पथ संस्थान', अमरकंटक, जिला अनूपपुर (म.प्र.), भारत - 484886 से पूर्व में लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है। यह अपेक्षित है कि इन अवधारणाओं को दूसरी जगह प्रयोग करते समय इस ग्रन्थ का पूर्ण उद्धरण (संदर्भ) दिया जायेगा।

Good Use Policy :
This publication is for 'Universal Good' and has no commercial intent. It may be used and copied for personal study purposes. Any use (copy, reproduction, etc.) for any other purpose other than stated has to be compulsorily authorized beforehand in writing by 'Divya Path Sansthan'. Amarkantak, Anuppur, (M.P.) 484886 (India). It is expected that you provide the full reference of this book when using these concepts elsewhere.

विकल्प

1. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिक-रासायनिक वस्तु केन्द्रित विचार बनाम विज्ञान विधि से मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। रहस्य मूलक आदर्शवादी चिंतन विधि से भी मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। दोनों प्रकार के वादों में मानव को जीव कहा गया है।

   विकल्प के रूप में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन विधि से मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद में मानव को ज्ञानावस्था में होने का पहचान किया एवं कराया।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव ही ज्ञाता (जानने वाला), सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व जानने-मानने योग्य वस्तु अर्थात् जानने के लिए संपूर्ण वस्तु है यही दर्शन ज्ञान है इसी के साथ जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहित सहअस्तित्व प्रमाणित होने की विधि अध्ययन गम्य हो चुकी है।

   अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान, मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद-शास्त्र रूप में अध्ययन के लिए मानव सम्मुख मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

2. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पूर्व मेरी (ए. नागराज, अग्रहार नागराज, जिला हासन, कर्नाटक प्रदेश, भारत) दीक्षा अध्यात्मवादी ज्ञान वैदिक विचार सहज उपासना कर्म से हुई।

3. वेदान्त के अनुसार ज्ञान ''ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या'' जबकि ब्रह्म से जीव जगत की उत्पत्ति बताई गई।

उपासना	:- देवी देवाताओं के संदर्भ में।
कर्म	:- स्वर्ग मिलने वाले सभी कर्म (भाषा के रूप में)
मनु धर्म शास्त्र में	:- चार वर्ण चार आश्रमों का नित्य कर्म प्रस्तावित है।
कर्म काण्डों में	:- गर्भ संस्कार से मृत्यु संस्कार तक सोलह प्रकार के कर्मकाण्ड मान्य है एवं उनके कार्यक्रम है।

   इन सबके अध्ययन से मेरे मन में प्रश्न उभरा कि -

4. सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म से उत्पन्न जीव जगत मिथ्या कैसे है? तत्कालीन वेदज्ञों एवं

विद्वानों के साथ जिज्ञासा करने के क्रम में मुझे :-

समाधि में अज्ञात के ज्ञात होने का आश्वासन मिला। शास्त्रों के समर्थन के आधार पर साधना, समाधि, संयम कार्य सम्पन्न करने की स्वीकृति हुई। मैंने साधना, समाधि, संयम की स्थिति में संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व होने, रहने के रूप में अध्ययन, अनुभव विधि से पूर्ण, समझ को प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वाङ्गमय के रूप में विकल्प प्रकट हुआ।

5. आदर्शवादी शास्त्रों एवं रहस्य मूलक ईश्वर केन्द्रित चिंतन ज्ञान तथा परंपरा के अनुसार ज्ञान अव्यक्त अनिर्वचनीय।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार – ज्ञान व्यक्त वचनीय अध्ययन विधि से बोधगम्य, व्यवहार विधि से प्रमाण सर्व सुलभ होने के रूप में स्पष्ट हुआ।

6. अस्थिरता, अनिश्चियता मूलक भौतिकवाद के अनुसार वस्तु केन्द्रित विचार में विज्ञान को ज्ञान माना जिसमें नियमों को मानव निर्मित करने की बात भी कही गयी है। इसके विकल्प में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति निश्चित सम्पूर्ण नियम प्राकृतिक होना, रहना प्रतिपादित है।

7. अस्तित्व केवल भौतिक रासायनिक न होकर भौतिक रासायनिक एवं जीवन वस्तुयें व्यापक वस्तु में अविभाज्य वर्तमान है यही ''मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र सूत्र है।

<u>सत्यापन</u>

8. मैंने जहाँ से शरीर यात्रा शुरू किया वहाँ मेरे पूर्वज वेदमूर्ति कहलाते रहे। घर-गाँव में वेद व वेद विचार संबंधित वेदान्त, उपनिषद तथा दर्शन ही भाषा ध्वनि-धुन के रूप में सुनने में आते रहे। परिवार परंपरा में वेदसम्मत उपासना, आराधना, अर्चना, स्तवन कार्य सम्पन्न होता रहा।

9. हमारे परिवार परंपरा में शीर्ष कोटि के विद्वान सेवाभावी तथा श्रमशील व्यवहाराभ्यास एवं कर्माभ्यास सहज रहा जिसमें से श्रमशीलता एवं सेवा प्रवृत्तियाँ मुझको स्वीकार हुआ। विद्वता पक्ष में प्रश्न चिह्न रहे।

10. प्रथम प्रश्न उभरा कि –

    ब्रह्म सत्य से जगत व जीव का उत्पत्ति मिथ्या कैसे?

    दूसरा प्रश्न –

    ब्रह्म ही बंधन एवं मोक्ष का कारण कैसे?

    तीसरा प्रश्न –

    शब्द प्रमाण या शब्द का धारक वाहक प्रमाण?

    आप्त वाक्य प्रमाण या आप्त वाक्य का उद्‌गाता प्रमाण?

    शास्त्र प्रमाण या प्रणेता प्रमाण?

    समीचीन परिस्थिति में एक और प्रश्न उभरा

    चौथा प्रश्न –

    भारत में स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा गठित हुआ जिसमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय चरित्र का सूत्र व्याख्या ना होते हुए जनप्रतिनिधि पात्र होने की स्वीकृति संविधान में होना।

    वोट-नोट (धन) गठबंधन से जनादेश व जन प्रतिनिधि कैसा?

    संविधान में धर्म निरपेक्षता – एक वाक्य एवं उसी के साथ अनेक जाति, संप्रदाय, समुदाय का उल्लेख होना।

    संविधान में समानता – एक वाक्य, उसी के साथ आरक्षण का उल्लेख और संविधान में उसकी प्रक्रिया होना।

    जनतंत्र – शासन में जनप्रतिनिधियों की निर्वाचन प्रक्रिया में वोट-नोट का गठबंधन होना।

    ये कैसा जनतंत्र है?

11. इन प्रश्नों के जंजाल से मुक्ति पाने को तत्कालीन विद्वान, वेदमूर्तियों, सम्माननीय ऋषि-महर्षियों के सुझाव से –

    (1) अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एकमात्र रास्ता बताये जिसे मैंने स्वीकार

किया।

(2) साधना के लिए अनुकूल स्थान के रूप में अमरकण्टक को स्वीकारा।

(3) सन् 1950 से साधना कर्म आरम्भ किया।

सन् 1960 के दशक में साधना में प्रौढ़ता आया।

(4) सन् 1970 में समाधि सम्पन्न होने की स्थिति स्वीकारने में आया। समाधि स्थिति में मेरे आशा, विचार, इच्छायें चुप रहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञात को ज्ञात होने की घटना शून्य रही यह भी समझ में आया। यह स्थिति सहज साधना हर दिन बारह (12) से अट्ठारह (18) घंटे तक होता रहा।

समाधि, धारणा, ध्यान क्रम में संयम स्वयम् स्फूर्त प्रणाली मैंने स्वीकारा। दो वर्ष बाद संयम होने से समाधि होने का प्रमाण स्वीकारा। समाधि से संयम सम्पन्न होने की क्रिया में भी 12 से 18 घण्टे लगते रहे। फलस्वरूप संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व सहज रूप में रहना, होना मुझे अनुभव हुआ। जिसका वाङ्मय ''मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र के रूप में प्रस्तुत हुआ।

12. सहअस्तित्व :- व्यापक वस्तु में संपूर्ण जड़-चैतन्य संपृक्त एवं नित्य वर्तमान होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- परमाणु में विकासक्रम के रूप में भूखे एवं अजीर्ण परमाणु एवं परमाणु में ही विकास पूर्वक तृप्त परमाणुओं के रूप में 'जीवन' होना, रहना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई 'जीवन' रूप में होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- भूखे व अजीर्ण परमाणु अणु व प्राणकोषाओं से ही सम्पूर्ण भौतिक रासायनिक प्राणावस्था रचनायें तथा परमाणु अणुओं से रचित धरती तथा अनेक धरतियों का रचना स्पष्ट होना समझ में आया।

13. अस्तित्व में भौतिक रचना रूपी धरती पर ही यौगिक विधि से रसायन तंत्र प्रक्रिया सहित प्राणकोषाओं से रचित रचनायें संपूर्ण वन-वनस्पतियों के रूप में समृद्ध होने के उपरांत प्राणकोषाओं से ही जीव शरीरों का रचना रचित होना और मानव शरीर का भी रचना सम्पन्न होना व परंपरा होना समझ में आया।

14. सहअस्तित्व में ही :- शरीर व जीवन के संयुक्त रूप में मानव परंपरा होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में, से, के लिए :- सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होना समझ में आया। यही नियतिक्रम होना समझ में आया।

15. नियति विधि :- सहअस्तित्व सहज विधि से ही :-

- पदार्थ अवस्था
- प्राण अवस्था
- जीव अवस्था
- ज्ञान अवस्था

और

- प्राण पद
- भ्रांति पद
- देव पद
- दिव्य पद
- विकास क्रम, विकास
- जागृति क्रम, जागृति

तथा जागृति सहज मानव परंपरा ही मानवत्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी नित्य वैभव होना समझ में आया। इसे मैंने सर्वशुभ सूत्र माना और सर्वमानव में शुभापेक्षा होना स्वीकारा फलस्वरूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा, संविधान, आचरण व्यवस्था सहज सूत्र व्याख्या मानव सम्मुख प्रस्तुत किया हूँ।

भूमि स्वर्ग हो, मानव देवता हो
धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो।

- ए. नागराज

मध्यस्थ दर्शन के मूल तत्व

1. उद्घोष

- जीने दो और जियो।

2. मंगल कामना

- भूमिः स्वर्गताम् यातु,
  मानवो यातु देवताम्,
  धर्मो सफलताम् यातु,
  नित्यं यातु शुभोदयम्।।

- भूमि स्वर्ग हो,
  मानव देवता हों,
  धर्म सफल हो,
  नित्य मंगल हो।।

3. अनुभव ज्ञान

- सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति, सत्ता (व्यापक) में सम्पृक्त जड़-चैतन्य इकाईयाँ अनन्त।
- व्यापक (पारगामी व पारदर्शी) सत्ता में सम्पृक्त सभी इकाईयाँ रूप, गुण, स्वभाव व धर्म सम्पन्न, त्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में है।

4. सिद्धान्त

- श्रम-गति-परिणाम।

5. उपदेश

- जाने हुए को मान लो।

  माने हुए को जान लो।

6. स्थिति

- स्थितिपूर्ण सत्ता में सम्पृक्त स्थितिशील प्रकृति।
- सहअस्तित्व नित्य वर्तमान।

7. प्रमाण

- अनुभव व्यवहार प्रयोग
- अनुभव ही प्रमाण परम

  प्रमाण ही समझ ज्ञान

  समझ ही प्रत्यक्ष,

  प्रत्यक्ष ही समाधान, कार्य-व्यवहार,

  कार्य-व्यवहार ही प्रमाण,

  प्रमाण ही जागृत परंपरा,

  जागृत परंपरा ही सहअस्तित्व।

8. यथार्थ

- ब्रह्म सत्य, जगत शाश्वत।
- ब्रह्म (सत्ता) व्यापक, जीवन पुंज अनेक।
- जीवन पुंज में अविभाज्य आत्मा, बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन।

  जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का वैभव।
- ईश्वर व्यापक, देवता अनेक।
- मानव जाति एक, कर्म अनेक।
- भूमि (अखण्ड राष्ट्र) एक, राज्य अनेक।
- मानव धर्म एक, समाधान अनेक।
- जीवन नित्य, जन्म-मृत्यु एक घटना।

9. वास्तविकता

- सहअस्तित्व में विकास क्रम, विकास।
- जागृति क्रम, जागृति।
- जागृति पूर्वक अभिव्यक्तियाँ समझदार मानव परंपरा।

10. ज्ञान

- सहअस्तित्व में जीवन ज्ञान।
- सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान।
- मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान।
- अनुभव ही ज्ञान।

11. अनुसंधान

- गठन पूर्णता।
- क्रिया पूर्णता।
- आचरण पूर्णता।

12. आधार

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति (सहअस्तित्व)

13. प्रतिपादन

- भौतिक रासायनिक प्रकृति ही विकास क्रम में है। परमाणु ही विकसित रूप में चैतन्य इकाई है।
- चैतन्य इकाई अर्थात् जीवन ही जागृति पूर्वक मानव परंपरा में अखण्ड सामाजिकता सहज प्रमाण।
- सतर्कतापूर्ण मानवीयता, देव मानवीयता एवं सामाजिकता।
- सजगतापूर्ण दिव्य मानवीयता।
- गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता।

14. सत्यता

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति ही सृष्टि।
- प्रकृति ही नियति।
- नियति ही व्यवस्था।
- व्यवस्था ही विकास एवं जागृति।
- विकास एवं जागृति ही सृष्टि है।
- नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही ऐश्वर्य (सहअस्तित्व), ऐश्वर्यानुभूति ही आनन्द, आनन्द ही जीवन, जीवन में नियम है।
- भ्रमित मानव ही कर्म करते समय स्वतंत्र एवम् फल भोगते समय परतन्त्र है।
- जागृत मानव कर्म करते समय तथा फल भोगते समय स्वतंत्र है।

15. मानव शरण

- अखण्ड सामाजिकता सार्वभौम व्यवस्था (सहअस्तित्व) सहज प्रमाण परंपरा।

16. मानवीय व्यवस्था

- मानवीयता। मानवत्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी।

17. व्यक्ति में पूर्णता

- क्रिया पूर्णता।
- आचरण पूर्णता।

18. समाज में पूर्णता

- सर्वतोमुखी समाधान।
- समृद्धि।

- अभय।
- सहअस्तित्व सहज प्रमाण परंपरा।

19. राष्ट्र में पूर्णता

- कुशलता।
- निपुणता।
- पाण्डित्य।

20. अन्तर्राष्ट्र में पूर्णता (अखण्ड राष्ट्र)

- मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था में एकात्मता (सार्वभौमता)।

21. मानव धर्म

- सुख, शान्ति, संतोष एवं आनन्द।

22. धर्म नीति का आधार

- तन, मन तथा धन रूपी अर्थ के सदुपयोग हेतु व्यवस्था।

23. राज्य नीति का आधार

- तन, मन तथा धन रूपी अर्थ की सुरक्षा हेतु व्यवस्था।

24. अनुगमन और चिन्तन

- स्थूल से सूक्ष्म।
- सूक्ष्म से कारण।
- कारण से महाकारण।

25. जागृति का प्रमाण

- अमानवीयता से मानवीयता।
- मानवीयता से देव मानवीयता।
- देव मानवीयता से दिव्य मानवीयता।

26. मांगल्य

- जीवन मंगल।
- उदय मंगल।
- समाधान मंगल।
- अनुभव मंगल।
- जागृति मंगल।

27. सर्व मांगल्य

- मानव के चारों आयाम (कार्य, व्यवहार, विचार व अनुभूति), पाँचों स्थिति (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र) तथा दश सोपानीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में निर्विषमता (सामरस्यता) एवं एकसूत्रता।

28. महा मांगल्य

- सत्यानुभूति जागृति (भ्रम मुक्ति)।

29. उपलब्धि

- सहअस्तित्व में स्थापित मूल्यों में अनुभूति।
- समाधान, समृद्धि अभय, सहअस्तित्व सहज प्रमाण - यही सर्वशुभ।
- भ्रम मुक्ति और नित्य जागरण।

30. शिक्षा में पूर्णता

- चेतना विकास मूल्य शिक्षा।
- कारीगरी (तकनीकी) शिक्षा।

31. परंपरा में सम्पूर्णता

- मानवीय शिक्षा संस्कार।
- मानवीय संविधान।
- मानवीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था।

वैशाख शुक्ल तृतीया, गुरुवार
श्री संवत् 2061 तद्नुसार 22.04.2004

प्राक्कथन

(प्रथम संस्करण)

अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान पूर्वक सभी आयाम, कोण, दिशा व परिप्रेक्ष्यों में समाधान और प्रमाण को प्रमाणित करने के लिए अभ्यास दर्शन की आवश्यकता को महसूस किया गया।

अस्तित्व में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान व मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान इस अभ्यास दर्शन के पहले मानव-व्यवहार दर्शन में स्पष्ट किया जा चुका है। यही प्रसन्नता के लिए तथ्य रहा कि हम रहस्य मुक्त विधि से अभ्यास कर सकते हैं। हर विधा में अभ्यास सम्पन्न, प्रमाण पूत होने के पहले से ही अध्ययन विधि से ऊपर कहे दर्शन के सर्वसुलभ होने की संभावना को और सर्वसुलभ होने की आवश्यकता को अनुभव करते हुए इस अभ्यास दर्शन को मानव के सम्मुख रखते हुए प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

मेरा विश्वास है कि हर मानव समझदार, समाधान व समृद्धपूर्वक प्रमाणित होना चाहता है और परिवार व समग्र व्यवस्था में भागीदार होना चाहता है। इस उद्देश्य के लिए यह अभ्यास दर्शन प्रेरक होगा और फलत: उपकार होगा इसी सुनिश्चयता के साथ धरती स्वर्ग हो, मानव देवता हो, मानव धर्मरूपी सुख, समाधान सर्वसुलभ हो, नित्य शुभ हो।

ए. नागराज
प्रणेता-लेखक : मध्यस्थदर्शन
(सहअस्तित्ववाद)
दिनांक : 22-04-2004

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय वस्तु	पृ.क्र.
1.	अभ्यास दर्शन	1
2.	अभ्यास की अनिवार्यता	2
3.	अभ्युदय की अनिवार्यता	13
4.	अखण्ड समाज गति सहज सामाजिकता की अनिवार्यता	17
5.	सामाजिकता का अध्ययन	20
6.	सामाजिकता का आचरण	21
7.	स्थापित मूल्यों की अनिवार्यता सर्वदा सबके लिए समान है।	27
8.	जनाकाँक्षा को सफल बनाने योग्य शिक्षा व व्यवस्था	28
9.	समाज व्यवस्था	32
10.	मानव संस्कृति	49
11.	व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संरक्षण ही अर्थ का संरक्षण है।	51
12.	न्याय पाना, सही कार्य व्यवहार करना एवं सत्य सम्पन्नता ही साम्यत: जनाकाँक्षा है।	57
13.	सतर्कता सजगता पूर्ण परंपरा में मानवीयता सहज चरितार्थता स्वभाव सिद्ध है।	58
14.	भ्रमित मानव समुदाय की प्रथम अवस्था भय प्रलोभन है।	61
15.	लाभ उत्पादन नहीं है।	63
16.	विनिमय क्रिया जागृत मानव परंपरा में अनिवार्य प्रक्रिया है।	65
17.	ईश्वर तंत्र पर आधारित राज्य नीति एवं धर्म नीति रहस्यता से मुक्त नहीं है।	66
18.	प्रत्येक मानव इकाई भ्रम, भय, रहस्य मुक्ति के लिए प्रयासरत है।	67
19.	आचरण पूर्णता पर्यन्त शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन का अभाव नहीं है।	70
20.	केवल साधनों की प्रचुरता मानवीयता को स्थापित करने में समर्थ नहीं है।	75

अध्याय	विषय वस्तु	पृ.क्र.
21.	विकास व जागृति ही वैभव क्रम है।	78
22.	प्रत्येक मानव सामाजिकता के लिए समर्पित है।	80
23.	कम्पनात्मक एवं वर्तुलात्मक गति का वियोग नहीं हैं।	82
24.	सर्वशुभ उदय का भास-आभास संवेदनशीलता की ही क्षमता है और प्रतीति व अनुभूति संज्ञानीयता की महिमा है।	83
25.	आवेश मानव का अभीष्ट नहीं है।	85
26.	मानव में संचेतनशीलता ही संस्कार एवं जागृति सम्पन्नता ही आधार व प्रमाण है।	86
27.	सामाजिकता का आधार संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था ही है।	89
28.	जिज्ञासात्मकता सुखी होने के अर्थ में एवं आवेशात्मक क्रियाकलाप के फलस्वरूप पीड़ाएं प्रसिद्ध हैं।	92
29.	मानव में न्यायापेक्षा, सही करने की इच्छा और सत्यवक्ता होना जन्म से ही दृष्टव्य है।	93
30.	मानव में अखण्डता के लिए मानवीयता ही एकमात्र शरण है।	95
31.	मानवीयतापूर्ण जीवन में, से, के लिए सुसंस्कारों का अभाव नहीं है।	99
32.	संस्कार ही संस्कृति को प्रकट करता है।	109
33.	केवल उत्पादन ही मानव के लिए जीवन सर्वस्व नहीं है।	110
34.	मानव के संपूर्ण संबंध गुणात्मक परिवर्तन के लिए सहायक हैं।	115
35.	कुशलता, निपुणता एवं पाण्डित्य ही ज्ञानावस्था की मूल पूंजी है।	117
36.	समाधान, समृद्धि, अभय एवं सहअस्तित्व में अनुभव मानव धर्म की चरितार्थता है।	121
37.	व्यक्ति का व्यक्तित्व न्याय प्रदायी क्षमता से प्रदर्शित है।	122
38.	संपूर्ण अध्ययन अनुभूति, समाधान, सहअस्तित्व एवं समृद्धि के लिए ही है।	125

अध्याय	विषय वस्तु	पृ.क्र.
39.	मानव का संपूर्ण कार्यक्रम धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनीति में, से, के लिए है।	129
40.	पाण्डित्य ही मानव में विशिष्टता हैं।	132
41.	समाज संरचना का आधार ''मूल्य त्रय'' ही है।	134
42.	भोगों में संयमता से अभयतापूर्ण जीवन प्रत्यक्ष होता है।	138
43.	समस्त प्रकार के वर्ग की एकमात्र शरण स्थली मानवीयता ही है।	144
44.	अभयता का प्रत्यक्ष रूप ही वर्तमान में विश्वास है।	147
45.	आवेश (लाभोन्माद, कामोन्माद, भोगोन्माद) मानव की स्वभाव गति नहीं है।	149
46.	प्रत्येक स्थिति में किए गए अभ्यास का प्रत्यक्ष रूप ही व्यवहार एवं व्यवस्था है।	152
47.	व्यक्तित्व और प्रतिभा की चरमोत्कर्षता में ही प्रेमानुभूति होती है।	153
48.	उत्पादन एवं व्यवहारिकता अखण्ड समाज में, से, के लिए अपरिहार्य है।	157
49.	प्रमाण त्रय ही विश्वास है।	159
50.	मानव में स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण भेद से क्रियाशीलता प्रसिद्ध है।	161
51.	अभ्यास समग्र की उपलब्धि क्रियापूर्णता, आचरण पूर्णता ही है।	164
52.	अमानवीयता से ग्रसित वर्ग संघर्ष में भय एवं प्रलोभन का अभाव नहीं है।	166
53.	मानव जीवन में भक्ति जागृति के अर्थ में वांछित प्रक्रिया है।	167
54.	योगाभ्यास जागृति के अर्थ में चरितार्थ होता है।	168
	परिशिष्ट	173

blank page

इस पेज को खाली छोड़ना है।

1.

अभ्यास दर्शन

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के आधारभूत परमात्मा में स्मरण करते हुए ''अभ्यास दर्शन'' का विश्लेषण करता हूँ।

सम्पूर्ण क्रियायें सत्ता (व्यापक) में सम्पृक्त जड़ और चैतन्य ही है।

चैतन्य अवस्था में ही क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता की संभावना आवश्यकता है जिसके लिए मानव में अभ्यास की अनिवार्यता है। अनुमान क्षमता ही अभ्यास का आधार है। अनुभव से अधिक उदय ही अनुमान है। यही निरन्तर अभ्यास सूत्र है।

अभ्युदय (सर्वतोमुखी समाधान) ही अभ्यास की प्रत्यक्ष उपलब्धि और प्रमाण है।

ज्ञानावस्था की निर्भ्रम इकाई में व्यापक सत्ता में संपृक्त प्रकृति अविभाज्य है, यही सहअस्तित्व में अनुभव ज्ञान एवं प्रकृति दर्शन प्रसिद्ध है। यही अभ्युदय पूर्णता है, साथ ही मानव की चिरवाँछा भी इसलिए किसी न किसी अंश में प्रत्येक मानव में व्यापक सत्ता में अनुभूति एवं प्रकृति की व्यंजना सहज अधिकार (व्यंजना = रूप, गुण, स्वभाव सहज अधिकार एवं धर्म ग्राही व प्रदायी क्षमता सम्पन्न रहना) प्रसिद्ध है। यही अभ्युदय की स्पष्ट संभावना है।

व्यंजनीयता ही दर्शन क्षमता एवं अनुभव ही आनन्द है।

व्यंजनीयता एवं व्यंजनीत्पादीयता ही संवेदना हैं।

व्यंजनीयता ही अभ्युदय की कामना का आधार है। मन, वृत्ति, चित्त एवं बुद्धि में ही व्यंजित होने, व्यंजित करने की क्षमता व प्रक्रिया पाई जाती है। यही संस्कार व विचार क्षमता है।

चैतन्य इकाई में ही संचेतना को प्रकट करने की योग्यता है, जबकि यह योग्यता रासायनिक (जड़) क्रियाकलाप में नहीं है।

अभ्युदय की कामना चैतन्य इकाई में पायी जाती है। यह कामना ज्ञानावस्था में ही विशेषतः पायी जाती है। ज्ञानावस्था की चैतन्य इकाई में ही अभ्यास के प्रति निष्ठा एवं लक्ष्य के प्रति जिज्ञासा रहती है।

2.

अभ्यास की अनिवार्यता

अभ्युदयार्थ किया गया आयास (आकाँक्षा और हर्ष सहित किया गया प्रयास) ही अभ्यास है। **क्यों, कैसे का उत्तर पाने के लिए किया गया बौद्धिक, वाचिक, कायिक क्रियाकलाप अभ्यास है। अर्थात् समाधान सम्पन्न होने के लिए अभ्यास है।**

मूल प्रवृत्तियों के परिमार्जन पूर्वक कुशलता एवं पाण्डित्यपूर्ण व्यवहार ही अभ्यास का प्रधान लक्षण है।

व्यक्ति की मूल प्रवृत्ति विचार के रूप में, परिवार में आचरण के रूप में, समाज में सम्मति व प्रोत्साहन एवं भागीदारी के रूप में, राष्ट्र में शिक्षा व व्यवस्था के रूप में एवं अन्तर्राष्ट्रीय मूल प्रवृत्ति परिस्थिति मानव चेतना के रूप में प्रत्यक्ष है। ये पाँचों स्थितियाँ मानवीय संचेतना में समन्वित, सफल होना पाया जाता है एवं इसके विपरीत अमानवीय प्रवृत्तिवश समस्त समस्याएँ दु:ख रूप में परिवर्तित होती है।

सर्वतोमुखी समाधान ही अभ्युदय है। मानव में समाहित चारों आयाम एवं पाँचों स्थितियाँ सर्वतोमुखी है। इन्हीं की एकसूत्रता ही सर्वतोमुखी समाधान है। यही बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि श्रमपूर्वक सम्पन्न होता है।

मानव अभ्युदयपूर्ण होते तक अभ्यास के लिए बाध्य है। अभ्युदय ही मानव की आशा, आकाँक्षा एवं लक्ष्य है। यही जागृति क्रम में पायी जाने वाली सत्यता है। इसके अतिरिक्त और कोई व्यवस्था नहीं है। यही सबका अभीष्ट भी है।

मानव जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य-व्यवहार करने का इच्छुक और सत्यवक्ता होता है। साथ ही वह प्रत्येक कार्य को सही रूप में व्यवहार प्रदान करना चाहता है, जो वस्तुगत सत्य है। यही अभ्यास के लिए अन्त:प्रेरणा है।

न्यायदर्शी व न्याय प्रदायी क्षमता से सम्पन्न होते तक मानव में सभी स्तरों पर स्थिरता, समाधान, संतुलन एवं संयम नहीं पाया जाता है।

मानव में उत्पादन, व्यवहार प्रयोग एवं चिन्तनाभ्यास प्रसिद्ध है।

उत्पादन ही कर्माभ्यास, व्यवहार ही विचाराभ्यास एवं अनुभव संयोग ही चिंतनाभ्यास है।

विचार के अभाव में उत्पादन व व्यवहार शरीर द्वारा संपन्न नहीं होता है।

चैतन्य शक्तियों की प्रखरता से परिपूर्ण होने के लिए चिंतन अभ्यास अनिवार्य है।

मानव जागृत होने के लिए अभ्यास करता है। यह क्रम जागृति पूर्णता तक रहता है।

कर्माभ्यास के लिए भौतिक शास्त्र, व्यवहाराभ्यास के लिए बौद्धिक शास्त्र एवं चिन्तनाभ्यास के लिए अनुभव मूलक मध्यस्थ दर्शन प्रसिद्ध है।

नियंत्रण को व्यंजित कराने योग्य प्रसारण-क्रिया ही शास्त्र है। प्रसारण की चरितार्थता ही व्यंजनीयता है।

स्थितिपूर्ण सत्ता में संपृक्त प्रकृति का अनुभव बोध एवं रूप, गुण, स्वभाव तथा धर्मात्मक प्रकृति की स्थितिवत्ता में व्यंजित कराने हेतु प्रसारण एवं व्यंजनीयता है।

व्यंजनीयता ही भास, आभास एवं प्रतीति है। यह संस्कार एवं अध्ययन का फल है और साथ ही अभ्यास एवं अध्ययन के लिए प्रेरणा एवं गति भी है। सम्पूर्ण व्यंजनीयता शब्द व अर्थों को, स्थिति-गति रूप में स्वीकार करने की क्रिया है। यह सम्पूर्ण मानव में सार्थक होने वाली स्थिति नित्य समीचीन है।

चैतन्य प्रकृति रूपी मानव द्वारा लक्ष्य के अर्थ में अर्जित स्वभाव ही संस्कार है। आगन्तुक अथवा भ्रमित प्रवृत्ति तब तक भावी है, जब तक संस्कार समझदारी पूर्ण न हो जाये।

अमानवीयता की सीमा में संस्कार विकृत, मानवीयता की सीमा में सुसंस्कार एवं देव, दिव्य मानवीयता की कोटि में संस्कार पूर्ण होता है जो स्पष्ट है।

क्रिया शक्ति में कर्माभ्यास, इच्छाशक्ति में व्यवहाराभ्यास एवं शास्त्राभ्यास तथा ज्ञान शक्ति में चिन्तनाभ्यास प्रसिद्ध है।

''जिस तथ्य को मानव समझ चुका है, समझ रहा है या समझने के लिए बाध्य है, वही प्रसिद्ध है।''

कर्माभ्यास से प्रतिफल, व्यवहाराभ्यास से सहअस्तित्व साक्षात्कार और चिन्तनाभ्यास से संस्कार में गुणात्मक परिवर्तन फलतः अनुभव है जो प्रत्यक्ष है।

कर्माभ्यास पूर्वक भौतिक समृद्धि, व्यवहाराभ्यास पूर्वक बौद्धिक समाधान एवं चिन्तनाभ्यास और अनुभव पूर्वक परमानन्द की निरंतरता है।

''जड़-चैतन्यात्मक स्थितिवत्ता में जो व्यवस्था है वही नियति क्रम है।''

मानव जीवन में न्याय सम्बद्धता व्यवहार में सार्थक है।

नियंत्रण पूर्वक व्यवस्था ही न्याय शास्त्र एवं नियंत्रण क्रम व्यवस्था है। नियंत्रण ही विधि और क्रम ही नीति है और समाधान ही व्यवस्था है। आचरण रूपी विधि एवं व्यवस्था मानव इकाई में पूर्णता सहज प्रमाण सम्बद्ध है। जागृत इकाई का स्वनियंत्रित होने का स्वभाव है। मानव इकाई में जीवन सहज गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता प्रमाणित होती है इसलिए पूर्णता की दिशा में व्यवस्था का अनुसरण ही अभ्यास का प्रधान लक्षण है।

नियंत्रण विहीन व्यवस्था नहीं है। विकास एवं ह्रास नियंत्रणपूर्वक ही है, इसीलिए सम-मध्यस्थात्मक व्यवस्था विकास की ओर प्रगतित एवं विषमतायुक्त व्यवस्था ह्रास की ओर विगतित होना पाया जाता है।

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अभीष्ट विकास क्रम, विकास एवं जागृति क्रम, जागृति पूर्णता ही है, इसलिए प्रत्येक इकाई का ह्रास व विकास एवं जागृति उनकी मौलिकता से प्रमाणित है।

मौलिकता ही इकाई का स्वभाव, स्वभाव ही आचरण है।

प्रकृति में ऐसी कोई इकाई नहीं है जिसमें आचरण न हो।

मानव में ''तात्रय (अमानवीयता, मानवीयता, अतिमानवीयता)'' सीमान्तवर्ती स्वभाव और आचरण प्रत्यक्ष है।

मानव मध्यस्थ क्रिया के अनुसरण पूर्वक ही जागृतिशील है। यह जागृति की एक अवस्था का द्योतक है। मानव में ही मध्यस्थ को अनुसरण करने का अवसर है। सम-विषम के नियन्त्रण का आधार मध्यस्थ है, साथ ही मध्यस्थ क्रिया ही समाधान है अन्यथा प्रत्येक द्वन्द्व समस्या जनक है।

पदार्थावस्था में सामूहिक, प्राणावस्था में वर्गीय, जीवावस्था में जातीय एवं ज्ञानावस्था में भ्रमवश सामुदायिक बाध्यताएं दृष्टव्य हैं। जागृति पूर्वक अखण्डता, सार्वभौमता सूत्र व्याख्या है।

''जागृत मानव में अखण्डता ही सामाजिकता है।''

मानव ही इस पृथ्वी पर अन्य प्रकृति से विकसित है। मध्यस्थता के बिना सामाजिकता सिद्ध नहीं है। सामाजिकता के बिना मानव आश्वस्त नहीं है।

मानव के चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों में मध्यस्थता सहज सुलभ है। मध्यस्थता

अनुशीलन के बिना मानव में अखण्डता नहीं है। मध्यस्थता आवेश नहीं है, इसके अनुसरण पर्यन्त जागृति का अभाव नहीं है।

रूप, गुण, स्वभाव, धर्म प्रगटन क्षमता ही प्रत्येक इकाई के विकास को स्पष्ट करती है। जड़ प्रकृति में रूप और गुण, जीवावस्था में रूप, गुण एवं स्वभाव, ज्ञानावस्था में रूप, गुण, स्वभाव और धर्म का प्रकटन पाया जाता है। पदार्थावस्था रूप प्रधान, प्राणावस्था गुण प्रधान, जीवावस्था स्वभाव प्रधान और ज्ञानावस्था धर्म प्रधान प्रकटन है।

''जो जिसको प्रकट करता है, उसमें उसके स्वागत (ग्रहण) करने की क्षमता रहती है।''

रूप का मिलन रूप से, गुण का मिलन गुण से, स्वभाव का मिलन स्वभाव से, धर्म का मिलन धर्म से प्रत्यक्ष है।

प्रत्येक मानव स्वतंत्र, स्वतंत्रित एवं स्वतंत्रतापूर्ण होना चाहता है।

स्वतंत्र पूर्णता का प्रत्यक्ष रूप ही है ज्ञान विवेक सहित विज्ञान का प्रयोग, जिसमें ही नियमपूर्ण उत्पादन, न्यायपूर्ण व्यवहार, धर्मपूर्ण विचार एवं सत्यमय अनुभूति है। यही स्वतंत्रता सहज प्रमाण है, जो जागृति पर आधारित है।

स्वतंत्रताधिकार अनुभव पूर्वक मानव चेतना, देव तथा दिव्य मानवीयता की कोटि में सफल होता है। इसके पूर्व मानवीयता में प्रतिबद्धता व निष्ठा तथा अमानवीयता की कोटि में अप्रतिबद्धता पायी जाती है।

प्रतिबद्धता ही संकल्प एवं प्रतिज्ञा की क्षमता है, जो बुद्धि के जागृति का द्योतक है। यही अवधारणा का प्रधान लक्षण है।

धर्म, न्याय और नियम में प्रतिबद्धताएं है तथा साथ में अनुभूति है। इनसे अतिरिक्त संकल्प का विकल्प भावी है। उनके अतिरिक्त अस्तित्व नहीं है। जैसे असत्य, अज्ञान, अंधकार एवं मृत्यु भासित होते हुए भी स्थिति में नहीं है।

स्वीकृति से संकल्प, संकल्प से निष्ठा, निष्ठा से प्रतिबद्धता, प्रतिबद्धता से प्रबुद्धता, प्रबुद्धता से बोध, बोध से प्रतिज्ञा (संकल्प), प्रतिज्ञा से क्षमता, क्षमता से जागृति, जागृति से स्वीकृति व प्रमाण है।

प्रबुद्धता ही समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद एवं अनुभवात्मक अध्यात्मवाद की प्रस्थापना, स्थापना एवं अक्षुण्णता का प्रत्यक्ष रूप है।

समाधानात्मक भौतिकवाद में अर्थ के उत्पादन, उपयोग वितरण-व्यवस्था में एकसूत्रता है, जो न्याय सम्मत है। यही समाधान है। मानव में समाधान की प्यास है।

प्रत्येक व्यक्ति का उत्पादन उसकी क्षमता, अवसर, साधन एवं अनिवार्यता पर आधारित है।

''क्षमता व स्वसंस्कार'' अध्ययन तथा वातावरण पर, ''अवसर'' व्यवस्था पर, ''साधन'' उपलब्धि पर, ''अनिवार्यता'' वर्तमान स्थिति पर आधारित है।

''संस्कार'' (प्रवृत्ति) तात्रय की सीमा में ''अध्ययन'' निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य की सीमा में तथा ''वातावरण'' विशेषत: मानवकृत सीमा में है। मानवकृत वातावरण ही व्यवस्था है। अध्ययन के क्रम में मानवीयता में संस्कार शिक्षा एवं व्यवस्था की एकसूत्रता; अमानवीयता की सीमा में एकसूत्रता का अत्याभाव; अनुभव रूपी अतिमानवीयता में मानव स्वतंत्रता पूर्वक प्रमाण है, यही अभ्यास का तात्पर्य है। अर्थात् संस्कार सम्पन्न होना अभ्यास का फलन है।

जागृत मानव में 122 प्रकार के आचरण पाये जाते हैं।

जागृत मानव ही स्वतंत्रित है।

अजागृत अथवा भ्रमित मानव आसक्ति से मुक्त नहीं है, इसलिए विवेक का उत्कर्ष ही अनासक्ति सूत्र है।

विवेक का उत्कर्ष ही वस्तुगत एवं वस्तु स्थिति सत्य का प्रचोदन (यथार्थग्राही एवं प्रसारण योग्य क्षमता) है।

वस्तु स्थिति एवं वस्तुगत सत्य का अनुभव ही अनासक्ति है। वस्तुगत व वस्तु स्थिति सत्यता का अनुभव करने के लिए ज्ञानावस्था की इकाई पात्र है। इसकी चरितार्थता ही चारों आयामों की पूर्ण तृप्ति है।

मानव में न्याय की चरितार्थता की क्षमता ही स्वतंत्रता है, यही सामाजिकता का प्राण व त्राण है। अमानवीयता (पशु मानव एवं राक्षस मानव) स्वतंत्र एवं संयत नहीं है।

मानवीयता पूर्वक मानव संयमता में, से, के लिए स्वतंत्रता का जिज्ञासु है।

देव मानव स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत है।

अतिमानवीयतापूर्ण दिव्य मानव ही पूर्ण स्वतंत्र है, जो प्रत्यक्ष है। स्वतंत्रता के प्रमाण में संवेदनशीलताएं संज्ञानशीलतापूर्वक नियन्त्रित रहना पाया जाता है।

प्रत्येक मानव स्वतंत्रता के प्रति आशुक, कल्पनाशील तथा इच्छुक है।

न्याय, धर्म, सत्य पूर्ण विधि से ''स्वयं में, से, के लिए तंत्रित एवं नियंत्रित जीवन प्रतिष्ठा ही स्वतंत्रता है।''

आत्मा के संकेतानुरूप बुद्धि, बुद्धि के संकेतानुरूप चित्त, चित्त के संकेतानुरूप वृत्ति, वृत्ति के संकेतानुरूप मन है, जो क्रम से अनुभव, बोध, इच्छा, विचार एवं आशा है। यही स्वतंत्र जीवन का प्रत्यक्ष रूप है। इसके विपरीत में लोकानुरूप, आशानुरूप एवं कल्पनानुरूप इच्छाएं परतंत्रता का प्रत्यक्ष रूप हैं, जबकि परतंत्रता मानव की वांछित घटना एवं उपलब्धि नहीं है।

मध्यस्थ क्रिया पूर्ण जीवन ही स्वतंत्रता है।

मध्यस्थ क्रिया का अस्तित्व है, इसलिए स्वतंत्रता की संभावना है।

मानव में उत्पादन नियमपूर्वक, व्यवहार न्यायपूर्वक, विचार धर्म (समाधान) पूर्वक अनुभव सत्य में मध्यस्थता पूर्ण होना पाया जाता है।

मध्यस्थ पूर्णता की प्रेरणा मध्यस्थ क्रिया में ही है। यही सम व विषम का नियंत्रण संरक्षण है। साथ ही मध्यस्थ जीवन की संभावना है। इसके प्रमाण परंपरा में ही दिव्य मानव जीवन है।

नियम, न्याय, धर्म और सत्य ही ज्ञान है। मध्यस्थ क्रिया ही इनका उद्घाटन करती है। इसमें पूर्ण निष्णात होने तक ही जागृति क्रम है। यही अभ्यास है।

पूर्ण जागृति परम सत्यरूपी सहअस्तित्व में अनुभूति है।

अमानवीयता में स्वतंत्रता के प्रति मानव में आशा एवं कल्पना, मानवीयता में कल्पना, इच्छा एवं संकल्प तथा अतिमानवीयता में संकल्प एवं अनुभूति पायी जाती है।

अमानवीयता में असामाजिकता, मानवीयता में सामाजिकता एवं अतिमानवीयता में स्वतंत्रता, स्वराज्य प्रमाणित होता है, जो प्रसिद्ध है।

सामाजिकता से सम्पन्न हुए बिना मानव का अतिमानवीयता को पाना संभव नहीं है, क्योंकि जागृति एक सघन व्यवस्था एवं क्रम है। विचार सीमा में ही मानव स्वतंत्रता एवं परतंत्रता का अनुभव करता है, क्योंकि जागृत मानव का मूल मूर्त्त रूप आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति और प्रमाण ही है।

मानवीयता का उत्कर्ष ही अतिमानवीयता के लिये प्रेरणा है, क्योंकि पदार्थावस्था के परस्पर उत्कर्ष से प्राणावस्था; पदार्थावस्था व प्राणावस्था के उत्कर्ष से जीवावस्था; पदार्थावस्था,

प्राणावस्था व जीवावस्था के उत्कर्ष से भ्रमित ज्ञानावस्था; पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था व भ्रमित ज्ञानावस्था के उत्कर्ष से भ्रांताभ्रांत ज्ञानावस्था; पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, भ्रमित ज्ञानावस्था एवं भ्रांताभ्रांत ज्ञानावस्था के उत्कर्ष से निर्भ्रान्त देव मानवीयतापूर्ण अवस्था; पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, भ्रमित ज्ञानावस्था, भ्रांताभ्रांत ज्ञानावस्था एवं निर्भ्रान्त देव मानवीयता के उत्कर्ष से निर्भ्रान्त दिव्य मानवीयता पूर्ण अवस्था प्रसिद्ध है।

चैतन्य क्रिया ही जागृति पूर्वक जागृति पूर्ण संस्कृति और सभ्यता को प्रकट करता है। इसी के आधार पर विधि एवं व्यवस्था स्पष्ट होता है।

सम्पूर्ण समाज के द्वारा जागृति के क्रम में जो कृतियाँ की जाती है वे संस्कृति के रूप में प्रत्यक्ष हैं। वर्तमान में उनका अनुशीलन क्रिया सभ्यता के रूप में है।

व्यक्तिगत रूप में जो संस्कार प्रवृत्तियों के रूप में हैं, वही परिवार की सीमा में आचरण, समाज की सीमा में आचरण एवं संस्कृति, राष्ट्र की सीमा में संरक्षण सभ्यता एवं व्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की सीमा में विधि एवं सार्वभौम व्यवस्था सहज प्रमाण प्रसिद्ध है।

नियम, न्याय, धर्म एवं सत्य अखण्ड हैं, क्योंकि इनकी मात्रा का निर्णय नहीं है। क्रमशः मानव अनुसरण, अनुशीलन, अनुगमन पूर्वक अनुभव के लिए बाध्य है। यही अखण्ड सामाजिकता और सार्वभौम व्यवस्था का स्पष्ट सम्भावनात्मक तथ्य है।

अवसर का भास, आभास या प्रतीति होना मानव में पाये जाने वाले स्वभाव की प्रक्रिया है, जो जागृति की गरिमा है, क्योंकि उनमें अनुभव से अधिक उदय होना पाया जाता है। यही अनुमान भास, आभास एवं प्रतीति है। ये सब चैतन्य क्रिया की सीमा में सम्पन्न होते हैं।

अनुमान यथार्थ एवं अयथार्थ दोनों का होता है क्योंकि भ्रमित मानव ने जो जैसा है, उसके विलोम की स्थिति का अनुमान किया है, जैसे मृग मरीचिका।

प्रत्येक अनुसंधान के मूल में यथार्थता के प्रति अनुमान पाया जाता है, जो स्पष्ट है।

मानव द्वारा प्रकट होने वाला प्रमाण केवल प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव पूर्वक ही सिद्ध हुआ है, जो प्रत्यक्ष है।

प्रयोग सिद्ध प्रमाण उत्पादन व व्यवस्था की सीमा में; व्यवहार सिद्ध प्रमाण समाज की सीमा में एवं अनुभव सिद्ध प्रमाण आचरण की सीमा में उपादेयी तथा प्रयोजन दायी सिद्ध हुआ है।

जीवन प्रमाण सिद्ध करने के लिए ही है। वह उत्पादन, व्यवहार एवं अनुभूति ही है।

प्रमाण विहीन अथवा प्रमाण संभावना विहीनता ही निराशा या कुण्ठा है, जो मानव जीवन के कार्यक्रम में सहायक नहीं हैं।

प्रमाण ही परिचय, समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व, जागृत जीवन, उपलब्धि, सफलता, अखण्ड समाज, विधि, व्यवस्था, सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कार है।

प्रमाण सिद्ध एवं सम्पन्न होते तक मानव संतुष्ट नहीं है। प्रमाण सिद्धि पाँचों स्थितियों में मानवीयता तथा अतिमानवीयता की सीमा में है। अमानवीयता की सीमा में यह संभव नहीं है। ''तात्रय'' से अधिक मानव के लिए प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव करने के लिए कुछ भी नहीं है।

मानव में संस्कार ही विचार एवं आचरण है, यही सम्यकता के लिए अपेक्षा है। संस्कार की सम्यकता के बिना सामाजिकता की अखण्डता, सार्वभौमिकता, तारतम्यता एवं एकसूत्रता संभव नहीं है। यह मानवीयता एवं अतिमानवीयता पूर्वक सफल एवं अमानवीयता की सीमा में असफल है।

वर्ग भेद के निराकरण के लिए मानवीयता एवं मानवीय मूल्य ही मूलत: आधार हैं। इसके बिना वर्ग भेद, समुदाय वाद का अभाव नहीं है एवं युद्ध संभावना से भी मुक्ति नहीं है। युद्ध मानव का अभीष्ट या अभीष्ट साधन नहीं है। सम्पूर्ण वर्गीयता मानवीयता में परिसमाप्त होती हैं।

मानव जाति एवं धर्म एक ही है, इस चिंतन का उदय तथा अधिक उत्पादन एवं उपयोग, सदुपयोगपूर्ण व्यवस्था पद्धति की सम्पन्नता ही मानवीयतापूर्ण जीवन में आश्वस्त होने का मुख्य आधार है।

मानवीयता सम्पन्न मानवापेक्षा ही संस्कार एवं व्यवस्था पद्धति का आधार एवं लक्ष्य है। यही धर्मनीति, अर्थनीति एवं राज्यनीति का लक्ष्य है। यही मानव जीवन की समग्र नीति है।

मानव आस्वादन तथा स्वागत पूर्वक ही सम्पूर्ण व्यवहार एवं उत्पादन करता है। तदर्थ ही विचार एवं अध्ययन है।

भौतिक एवं रासायनिक सीमा में आस्वादनापेक्षा तथा चैतन्य क्रिया सीमा में सामाजिक मूल्यापेक्षा प्रसिद्ध है। सामाजिक मूल्यों की स्पष्टता मानवीयता की सीमा में पायी जाती है। यही संभावना है।

मानवीयता के बिना मानव जीवन स्वस्थ, विश्वस्त, आश्वस्त, व्यवस्थित, समाधानित एवं स्वतंत्रित नहीं है।

यांत्रिकता की सीमा में आस्वादन की आवश्यकता, संज्ञानशीलता संवेदनशीलता की सीमा में सामाजिक मूल्यों की आवश्यकताएं तथा कल्पनाएं हैं। यही अनुभव के लिए संभावना बनी रहती है।

स्वंय के लिए जो घटनाएं वेदना के कारण हैं वे ही दूसरों के लिए भी हैं, ऐसी स्वीकृति क्षमता ही संवेदना है। इसके अभाव में मानव जीवन में निहित विशेष मूल्यों का प्रयोजन सिद्ध होना संभव नहीं है। इसी विवशतावश मानव सामाजिक मूल्यों के आचरण, अनुसरण एवं अनुशीलन के लिए बाध्य है।

संचेतना ही मानव की विशेषता है। यही विशेषता समाधान, समन्वयता, तारतम्यता, संतुलन एवं संगीतमयता को पाने का एकमात्र अधिकार है।

प्रेम, वात्सल्य, श्रद्धा, ममता, सम्मान, स्नेह, विश्वास, गौरव एवं कृतज्ञता संज्ञानशीलता का प्रत्यक्ष रूप है। इनके बिना सामाजिक व्यवहार सम्पन्न होना संभव नहीं है।

जड़ (भौतिक रासायनिक) प्रक्रिया में गति एवं चैतन्य क्रिया में संचेतना ही प्रधान अभिव्यक्ति है। चैतन्य क्रिया में कम्पनात्मक गति ही संचेतना एवं वर्तुलात्मक गति ही यांत्रिकता है। इसी सत्यतावश मानव संचेतनशीलता की मौलिकता को अनुसरण करने के लिए विवश है। वास्तविकता एवं समझने का अवसर, संभावना एवं क्षमता मानव में किसी न किसी अंश में पायी जाती है, जो स्पष्ट है।

यांत्रिक प्रक्रिया में आस्वादन, संचेतनशील क्रिया में स्वागत पद्धति स्थापित पायी जाती है।

अनुमान क्षमता ही प्रत्यक्ष रूप में स्वागत पद्धति, वास्तविकता एवं अनिवार्यता है।

सामान्यत: अनुमान ही भास, आभास एवं प्रतीति के रूप में साम्यत: पाया जाता है। यही अधिकार, अवसर, उपयोगिता, उपादेयता तथा अनिवार्यता वश ही "प्रमाण त्रय" के रूप में सिद्ध होता है। इसकी शिक्षा व व्यवस्था पूर्वक सामान्यीकरण होता है, जो प्रसिद्ध है।

मानव अखण्ड सामाजिकता को पाने के लिए जड़ चैतन्य प्रकृति में निहित मूल्यों को पूर्णतया श्रवण, अध्ययन, अवगाहन, मनन, चिन्तन एवं अनुभव पूर्वक व्यवहार एवं उत्पादन में लाने के लिए प्रेरित है। इसका निर्वाह ही जीवन में सफलता, उपलब्धि, समृद्धि एवं समाधान है।

बाध्यता या अनिवार्यता से विमुख होना ही पराभव या असफलता है। अनिवार्यता ही वास्तविकता, वस्तुस्थिति सत्यता, व्यवस्था, जागृति, सहजता एवं अनिवार्यता है।

मानव में पायी जाने वाली अतिमानवीयता समाधान एवं अखण्डता के रूप में, मानवीयता एकसूत्रता व समन्वयता के रूप में तथा अमानवीयता परस्पर वैविध्यता व विरोध के रूप में दृष्टव्य है। जागृत मानव स्वभाव इष्ट प्रवृत्ति, वृत्ति तथा निवृत्ति, शिक्षा तथा व्यवस्था, प्रबुद्धता व अनुसंधान इन सबका क्रमशः "तात्रय" के लक्ष्य पर आधारित होना पाया जाता है।

प्रवृत्तियाँ भोगों के उपलक्ष्य में, वृत्तियाँ सामाजिकता की सीमा में एवं निवृत्तियाँ अनुभव में व्यस्त, व्यवस्थित एवं ओत-प्रोत पायी जाती है। अवधारणा में ही सामाजिकता व उद्घाटन है।

अनुभव केवल वस्तुस्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य एवं स्थितिपूर्ण सत्य ही है।

अनुभूति ही मानव का आद्यान्त लक्ष्य है। यही जागृति बाध्यता तथा अनिवार्यता को प्रसवित करता है। इसलिए व्यवस्था, प्रक्रिया, पद्धति, प्रणाली एवं नीति के अनुसंधान एवं अनुसरण के लिए संकल्प, इच्छा, विचार व आशा का प्रवर्तन है; फलतः उत्पादन, व्यवहार तथा अनुभूति की चरितार्थता है।

मध्यस्थ क्रिया की गरिमा ही अनुभव एवं अनुभव में निष्ठा में, से, के लिए प्रयास है। यही जागृति क्रम श्रृंखला तथा स्थितिवत्ता का द्योतक है।

मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) में ही अनुभव में प्रवृत्त रहने, अनुभव से प्रभावित होने और प्रभावित करने तथा अनुभव के लिए जागृतिशील रहने की संभावना एवं अवसर है, क्योंकि अनुभव आत्मा में ही होता है, अनुभव मध्यस्थ है। यह मनुष्य के उत्पादन में नियम, व्यवहार में न्याय, विचार में समाधान एवं अनुभव मात्र में सत्य है साथ ही मानव जीवन में, से, के लिए प्रमाण भी है। सम और विषम क्रियाएं मध्यस्थ क्रिया से अनुशासित है ही, साथ ही अनुसरण, अनुकरण व अनुगमन के लिए भी बाध्य हैं।

प्रकृति का मध्यस्थ सत्ता में संपृक्तताधिकार ही क्रिया, विकास एवं जागृति के लिए कारण है। जागृति पूर्वक पाया जाने वाला चरमोत्कर्षाधिकारी ही अनुभव है। यही मध्यस्थ क्रिया की आरुढ़ता है, ऐसी अर्हता पर्यन्त जागृतिशीलता है।

अनुभव एवं समाधान चैतन्य प्रकृति में चरितार्थ हुआ है न कि जड़ (भौतिक रसायनिक) क्रिया में।

चैतन्य प्रकृति का परिमार्जन संस्कार पूर्वक होता है। स्वभाव, दृष्टि, प्रवृत्ति, वृत्ति एवं निवृत्ति के रूप में प्रत्येक क्रिया प्रत्यक्ष है, जिसकी सम्यकता (पूर्णता) की कामना व प्रयास है।

जागृति के क्रम में न्याय की याचना व कामना को आचरण में स्वीकारने एवं उसमें निष्ठा प्रकट करने की क्षमता ही सम्यक संस्कार है। यही वर्ग बंधन से मुक्ति है। साथ ही, अखण्ड सामाजिकता का प्रधान लक्षण भी है।

सम्पूर्ण आस्वादन जड़ शरीर के लिए पोषक या शोषक सिद्ध हुए हैं। सम्पूर्ण स्वागत क्रियाएं चैतन्य सीमान्तवर्ती उपादेयी हैं, जो संस्कार है। यही शिक्षा, अध्ययन, अनुसंधान व अनुभूति है, जिसके बिना मानव जीवन की सफलता सिद्ध नहीं होती है।

''जाने हुए को मानना और माने हुए को जानना ही अभ्यास है।'' अभ्यास का प्रत्यक्ष रूप निपुणता, कुशलता तथा पाण्डित्य की चरितार्थता है यही उसकी प्रतिष्ठा एवं आप्त कामना भी है।

मानवीय आचरण में प्रतिष्ठित निष्ठा ही सम्यक आचरण एवं व्यवहार है। साथ ही, यही समाधान और समृद्धि भी है।

अतिमानवीयता के प्रति निर्भ्रमता ही सम्यक ज्ञान है। यह सम्यक आचरण, व्यवहार एवं ज्ञान का प्रसारण ही आप्त पुरुषों की आप्त कामना है। यही शास्त्र सार है।

3.

अभ्युदय की अनिवार्यता

सर्वतोमुखी विकास ही अभ्युदय है जो सर्व मानव का लक्ष्य है। क्योंकि -

''प्रत्येक भ्रमित मानव कर्म करते समय स्वतंत्र एवं फल भोगते समय परतंत्र है।''

''प्रत्येक मानव गलती करने का अधिकार एवं सही करने का अवसर लेकर जन्मता है।''

''प्रत्येक मानव जन्म से न्याय का याचक है, न्याय प्रदान करने में असमर्थ रहता है।''

''प्रत्येक मानव बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि चाहता है।''

''प्रत्येक मानव का अकेले में कोई कार्यक्रम स्पष्ट नहीं है।''

''प्रत्येक मानव में अन्य प्रकृति में, से, के लिए की अपेक्षा उपयोग से अधिक उत्पादन क्षमता है।''

''प्रत्येक मानव प्रकृति का अभिन्न अंग है।''

''प्रत्येक मानव सुख, शांति, संतोष एवं आनंदानुभूति चाहता है।''

''प्रत्येक मानव का लक्ष्य विहीन कार्यक्रम नहीं है।''

''प्रत्येक मानव सतर्कता एवं सजगता से परिपूर्ण होना चाहता है।''

चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता एवं समन्वयता ही अभ्युदय का प्रत्यक्ष रूप है, जिसकी संभावना एवं अवसर भी है।

चार आयाम : विचार, व्यवहार, व्यवसाय, अनुभव

पाँच स्थितियाँ : व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र

आवश्यकता से अधिक उत्पादन पूर्वक भौतिक समृद्धि है, जो उत्पादन का लक्ष्य है।

न्यायपूर्ण व्यवहार (मानवीय मूल्यों का निर्वाह) पूर्वक सहकार्य, सहयोग एवं सहानुभूति

है, जिसका प्रत्यक्ष रूप समाज में निर्विषमता या अभय है।

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का दर्शन एवं व्यापक सत्ता में अनुभव ज्ञानपूर्वक समाधान है, जिसका प्रत्यक्ष रूप व्यवहारात्मक जनवाद एवं समाधानात्मक भौतिकवाद है।

सत्ता में अनुभव ही पूर्ण विकास और जागृति है, जिसका प्रत्यक्ष रूप दया, कृपा एवं करुणा का प्रकटन है। यही चारों आयामों की एकसूत्रता, पूर्ण उपलब्धि, विकास एवं जागृति सफलता कृतकृत्यता, सतर्कता एवं सजगता है, साथ ही जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अभीष्ट भी।

ज्ञानावस्था के पूर्ण जागृत मानव में आप्त कामना, श्रेय कर्म; जागृत मानव में शुभेच्छा एवं कर्म; अर्ध जागृत मानव में मंगल कामना एवं संयत कर्म व उपयोग; राक्षस व पशु मानव में शुभ कल्पना, अशुभ कर्म एवं असंयत भोग प्रवृत्तियाँ पायी जाती है। ये वैविध्यताएं ही एकसूत्रता, सामंजस्यता पूर्वक सहअस्तित्व को पाने के लिए प्रेरणा स्त्रोत भी है। सहअस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए जागृति ही एक मात्र प्रेरणा स्त्रोत है। सम्पूर्ण प्रयास व्यवहारात्मक जनवाद, समाधानात्मक भौतिकवाद तथा अनुभवात्मक अध्यात्मवाद के परिप्रेक्ष्य अथवा आवश्यकता से है, क्योंकि जनाकाँक्षा को मानव जाति व्यवहार रूप में पाना चाहती है एवं भौतिक सम्पदा तथा साधनों को परस्पर मानव के कलह का कारण नहीं बनाना चाहती, अपितु इसके विकल्प में उसका निराकरण एवं व्यापक सत्ता में अनुभव करना चाहती है, जो स्पष्ट है।

आशा व प्रत्याशा के विपरीत कर्म व भोग प्रवृत्ति ही प्रत्येक स्तर में अन्तर्विरोध का कारण है।

आशा व प्रत्याशा में समाधान रूप में शुभ होना पाया जाता है, उसके अनुरूप कर्म और उपयोग में दक्षता व पात्रता का अभाव ही पराभव या असफलता का कारण है। यही पुन:प्रयासोदय है। यह क्रम तब तक रहेगा जब तक स्वस्थ व्यवस्था एवं शिक्षा से मानव सम्पन्न न हो जाए। अत: मानव द्वारा "वादत्रय" को सफल बनाने के लिए स्पष्ट एवं पूर्णतया मानव की परिभाषा, मानवीयता की व्याख्या, सामाजिक अनिवार्यता, समाज की परिभाषा, समाज का आधार, समाज का लक्ष्य, समाज का आचरण, सामाजिकता का अध्ययन, समाज की अक्षुण्णता के लिए प्राकृतिक एवं वैयक्तिक ऐश्वर्य के सदुपयोग एवं सुरक्षा का अध्ययनपूर्वक व्यवहारान्वयन आवश्यक है।

वर्ग निर्माण पद्धति, नीति, व्यवहार, उपदेश, शिक्षा एवं व्यवस्था, वर्ग विहीन अखण्ड समाज को स्थापित करने में असमर्थ रहा है।

पूर्ण विकसित इकाई के द्वारा अविकसित के पूर्ण विकास के लिए की गयी प्रेरणा सहित सहायता ही आप्त कामना है।

स्वयं की जागृतिशीलता में विश्वास व निष्ठा रहते हुए अविकसित के विकास के लिए सहानुभूति की निरंतरता ही शुभेच्छा है। स्वयं समृद्ध एवं समाधान पूर्वक कम विकसित के समाधान व समृद्धि के लिए किया गया सहकार्य ही मंगल कामना है।

विकास एवं जागृति ही संपूर्ण प्रकृति का अभीष्ट है। इसका प्रत्यक्ष रूप प्रकृति की विधा एवं उसकी तात्विक स्थितिवत्ता है जो ''गठन पूर्णता'', ''क्रिया पूर्णता'' एवं ''आचरण पूर्णता'' है। इसी श्रृंखला में मानव तथा मानवीयता वस्तुगत, वस्तुस्थिति सत्य के रूप में प्रत्यक्ष हैं।

मानव की परिभाषा एवं मानवीयता की व्याख्या से यह स्पष्ट हो चुका है कि मानवीयता में ही सामाजिकता की संभावना स्पष्ट रहती है। साथ ही, मानवीयता से परिपूर्ण होने के अनंतर अतिमानवीयताधिकार संभव है।

अखण्डता ही मानवीयता पूर्ण लक्ष्य एवं कार्यक्रम को निर्विरोध पूर्वक वहन करने योग्य सामर्थ्य सम्पन्न जनमानस ही जागृत और अखण्ड समाज परंपरा है।

जीवन लक्ष्य सुख शान्ति, सन्तोष, आनन्द है जिसके लिए मानव बौद्धिक समाधान, भौतिक समृद्धि, अभय व सहअस्तित्व में प्रमाणित होना चाहता है। इसीलिए कार्यक्रम है।

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के आद्यान्त कार्यक्रम की उपलब्धि केवल भौतिक समृद्धि और बौद्धिक समाधान है। इसका अनुभव ही सुख व समाधान है। ऐसी अनुभव क्षमता की निरंतरता में मानव सुख, शान्ति, संतोष, आनन्द एवं परमानन्द को अनुभव करता है।

मानव जाति के समस्त ''कार्यक्रम का उद्देश्य अनुभव एवं प्रमाण ही है।'' बौद्धिक समाधान के बिना अनुभव संभव नहीं है, क्योंकि समाधान की निरंतरता ही अनुभव है। भौतिक समृद्धि के बिना बौद्धिक समाधान सिद्ध नहीं है और बौद्धिक समाधान के बिना भौतिक समृद्धि प्रमाणित नहीं होती क्योंकि **अज्ञात को ज्ञात करने के लिए एवं अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए अनवरत प्रयास हुआ है।**

विवेक व विज्ञान का संतुलनाधिकार सहज प्रमाण ही भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान है।

कर्माभ्यास के बिना उत्पादन एवं समृद्धि तथा व्यवहाराभ्यास के बिना समाधान नहीं है।

कर्माभ्यास अन्वेषण, शिक्षण, प्रशिक्षण है, जिसकी चरितार्थता उत्पादन है, फलतः समृद्धि है।

व्यवहाराभ्यास अनुसंधान, अनुसरण, आचरण, संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था है, जिसकी चरितार्थता सामाजिकता, अखण्डता, निर्विषमता, अभयता, समाधान, संतुलन एवं स्वर्ग है।

मानव का अशेष कार्यक्रम वैचारिक, व्यवहारिक एवं उत्पादन है, वैचारिक परिपूर्णता अथवा समाधान के लिए साक्षात्कार एवं चिन्तनाभ्यास आवश्यक है ही। साक्षात्कार एवं चिन्तनाभ्यास पूर्वक ही यर्थाथता, वास्तविकता, सत्यता को निरीक्षण-परीक्षण कर पाना सहज है। यही समाधान रूपी निष्कर्षों को स्फुरित करता रहता है। जिससे ही सर्वशुभ है। जो पाँचों स्थितियों में "नीतित्रय" से संबद्ध है।

"अनुभव कार्यक्रम नहीं है। अपितु अनुभव में, से, के लिए ही कार्यक्रम है।" नीतित्रय अन्योन्याश्रित है।

अर्थ के बिना धर्मनीति एवं राजनीति, सदुपयोग तथा सुरक्षा के बिना अर्थ की चरितार्थता सिद्ध नहीं है।

मानव अर्थ विहीन नहीं है। प्रत्येक मानव में जन्म से तन-मन की अवस्थिति दृष्टव्य है। तन व मन के योगफल में ही धन का उत्पादन निर्माण, उपयोग, सदुपयोग एवं वितरण प्रत्यक्ष है।

अर्थ के सदुपयोग व सुरक्षा की अनिवार्यता को सिद्ध करता है, जो मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। यही " नीतित्रय " की अनन्यता है, समस्त मानव की एकता के लिए आधार भी है। यह आधार अपरिवर्तनीय एवं शाश्वत है। साथ ही परस्परता में अनन्यता को पाने का स्रोत भी है। यही समाधान चक्र है। इसी समाधान के लिए अनादि काल से मानव तृषित एवं प्रत्याशी है।

4.

अखण्ड समाज गति सहज सामाजिकता की अनिवार्यता

1. भ्रम व भय से मुक्ति पाने के लिए
2. बौद्धिक समाधान के लिए
3. भौतिक समृद्धि के लिए

अभयता ही सुरक्षा व सतर्कता, समाधान ही सदुपयोग व सजगता, समृद्धि ही अर्थ है। मानव ही उत्पादन में अर्थ एवं सुरक्षा का, व्यवहारायाम में न्याय एवं सहअस्तित्व का, विचारायाम में समाधान व दर्शन क्षमता का, अनुभवायाम में परमानन्द एवं सहअस्तित्व का उद्‌गाता है।

मानव में विचार एवं दर्शन क्षमता का प्रमाण न होना ही भ्रम है। दर्शन क्षमतावश सुख की अपेक्षा में दश सोपानीय व्यवस्था कार्य, त्रिधाकार्य क्षेत्र (भौतिक, बौद्धिक, अध्यात्मिक) के योग से ''नीति त्रय'' के आधार पर ''वादत्रय'' का विश्लेषण पूर्वक ''तात्रय'' की व्याख्या सहित मानवीयता में मानव की पाँचों स्थितियों में आचरण संहिता को स्पष्ट करता है, जिसका प्रत्यक्ष रूप अखण्ड सामाजिकता है। फलत: न्याय का अनुभव है, जो सुख है, यही लोकव्यापीकरण पूर्वक अभय है, जिसकी चिरकाँक्षा मानव में है।

अकेले मानव में, से, के लिए सार्थकता सिद्ध नहीं होती क्योंकि समाज या सामाजिकता इसका मूल आधार या कारण है। कारण, गुण, गणित ही निर्णायक तथ्य है, जो ''प्रमाण त्रय'' (व्यवहार, प्रयोग, अनुभव प्रमाण) को सिद्ध करता है।

समाज का आधार

1. मानव एवं मानवीयता
2. प्रमाण त्रय
3. स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्य
4. नीतित्रय

मानवीयता पूर्वक ही सामाजिकता प्रमाण पूर्वक सिद्ध होती है। अमानवीयता की सीमा में सामाजिकता की संभावना नहीं है। अतिमानवीयता में मानवीयता समर्पित रहती ही है। अत:

सामाजिकता की संपूर्ण अभिव्यक्ति मानवीयता और अतिमानवीयता ही है क्योंकि सामाजिकता और किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती है। अत: इसी नियति क्रम या विकास क्रम, विकास एवं जागृति क्रम, जागृति तथ्यवश ही मानव मानवीयता का अनुसरण व आचरण करने के लिए बाध्य है।

अमानवीयता में कितने भी प्रयोग करें अथवा वर्गवादी प्रयोग करें, अन्ततोगत्वा मानवीय स्वभाव, धर्म, दृष्टियों के प्रति समर्पित होना अवश्यंभावी है क्योंकि विश्राम के लिए इसके अतिरिक्त और कोई शरण नहीं है।

मानव पाँच स्थितियों में गण्य है, जो व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्र के रूप में स्पष्ट है।

समाज का मूल रूप प्रत्येक मानव में समझदारी के रूप में समाया है, जो विचार, आशा, आकाँक्षा एवं मंगल कामना के रूप में है।

स्थितिवत्ता की मूल्य दर्शन क्रिया ही अध्ययन है। यथार्थ मूल्य दर्शन क्षमता ज्ञानानुभव ही है।

मूल्य दर्शन क्षमता ही प्रमाणवत्ता को प्रगट करती है प्रमाण केवल प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव ही है।

संबंध विहीन जन्म एवं मूल्य विहीन संबंध नहीं है। सम्पूर्ण मानव के साथ स्थापित संबंध समान हैं। उनमें स्थापित मूल्य भी समान है। यही संबंध व मूल्य ध्रुव है। इसका निर्वाह ही न्याय है। यही न्याय ध्रुव है। मानव में न्याय की याचना, कामना एवं सम्मति जन्म से ही है। यही शाश्वत मूल्य समाज का मूल आधार है। इसी आधार पर ''नीतित्रय'' सुदृढ़ है।

संबंधों में स्थापित मूल्य का निर्वाह ही धर्म है, जिसमें अर्थ के सदुपयोग का स्वभावत: संबंध रहता ही है।

धर्म ही ''सुख'' है। अर्थ के सदुपयोग व सुरक्षा के बिना सुखानुभव सिद्ध नहीं होता, जो प्रत्यक्ष है।

धर्म सफलता ही जीवन की सफलता है। धर्माकाँक्षा विहीन मानव नहीं है। इसीलिए धर्म नीति (व्यवहारान्वयन क्रिया) सदुपयोग प्रधान एवं राज्यनीति सुरक्षा प्रधान, व्यवहार एवं आचरण प्रक्रिया है। इसी सत्यतावश ''नीतित्रय'' भी समाज के मूल में समाहित है।

प्रत्यक्ष अनुमानागम क्रियाएं मानव द्वारा चरितार्थ हुई है। इसी विशेषतावश उत्पादन,

व्यवहार एवं अनुभव योग्य विचार सम्पन्न होने की पूर्ण संभावना स्पष्ट हुई है। मानव के लिए यही अनुपम अवसर है। यही अवसर अभ्युदय के लिए उत्प्रेरित करता है।

मानव में ही विकास एवं जागृति दर्शन क्षमता प्रत्यक्ष है। मनुष्येत्तर प्रकृति में अस्तित्व बनाये रखने के लिए पूरकता, उपयोगिता पूर्वक संतुलन को प्रकाशित किया है।

जागृत मानव में पायी जाने वाली अनुभवमूलक चिन्तन से ओत-प्रोत विचार शक्ति ही स्थितिवत्ता का दर्शन, मूल्य दर्शन एवं प्रमाणीकरण करती है, इसी से संतुलन और सार्वभौमता व अखण्डता प्रमाणित होना पाया जाता है। साथ ही निर्धारण एवं निश्चय पूर्वक अनुसरण व अनुमोदन क्रिया को सम्पन्न करती है।

विचार विहीन मानव नहीं है। विचार के अभाव में प्रमाण सिद्ध नहीं है। मानव का मूल रूप विचार है।

समाज का लक्ष्य

1. अभयता,
2. भौतिक समृद्धि,
3. बौद्धिक समाधान, जिसका प्रत्यक्ष रूप अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था (वर्ग सीमाओं से मुक्त एवं भ्रम व भय से मुक्ति) है।

मानव के अभ्युदय का प्रत्यक्ष रूप अखण्ड सामाजिकता ही है। यही समाज के संतुलन को प्रकट करती है, यही अभय है।

कृषि, पशुपालन तथा प्रौद्योगिकी से ही भौतिक समृद्धि प्रसिद्ध है। इसके लिए पर्याप्त निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्याधिकार अनिवार्य है, जो सामान्य और महत्वाकाँक्षा की सीमा में चरितार्थ होता है।

बौद्धिक समाधान मानीवयता में प्रत्यक्ष है, जिसकी पूर्ण संभावना और अनिवार्यता भी है।

समाज की पाँचों स्थितियों में लक्ष्य समान है। लक्ष्य विहीन मानव नहीं है।

लक्ष्य जब आकाँक्षा व आशावश आवश्यकता या अनिवार्यता के रूप में परिवर्तित (तीव्र इच्छा) होगा, तब यही कार्यक्रम के लिए बाध्यता होगी, क्योंकि लक्ष्य विहीन कार्यक्रम नहीं है।

निश्चित लक्ष्य उचित कार्यक्रम को पहचानने एवं सम्पन्न करने में मानव समर्थ है।

औचित्यता मानवीयता पूर्ण पद्धति से सिद्ध होती है, जो स्पष्ट दर्शन क्षमता पर आधारित है। यही विश्लेषण है।

अतिमानवीयता या अमानवीयता की अपेक्षा में ही मानवीयता का निर्धारण होता है। साथ ही इसी सीमा में विश्लेषण भी पूर्ण होता है।

मानव के चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता ही अभयता, समाधान एवं समृद्धि है।

5.

सामाजिकता का अध्ययन

मनुष्य सामाजिकता के अध्ययन के लिए उत्साही है, मानव में, से, के लिए नहीं है। समाज का केन्द्र मनुष्य है। मानव जीवन चारों आयामों की एकसूत्रता है, जो स्थितिवत्ता है।

अध्ययन स्थितिवत्ता का ही है। स्थितिवत्ता ही सत्यता है। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति की स्थितिवत्ता है। ज्ञानावस्थित मानव में ही अध्ययन क्षमता की विपुलता दृष्टव्य है। जो विकासक्रम उपलब्धि है, जिसका विश्लेषण हो चुका है।

स्थितिशील प्रकृति, स्थिति पूर्ण सत्ता ही प्रत्यक्ष है। स्थितिशीलता में ही वैविध्यता है, जो प्रकृति की सीमा है। स्थिति पूर्ण केवल सत्ता है यह अस्तित्व पूर्ण है। इसी में अनुभव जागृत ज्ञानावस्था सहज इकाई में होता है। स्थितिशील प्रकृति में परस्परता, प्रभाव, प्रतिभाव, व्यंजना एवं प्रतिव्यंजनात्मक क्षमता ही जागृत होकर दर्शन एवं प्रतिदर्शन क्रिया को प्रकट करती है। यही क्षमता स्थितिवत्ता का अन्वेषण करने के लिए बाध्य करती है, साथ ही स्थितिपूर्ण में अनुभूति के लिए भी।

दर्शन क्षमता प्रत्येक मानव में किसी न किसी अंश में पायी जाती है। दर्शन क्षमता के गुणात्मक जागृति की अभिलाषा से शिक्षा एवं अध्ययन की अनिवार्यता सिद्ध हुई है।

संपूर्ण अध्ययन स्थितिवत्ता का दर्शन, दर्शन ही ज्ञान एवं ज्ञान ही अनुभव है। अनुभव ही सत्य है और सत्य अपरिणामी है। प्रयोग और व्यवहार पूर्ण सिद्ध प्रमाण भी अनुभव ही है।

दर्शन विहीन प्रयोग व व्यवसाय सिद्ध नहीं है।

अध्ययन के लिए जो प्रत्यक्ष संभावना है वह केवल उत्पादन, व्यवसाय, व्यवहार एवं उसके लिए समुचित क्षमता की सीमा में है, जो दर्शन ज्ञान और अनुभव ही है।

विश्लेषित स्वीकृत होना ही अध्ययन है। रूप, गुण, स्वभाव और धर्म की प्रत्यक्षानुभूति ही विश्लेषण है, जो स्थितिवत्ता व सत्य है। अस्तु, अध्ययन का फलन ही अनुभव है। अनुभव विहीन प्रत्येक उत्पादन कार्य में त्रुटि एवं व्यवहार कार्य में गलती अथवा अपराध भावी है।

त्रुटि एवं अपराध मानव की वांछित प्रस्तुति नहीं है। यह प्रस्तुति तब तक रहेगी जब तक अध्ययन पूर्ण न हो जाय, प्रत्येक मानव में अध्ययन प्रवृत्ति जन्म से ही पाई जाती है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि उत्पादन और व्यवहारिक अध्ययन को संतुलित रूप में संपन्न करना अनिवार्य है।

न्यायपूर्ण व्यवहार व शिक्षा मानवीयता में प्रत्यक्ष है। गुणात्मक स्थितिवत्ता की उपेक्षा ही अज्ञान, अभाव, असमर्थता एवं अक्षमता है। अज्ञानी को ज्ञानी में, अभाव को भाव में, असमर्थ को समर्थ में, अक्षम को सक्षम में परिवर्तित, परिमार्जित करने के लिए शिक्षा एवं व्यवस्था है।

6.

सामाजिकता का आचरण

सामाजिकता का अध्ययन एवं अभ्यास अनिवार्य साधना है। मानव पाँच स्थितियों में गण्य है, जिसमें से तीन मूलरूप है - 1. व्यक्ति, 2. परिवार, 3. समाज, इसी के परिवर्तित दो रूप हैं - 4. राष्ट्र, 5. अंतर्राष्ट्र।

इन पाँचों स्थितियों का आचरण परस्पर पूरक है। यह दश सोपानीय व्यवस्था में स्पष्ट है।

आशा एवं आकाँक्षापूर्वक किया गया क्रियाकलाप ही आचरण है। आशयपूर्वक स्वादन क्रिया ही आशा है। जिस स्वादन के बिना सहअस्तित्व में दृढ़ता व सुरक्षा नहीं है, उसकी अपेक्षा ही स्वादन क्रिया का आशय है। मूल्य रुचि ग्राही क्रिया ही स्वादन है। मानव में संचेतना और गति का संयुक्त रूप ही क्रिया है। ऐसी क्रियाओं का समूह ही क्रियाकलाप है। मन में

आस्वादन एवं चयन क्रिया प्रसिद्ध है। स्वागत क्रिया ही आकाँक्षा है। यही संचेतना एवं स्थितिवत्ताग्राही क्रिया में संचेतनशीलता का लक्षण है।

संचेतनशीलता ही स्वागत क्रिया का आधार है। जो जितना ही संचेतनशील होता है, उतना ही अन्य की वेदना, संवेदना, संज्ञानीयता एवं स्थितिवत्ता के संकेत को ग्रहण करता है। फलत: निराकरण के लिए प्रयास करता है। यही प्रयासोन्मुखता का आधार है।

मानव ही इस पृथ्वी पर अधिकाधिक संचेतनशील है। परस्पर मानव की संचेतनशीलता में जो अंतरान्तर है, उसी में अनन्यता को स्थापित करने के लिए प्रयास भी किया है। यही शिक्षा और अध्यापन कार्य की प्रेरणा भी है।

जागृतिशीलता का प्रत्यक्ष रूप ही संचेतनशीलता है, जिसका चरमोत्कर्ष ही अनुभव क्षमता है।

वेदना भ्रमवश होती है, संवेदना इन्द्रिय सन्निकर्ष के साथ होने वाली भंगुरता के आधार पर संज्ञानशीलता के लिए जिज्ञासा का स्रोत है। संवेदनशीलता के आधार पर ही संज्ञानशीलता की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। वेदना ही संवेदना एवं संवेदना ही संवेगों का मूल तत्व है। संचेतनामूलक पाँच मूल प्रवृत्ति हर्ष कारक, वेदनामूलक पाँच प्रवृत्तियाँ क्लेश परिपाकात्मक हैं। हर्ष ही मानव की वांछित उपलब्धि है, क्लेश नहीं।

आचरण विहीन इकाई नहीं है। अस्तु, मानवीयतापूर्ण आचरण व्यक्ति में; सहयोग-सहकार्य योग्य क्षमता परिवार में; प्रोत्साहन योग्य प्रचार, प्रदर्शन एवं प्रकाशन समाज में; उसका संरक्षण एवं संवर्धन योग्य विधि एवं व्यवस्था राष्ट्र में; उसके अनुकूल परिस्थितियाँ अन्तर्राष्ट्र में प्राप्त कर लेना ही पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता का सूत्र है।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्थापित संबंध समान हैं। संबंधों में निहित मूल्य नित्य हैं। किसी का सान्निध्य दूर होने मात्र से, उस संबंध में निहित मूल्य का परिवर्तन नहीं है, इसी प्रकार वियोग में भी। वियोग शरीर का है न कि मूल्यों का, जो प्रत्यक्ष है। जैसे माता-पिता से वियोग। जीवन कालीन वियोग में भी पिता के प्रति जो मूल्य है, उसका परिवर्तन नहीं है।

प्रत्येक परस्परता में दायित्व (बाध्यता सहित देय सीमा) समाया हुआ है। यही स्थापित मूल्यों में वस्तु व सेवा को अर्पित करता है। सभी अर्पण, मूल्यों के प्रति समर्पण है। यही अर्पण प्रक्रिया ही कर्त्तव्य है। व्यवहारपूर्वक यह प्रमाणित होता है कि ऐसा कोई संबंध नहीं है, जिसमें मूल्य न हो और जिसके प्रति दायित्व व कर्त्तव्य न हो।

संबंध सीमा ही परिवार एवं समाज है। जन्म, जीवन, व्यवहार विशिष्ट, शिष्ट,

नीति एवं उत्पादन भेद से संबंध प्रसिद्ध हैं।

1. शरीर संबंध = माता-पिता एवं भाई-बहन, पति-पत्नि, पुत्र-पुत्री
2. जीवन-जीवन संबंध = गुरु-शिष्य, जागृत सभी संबंध
3. शिष्ट-शिष्ट संबंध = मित्र, साथी, सहयोगी
4. नीति-नीति संबंध = विधि, व्यवस्था, संस्कृति एवं सभ्यता
5. उत्पादन-उत्पादन संबंध = क्षमता, अवसर, साधन एवं वितरण

संबंधों में निहित मूल्यवत्तावश ही उसकी अक्षुण्णता पाई जाती है। यही अखण्ड समाज की अक्षुण्णता भी है।

मूल्यों की स्थिरता ही अखण्डता एवं अक्षुण्णता है, जो नियति क्रम में पाये जाने वाले तथ्य हैं। समाज की पाँचों स्थितियाँ परस्पर पूरक हैं, जिसकी एकसूत्रता ही अखण्डता है। अन्तर्राष्ट्र में ''नीतित्रय'' का संतुलन; राष्ट्र में मानवीयता के संरक्षण एवं संवर्धन योग्य विधि व्यवस्था एवं शिक्षा-प्रणाली-पद्धति; सामाजिकता में मानवीयता का प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन एवं प्रोत्साहन; परिवार में मानवीयता के प्रति समर्पण, विश्वास एवं निष्ठा; व्यक्ति में मानवीयता पूर्ण आचरण, व्यवहार, अभ्यास, अनुभव, विचार तथा आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही लोक मंगल कार्यक्रम है। यही चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता का सूत्र है।

प्रत्येक मानव में सीमित शक्ति, निश्चित दायित्व, कर्त्तव्य एवं स्थापित संबंध पाये जाते हैं, जिनकी एकसूत्रता ''नियम त्रय'' एवं मानवीयता पूर्ण पद्धति से प्रमाणित होती है। यही गुणात्मक परिवर्तन का औचित्य और मानवीय आचार संहिता है।

मानव की मूल शक्ति निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य है, यही मूल पूंजी है। यही मानव का मूल मूर्त्त रूप भी है जो क्षमता, उत्पादन और व्यवहार के रूप में प्रकट होता है। यही प्रकटन व्यवहारात्मक जनवाद एवं समाधानात्मक भौतिकवाद को स्पष्ट एवं चरितार्थ करता है।

प्रत्येक व्यक्ति, परिवार व वर्ग स्वत्व और स्वतंत्रता चाहता है।

स्वाधीनता सहित ही स्वत्व है। स्वविचार, इच्छा, संकल्प, आशानुरूप चालन, संचालन एवं नियोजन क्रिया ही स्वाधीनता है, जो प्रत्यक्ष है। यही सार्वभौमता विधि से सफल है।

स्वयं का प्रत्यक्ष रूप ही स्थिति है, जो अनुभव है। ऐसी क्षमता के अधीन जो कुछ भी

है, वही स्वाधीनता है। स्व-बौद्धिकता के अधीन = स्वाधीनता।

स्वयं से वियोग न होना ही स्वत्व है।

भ्रमवश सम्पत्तिकरण ही समाज को सामाजिकता से वंचित करता है।

''मानव का स्वत्व केवल निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य ही है।'' साथ ही उसके नियोजन से उत्पन्न उत्पादनों पर भी प्रत्यक्ष रूप में स्वत्व होता है, जो सामाजिक है। भ्रमवश सम्पत्तिकरण ही समाज का सामाजिकता से वंचित कर देता है, क्योंकि संग्रह प्रवृत्ति ही क्लेश परिपाकात्मक है, जो प्रसिद्ध है। मानव जीवन असंग्रह (समृद्धि), स्नेह, विद्या, सरलता एवं अभयात्मक मूल प्रवृत्तियों पर ही हर्ष का अनुभव करता है। संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान एवं भयात्मक प्रवृत्तियों पर आधारित संपूर्ण व्यवहार, उत्पादन एवं आचरण स्वयं में, से, के लिए क्लेश सहित है।

''जो जिसके पास है, उसी का वह बंटन करता है।''

इसलिए संपूर्ण उपार्जन मानवीयता की सीमा में उपयोगितापूर्ण उपयोगवादी प्रक्रिया, व्यवहार एवं आचरण ही सामाजिक तथा अमानवीयता की सीमा में संग्रह सहित, उपभोगवादी विचार प्रक्रिया, व्यवहार एवं आचरण ही असामाजिक सिद्ध हुआ है।

अविद्या एवं भय के परिणाम में दयनीयता, द्वेष एवं अभिमान के परिणाम से क्रूरता तथा संग्रह व भय के परिणाम से हीनता का प्रसव है।

विद्या का प्रत्यक्ष रूप निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य, असंग्रह का प्रत्यक्ष रूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन, सरलता का प्रत्यक्ष रूप सामाजिकता, स्नेह का प्रत्यक्ष रूप सौजन्यता एवं अभय का प्रत्यक्ष रूप ही सहअस्तित्व है। अस्तु, असंग्रह व सभ्यता के योग से धीरता का, विद्या व अभय के योग से वीरता का एवं स्नेह व सरलता के योग से उदारता का प्रसव है।

उपरोक्त तथ्य ही मानव को स्पष्ट व सिद्ध करता है कि मानव की क्षमता, योग्यता, पात्रता ही उसका स्वत्व है जो निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य ही है। संपूर्ण उत्पादन इसी से होता है। संपूर्ण उत्पादन सामान्य एवं महत्वाकाँक्षा की सीमा में उपयोगी है, यही आवश्यकता है।

मानवीयता से परिपूर्ण होना ही स्वतंत्रता का प्रधान लक्षण है। स्वयं से तंत्रित होना एवं न्याय, समाधान प्रमाणित होना ही स्वतंत्रता है। यही जीवन चरितार्थता का लक्षण है।

वस्तु व जीव पर स्वत्व स्थापित करने व स्वेच्छा पूर्वक उपयोग करने का प्रयास भ्रमित मानव ने किया है। इसी को स्वत्व व स्वतंत्रता मानना ही अविद्या का प्रधान लक्षण है। अस्तु, यह सब उपयोगितावादी सिद्ध हुआ है न कि स्वतंत्रता का आधार।

मानव के स्वत्व में क्षमता, योग्यता एवं पात्रता है। उनके स्वाधीन (स्वबौद्धिकता के अधीन) में जिन वस्तु, स्थान व जीवों को पाया जाता है, उनकी अनिवार्यता मानव की उपयोग क्षमता में, से, के लिए ही है। **क्षमता ही वहन, योग्यता ही प्रकटन एवं पात्रता ही ग्रहण क्रियाएं हैं, जो प्रत्येक मानव में प्रत्यक्ष हैं।** साथ ही यही मानव का स्पष्ट रूप एवं अधिकार भी हैं। क्षमता, योग्यता एवं पात्रता ही मानवों का इकाईत्व, सीमा, संवेग, प्रवृत्ति, प्रतिभा, व्यक्तित्व, वहन, निर्वाह, निरूपण, निर्धारण, निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण एवं संयोजन है। यही उत्पादन, व्यवहार एवं अनुभव प्रमाण है।

वहनपूर्वक स्थापित मूल्यों का निर्वाह, शिष्टतापूर्वक शिष्ट मूल्यों का आचरण एवं व्यवहार, आचरण सहित भौतिक मूल्यों (उत्पादन मूल्यों) का समर्पण-अर्पण-उपयोगी सिद्ध हुआ है। यही स्वतंत्रता का मूल रूप है।

स्वत्व निर्वाह से, स्वतंत्रता प्रयोजन से, अधिकार उपलब्धि से प्रमाणित है।

मानव का अधिकार भौतिक (उत्पादन व व्यवस्था) की सीमा में; अधिकार एवं स्वतंत्रता बौद्धिक (आचरण एवं स्वतंत्रता) की सीमा में; अधिकार स्वतंत्रता एवं स्वत्व अध्यात्म (अनुभव) में चरितार्थ हुआ है। यही व्यवहारात्मक जनवाद, समाधानात्मक भौतिकवाद, अनुभवात्मक अध्यात्मवाद है, जो धर्म नीति एवं राज्य नीति को स्पष्ट करता है।

जो स्वयं के अधीन में हो जिससे स्व-विचार, इच्छा, संकल्प एवं आशानुरूप नियोजनपूर्वक प्रमाण सिद्ध हो, यही स्वत्व का प्रत्यक्ष रूप है। मानव में पाये जाने वाले मूल तत्व ही निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य है, जिनका वियोग संभव नहीं है। इसलिए यह मानव का स्वत्व सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त भी वस्तु का संग्रह, स्थान का सम्पत्तिकरण (स्वामित्व) पूर्वक स्वत्व को पाने का प्रयास भ्रमित मानव ने किया है, जिसमें वह सफल नहीं हुआ। साथ ही उनका सफल होना संभव भी नहीं है। क्योंकि -

1. मानव का भौतिक शरीर अमर नहीं है।
2. मानव के द्वारा किया गया संग्रह व संपित्तकरण स्वयं क्षरणशील है।
3. स्थान और वस्तुओं का संपत्तिकरण अस्थायी है।

इसलिए मानव, मानव के साथ व्यवहार, मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ उत्पादन, अधिक विकसित के साथ गौरव व कृतज्ञ होने एवं सत्ता में अनुभव के लिए प्रवृत्त है।

सत्ता में अनुभव करने के लिए अवसर सबके पास समान है, किन्तु पात्रता व अर्हता में प्रभेद है।

अधिक विकसित इकाई कम विकसित के विकास में सहायक, सहयोगी दिशा निर्देशक एवं शिक्षक के रूप में प्राप्त है, जो माता-पिता, शिक्षक एवं उपदेशक के संबंधों में प्रत्यक्ष है, जो अनिवार्य है।

स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही प्रत्यक्ष व्यवहार है, जो सामाजिकता के लिए अनिवार्यतम तथ्य है। इसके निर्वाहनार्थ उत्पादन आवश्यक है, इसका क्षेत्र प्रसिद्ध है।

जागृत मानव का व्यवहार ही व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता व विधि को प्रकट करता है, जिसके लिए वह उत्सुक है। चूंकि व्यवहार विहीन मानव नहीं है, अत: व्यवहार के बिना मानव जीवन का कार्यक्रम सिद्ध नहीं होता है। अस्तु, व्यवहार मानव जीवन का अविभाज्य अंग है। विकास के क्रम में व्यवहार एक विधिवत् स्थिति है।

संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था का आधार मानवीयता है, क्योंकि मानवीयता में ही सामाजिकता स्थापित सिद्ध है। अमानवीयता की सीमा में सामाजिकता की संभावना नहीं है, जबकि अतिमानवीयता में सामाजिकता समायी हुई है, इसलिए मानवीयता का आधार स्थापित संबंधों में निहित स्थापित स्थायी मूल्य ही है।

स्थापित मूल्यों में, से, के लिए ही स्वस्थ व्यवस्था स्थित है। चूंकि स्थापित मूल्यों की अनिवार्यता सर्वदा सबके लिए समान है, इसलिए स्थापित मूल्य ही विधि है। स्थापित मूल्यों का निर्वाह आचरण पूर्वक है, जो स्वयं में संस्कृति व सभ्यता है। यह सब मानवीयता में सहज प्रमाण परंपरा सिद्ध होता है।

वस्तु मूल्यों का नियंत्रण व्यवस्था पर है। उत्पादन सिद्ध वस्तुएं आवश्यकता के आधार पर दृष्टव्य हैं, इसलिए उनका मूल्य निर्धारण उन पर स्थापित की गई उपयोगिता एवं सुन्दरता के आधार पर ही है।

आवश्यकताएं सामयिक हैं। प्रत्येक समय में प्रत्येक मानव को प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता समान रूप से सिद्ध नहीं होती, जबकि स्थापित संबंधों की अनिवार्यता

निरंतर है, जो प्रसिद्ध है। इसलिए आवश्यकताएं सामान्य एवं महत्वाकाँक्षा की सीमा में ही हैं। इन सब का उपयोग समाज गति के अर्थ में सामयिक है। इसलिए संबंधों के निर्वाह में ही वस्तुओं के उपयोग, सदुपयोग व वितरण प्रयोजन की सीमा में समाहित हैं।

7.

स्थापित मूल्यों की अनिवार्यता सर्वदा सबके लिए समान है।

स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का परिवर्तन किसी भी देश, काल व स्थिति में नहीं है। यही स्थायित्व का लक्षण और अनिवार्यता का मूल कारण है। इस प्रकार के स्थापित मूल्य प्रधानत: नौ हैं, जो निम्न प्रकार है :-

1. कृतज्ञता 2. गौरव 3. श्रद्धा 4. प्रेम 5.विश्वास 6. वात्सल्य 7. ममता 8. सम्मान 9. स्नेह।

ये ही नौ सामाजिक मूल्य मानवीयता सहज प्रयोजन में प्रत्येक व्यक्ति के आचरण के आधार है। इनमें से विश्वास ''साम्य'' मूल्य है और ''प्रेम'' पूर्ण मूल्य है। व्यवहार निर्वाह काल में उक्त स्थापित मूल्यों के साथ आचरण प्रक्रिया (शिष्टता) रहती है, जो क्रमश: सौम्यता, सरलता, पूज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, उदारता, सौहार्द्रता तथा निष्ठा है। यही शिष्टता है, जो स्थापित मूल्य में समर्पित रहती है, जो प्रसिद्ध है।

शिष्टता पूर्वक स्थापित मूल्य निर्वाह के बिना मानव में अखण्डता व उसकी अक्षुण्णता संभव नहीं है।

सामाजिक स्थापित मूल्य शिष्टता के साथ व्यवहारिक सुगमता के रूप में हैं, जो बौद्धिक समाधान है। शरीर निर्वाह संरक्षण एवं संवर्धन के लिए भौतिक समृद्धि की आवश्यकता है। इन आवश्यकताओं को साम्यत: पाया जाता है।

भौतिक समृद्धि के लिए ही मानव उत्पादन करता है, जिसकी उपयोगिता महत्वाकाँक्षा व सामान्य आकाँक्षा की सीमा में निहित है। यह भी जीवन का अविभाज्य आयाम है। यह स्पष्ट है कि उत्पादन ही मानव जीवन का सर्वस्व नहीं है। यही कारण है कि मानव सामाजिक, आर्थिक, राज्यनीति को पालन करने के लिए बाध्य है।

व्यवहारात्मक जनवाद का आधार केवल ''न्याय'' ही है, क्योंकि प्रत्येक मानव जन्म से ही न्याय का याचक है। यही ''नीतित्रय'' की समन्वयता की एकसूत्रता का भी कारण है साथ ही जनवादी चिंतन, निरीक्षण व स्पष्टीकरण का आधार भी है। व्यवहार का आधार न्याय ही है।

मानव की परस्परता में आश्वस्त एवं विश्वस्त होने का आधार न्याय ही है।

अखण्ड समाज परंपरा में स्थापित मूल्य का निर्वाह ही शिष्टता की अभिव्यक्ति तथा ''अर्थ'' का सदुपयोग है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जीवन में एकसूत्रता ही ''न्याय'' है। यही सार्वभौम कामना है, जो व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार में, परिवार के सहयोग एवं सहकार्य में, समाज के प्रोत्साहन एवं प्रेरणा में, राष्ट्र के संरक्षण तथा संवर्धन में एवं अंतर्राष्ट्रीयता के अनुकूल परिस्थिति एवं एकसूत्रता में चरितार्थ होती है। यही सर्व मानव की कामना, मांगल्य, शुभ, संगीत, वांछनीय अनिवार्यता, ऐतिहासिक उपलब्धि, नियतिक्रम स्थिति, अखण्डता, अभयता, सतर्कता एवं स्वर्ग है।

अखण्ड समाज परंपरा में स्थापित मूल्यों के निर्वाह में ही शिष्टताएं समर्पित हैं। ''अर्थ'' का सदुपयोग मानवीयता में चरितार्थ होता है, जो जागृति क्रम में पायी जाने वाली सुखद स्थिति है, क्योंकि देव पद चक्र में सामाजिकता है, जबकि भ्रांति पद चक्र में यह नहीं है।

शिष्टता में वैविध्यता की संभावना देश कालवश है। ''अर्थ'' के सदुपयोग में तथा स्थापित मूल्यों में विकल्प नहीं है। यही अखण्डता एवं अक्षुण्णता का मूल तथ्य है। इससे ही अनुप्राणित जीवन नित्य कार्यक्रम, उत्सव, समृद्धि, समाधान, उत्साह, सफलता, स्थिरता, शान्ति, संतोष एवं सुख का अनुभव करता है। यही कामना मानव में अनन्त काल से है।

8.

जनाकाँक्षा को सफल बनाने योग्य शिक्षा व व्यवस्था

''जन्म से प्रत्येक व्यक्ति न्याय का याचक है, साथ ही न्याय प्रदान करने में असमर्थ है।'' वह सही कार्य व्यवहार करना चाहता है, भ्रमवश गलती और अपराध करता है। साथ ही वह भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान चाहता है, उसमें स्वयं को असमर्थ पाता है। (समस्या और दरिद्रता से पीड़ित रहता है। इसी तथ्यवश मनुष्य शिक्षा व व्यवस्था में समर्पित

होता है। जब उसे शिक्षा व व्यवस्था से संतोष नहीं मिलता तब संताप, आक्रोश, निराशा एवं असफलता से पीड़ित होता है, फलत: आवेश एवं आक्रोश से युक्त होकर वह विद्रोह करता है। वह असफलता प्राप्त करता है। वह असफलता व संताप को पाकर विद्रोह व आतंकवश छल, कपट व पाखंड करता है, जिसके लिए पूर्व निर्मित द्रोह ही आमूल कारण है। मानव असफलता, निराशा व कुंठा को पाकर आत्महत्या में प्रवृत्त होता है, जबकि यह मानव की वांछित घटना नहीं है। अस्तु जनाकाँक्षानुरूप शिक्षा एवं व्यवस्था की अपरिपूर्णता ही ऊपरवर्णित अवांछनीय घटनाओं तथा परिस्थितियों के कारण है, जो स्पष्ट है।)

जनाकाँक्षा को सफल बनाने योग्य शिक्षा व व्यवस्था की अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी अंश में पायी जाती है अथवा शिक्षा व व्यवस्था द्वारा जनजाति को आश्वस्त व विश्वस्त करने का प्रयास किया जाता रहा है।

शिक्षा व व्यवस्था प्रदान करने वाले सदा ही प्रबुद्ध घोषित किए गए हैं अथवा जनजाति को विवश होकर उन्हें प्रबुद्ध समझना पड़ा है।

''राज्यनैतिक एवं धर्म नैतिक नेतृत्व प्रसिद्ध है।'' दोनों प्रकार के नेतृत्व के मूल में मंगल कामना है ही जिसमें अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा की अवधारणा पाई जाती है। जब तक कार्यक्रम वर्ग सीमावर्ती है तब तक सर्वमंगल कार्यक्रम संभव नहीं है।

नेतृत्व पराभव का कारण अक्षमता एवं वर्ग समुदाय प्रवृत्ति है जो स्पष्ट है।

नेतृत्व तथा नेतृत्व की अपेक्षा का अभाव नहीं है, नेतृत्व में व्यवस्था व शिक्षा का आश्वासन समाया हुआ है, इसलिए नेतृत्व एक अवश्यंभावी घटना है। मानव के प्रत्येक स्तर, अवस्था एवं स्थिति में नेतृत्व दृष्टव्य है। इसके मूल कारण में मानव में पाया जाने वाला संस्कार एवं उसकी क्षमता में वैविध्यता है। वैविध्यता में समानता की आकाँक्षा एवं प्रत्याशा है।

प्रेरक (नेतृत्व) के मूल में दर्शन एवं विचार क्षमता ही है, जो सफल होती है। प्रत्येक सुदृढ़ विचार का आधार दर्शन ही है। अन्ततोगत्वा दर्शन क्षमता ही नेतृत्व क्षमता सिद्ध होती है। (भ्रमवश मानव अपराध और गलती सहित नियति विरोधी, जागृति विरोधी कार्यों में नेतृत्व करते हैं, ये अपराधी होते हैं।)

सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान है। दर्शन में प्रकृति का विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति रूप में अध्ययन मानव के लिये प्रस्तावित है, जो स्वयं समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद तथा अनुभवात्मक अध्यात्मवाद को स्पष्ट करता है, जिससे ''प्रमाणत्रय'' (प्रयोग,

व्यवहार एवं अनुभव) सिद्ध होता है। मानव जीवन में ''चतुरायाम'' **उत्पादन, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति अविभाज्य हैं जो प्रसिद्ध है,** इसलिए व्यवहारात्मक जनवाद का प्रत्यक्ष रूप न्याय सुलभ, समृद्ध जीवन में प्रतिष्ठित एवं अक्षुण्ण होना है। यही मानव में अखण्डता को स्थापित करता है, जिसकी पूर्ण सभांवना व आवश्यकता है ही। जैसे :-

1. मानव संबंधों सहित ही जन्म लेता है।
2. स्थापित संबंध में स्थापित मूल्य है।
3. सामाजिक मूल्य अपरिवर्तनीय है।
4. मानवीयता में ही अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा सिद्ध होती है।
5. मानवीयता जागृत मानव परंपरा में ही प्रमाणित होता है।
6. जागृत मानव सामाजिक न्यायिक इकाई है।
7. सामाजिक मूल्य में, से, के लिए बिना शिष्टता एवं वस्तु व सेवा की प्रयुक्ति सफल नहीं है।
8. मानव में स्वभाव सहज अभिव्यक्ति, धर्म सम्पन्नता में अनुभूति प्रसिद्ध है।

समाधानात्मक भौतिकवाद की चरितार्थता आवश्यकता से अधिक उत्पादन है, जो अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा के रूप में मानवीयता में दृष्टव्य है। यही मानव की चिरकामना है जिसका पालन पाँचों स्थितियों में मानवीयता की सीमा में होता है। अमानवीयता की सीमा में इसकी अवहेलना होती है। अतिमानवीयता पूर्वक स्वभावत: चरितार्थ होती है। चरितार्थता ही मानव का अभीष्ट है।

आशा, आवश्यकता तथा अनिवार्यता पूर्वक किया गया प्रयास ही अभीष्ट है, इससे विहीन कार्यकलाप मानव में सफल नहीं होता है। अस्तित्व में जागृतिपूर्वक मानव स्पष्टताधिकार सम्पन्न एवं क्षमता को स्पष्ट करता है जो एकसूत्रता एवं सार्वभौमता है। भ्रमवश जितने भी विविधताएं हैं, उनमें एकसूत्रता नहीं होती है। यही सम्पूर्ण विरोध का कारण है। जैसे :-

सामाजिक मूल्य : जीवन मूल्य, मानव मूल्य व स्थापित मूल्य के आधार पर

शिष्ट मूल्य : निश्चित

उपयोगिता मूल्य : निर्धारित

ऊपरवर्णित तीनों मूल्यों से अधिक अनुभव मानव में, से, के लिए नहीं है क्योंकि

आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा भौतिक मूल्यवत्ता प्रसिद्ध है, जिसे प्रमाण के रूप में देखा जा रहा है। सामाजिक मूल्य अनुभव में, शिष्ट मूल्य व्यवहार में एवं भौतिक मूल्य उत्पादन में उपयोगिता में स्पष्ट है।

व्यवहार एवं अनुभव निर्विरोधिता ही समाधान है। यही समाधानात्मक भौतिकवाद को स्पष्ट करता है क्योंकि व्यवहार का आधार अनुभव है तथा उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता एवं वितरण का आधार समाधान है। यही समाज एवं सामाजिकता है।

''अनुभव अपरिवर्तनीय है।'' यदि परिवर्तन है तो वह अनुभव नहीं, केवल अनुभव के प्रति भास, आभास एवं प्रतीति है।

''आशाएं आवश्यकता में, आवश्यकताएं अनिवार्यता में ही संयत एवं चरितार्थ है।''

उपयोगिता मूल्य आवश्यकता में, आवश्यकता मूल्य शिष्टता में, शिष्टता मूल्य स्थापित मूल्य में, स्थापित मूल्य मानव मूल्य में, मानव मूल्य जीवन मूल्य में समर्पित पाये जाते हैं। स्थापित मूल्य ही जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम का आधार है, इसी आधार पर संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था संरचनायें स्थित होती हैं न कि केवल उत्पादन पर; क्योंकि **उत्पादन मानव के अधीन है न कि उत्पादन के अधीन मानव।**

मानव ने भ्रमवश मानव एवं मनुष्येत्तर प्रकृति पर अधिकार और शासन करने का प्रयास किया। फल परिणाम में मतभेद, विरोध, द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध, प्रदूषण, मिलावट, भ्रष्टाचार जैसी अप्रत्याशित घटना हो चुकी हैं। इसी क्रम में धरती भी अस्वस्थ हो गई है। **मानव को मानव पर अधिकार पाना संभव नहीं है, शिक्षा व व्यवस्था पूर्वक सहअस्तित्व को पाना ही संभव है। यही परस्पर व्यवहार की बाध्यता है। मानव के लिए अवसर, आवश्यकता, अनिवार्यता एवं लक्ष्य समान है। इसलिए मानव का लक्ष्य सुख, शान्ति, संतोष एवं आनन्द ही है। इसे सफल बनाना ही अभ्यास है।**

आवश्यकता महत्वाकाँक्षा एवं सामान्याकाँक्षा की सीमा में है।

अनिवार्यता बौद्धिक समाधान (निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य) के रूप में है।

अवसर मानवीयता, अमानवीयता एवं अतिमानवीयता पूर्वक व्यवहार करने का है। अवसर ही मानव में विचार वैविध्यता एवं एकता का प्रधान कारण है।

विचार ही मूल्य दर्शन क्षमता है। मूल्य दर्शन क्रिया ही मानव की मूल्यवत्ता है। मूल्यों में एकता तथा मनुष्येत्तर (रूप व क्रिया) में अनेकता का अनुभव किया गया है।

मूल्य में, से, के लिए ही मानव प्रकारान्तर से समर्पित है।

संबंध व स्थापित मूल्य केवल अखण्ड समाज के अर्थ में है, अखण्ड समाज सहअस्तित्व में अनुभव का फलन है जो केवल अनुभव प्रमाण से तथा उत्पादन मूल्य प्रयोग प्रमाण से प्रमाणित है, जिसका उपयोगिता मूल्य दृष्टव्य है।

जड़-चैतन्यात्मक इकाईयों की स्थिति-गति केवल मूल्यों में, से, के लिए ही है। सभी अवस्था और पद में प्रतिष्ठित इकाईयों का मूल्य उन-उन के स्वभाव और आचरण के आधार पर गण्य है।

मानव में जो मूल्य दर्शन क्षमता है, वही मानव को व्यवहार, उत्पादन, विचार एवं अनुभूति में, से, के लिए प्रेरित करती है। यही सामाजिकता एवं बौद्धिकता का आधार है। मानव सामाजिक, न्यायिक इकाई एवं बुद्धिपूर्वक (समझदारी पूर्वक) जीने वाला अर्थात् ज्ञान विवेक विज्ञान पूर्वक जीने वाला से भी संबोधित है, इस संबोधन का अभीष्ट भी इसी क्षमता का निर्देश करता है।

सामाजिक एवं बौद्धिक सफलता के लिए मानव ने अनवरत प्रयास किया है क्योंकि इन दोनों शब्दों का प्रयोग आयाम प्रभेद को इंगित करता है। समाज शब्द व्यवहारिक आयाम को एवं बौद्धिक शब्द वैचारिक आयाम को स्पष्ट करता है। मानव जन्म से ही सामाजिकता के लिए प्रेरित है, जिसका प्रबोधन संस्कृति करती है साथ ही बौद्धिक समाधान के लिए भी।

9.

समाज व्यवस्था

अखण्ड समाज दश सोपानीय व्यवस्था है, यही जागृत मानव परंपरा सहज वैभव है। समाज तीन रूपों में गण्य हैं :-

समाज का प्राथमिक रूप	:	समझदार परिवार
समाज का द्वितीय रूप	:	अखण्ड समाज (राष्ट्र)
समाज का तृतीय रूप	:	मानव (पृथ्वी) अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था

''सभी संस्थाएं अखण्ड समाज के अर्थ में है।'' परिवार ही अखण्ड समाज के अर्थ में प्राथमिक घटक है। इस स्थिति में मुख्यत: सहअस्तित्व का प्रयोग प्रमाण होता है। ऐसे अनेक परिवार मिलकर सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करते है। ऐसी भागीदारी स्वयं संस्थाओं के रूप में गण्य होता है। इसी क्रम में अर्थात् समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने के क्रम में विश्व परिवार सभा पर्यन्त भागीदारी सम्पन्न होता है।

भ्रमित परिवार किसी सीमावर्ती भूमि पर ही रहता है इसी प्रकार अनेक भ्रमित परिवारों में भी इसी पद्धति से भूमि की सीमा बनती है। भय, संत्रास सहित संस्था युद्ध बल संचय करने में विवश होता है। ऐसी प्रत्येक संस्था के मूल में लक्ष्य के प्रति जो कार्यक्रम है वही उसका मूल विचार हो जाता है क्योंकि भ्रमित लक्ष्य सार्थक होना नहीं होता है। इस प्रकार संस्था का मूल रूप विकृत और असफल ही होता है। ऐसे कार्यक्रम को तंत्रित करने के लिए भ्रमित मानव विवश होता है। फलत: पद और पदाधिकारियों की अनिवार्यता निर्मित होती है।

भ्रमित संस्था के प्रथम एवं द्वितीयावस्था में समर शक्ति संचयता की आवश्यकता समान है क्योंकि राज्य संस्थाएं अनेक हुई हैं।

प्रत्येक संस्था प्रभुत्ता एवं उसकी अक्षुण्णता के प्रति जनजाति को आश्वस्त एवं विश्वस्त होने के योग्य घोषणा बारंबार करती है क्योंकि सबका मूल उद्देश्य यही है। इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि राज्य संस्थाएं अखण्ड समाज में, से, के लिए समर्पित होने के लिए बाध्य है। जागृत मानव परंपरा में सम्यकता को स्थापित करना एवं संरक्षित करना ही उद्देश्य, कार्यक्रम, अध्ययन व्यवस्था है। समग्र की एकसूत्रता के लिए अनिवार्यता केवल सामाजिक, आर्थिक एवं राज्यनीति ही है, जो निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य ही है। सम्यकता को समग्र मानव जाति में स्थापित एवं संरक्षित करना ही संस्था व परंपरा है। यही अभ्यास का लक्ष्य है।

सहअस्तित्ववादी दर्शन क्षमतानुसार ही शिक्षा व व्यवस्था उपलब्ध हुई है। तृतीय अवस्था केवल ''वादत्रय'' पूर्वक सिद्ध होने वाली ''नीतित्रय'' संबद्ध शिक्षा एवं व्यवस्था ही है।

सार्वभौमिकता ही प्रभुसत्ता है। यह केवल सत्य और सत्यता सहज सम्पूर्ण मूल्यों का प्रमाण एवं परंपरा है। वह स्थापित, शिष्ट, व्यवसाय मूल्य पूर्वक अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था है।

प्रबुद्धता ही प्रभुता, सहअस्तित्व ही सत्यता है। इसी का अध्ययन एवं शिक्षा है जिसमें प्रमाण पूर्वक ''नीति त्रय'' सिद्ध होता है। यही प्रभुता है जिसको सर्वसुलभ बनाना ही व्यवहारिक सत्ता है। प्रभुसत्ता का यही प्रत्यक्ष रूप एवं मानव की चिरवांछा भी है। प्रबुद्धता

का तात्पर्य प्रकृष्ट बोध सम्पन्नता से है। प्रकृष्ट बोध सम्पन्नता का तात्पर्य यथास्थिति से पूर्णतया निर्भ्रम रहने से है। अस्तु, प्रभुसत्ता का चरितार्थ स्वरूप सजगता एवं सतर्कता सहित सहअस्तित्व ही है। सहअस्तित्व ही स्वयं में व्यवस्था है।

मानव की यथास्थिति जागृति परंपरा सहज वैभव है।

प्रभुसत्ता के बिना अखण्डता एवं अखण्डता के बिना प्रभुसत्ता सिद्ध नहीं है।

सत्यता के प्रति निर्विरोधिता एवं निर्भ्रमता ही अखण्डता है। निर्भ्रमता के प्रति आश्वस्त करने वाली प्रक्रिया ही सत्ता का प्रत्यक्ष रूप है, यही सबका अभीष्ट है, अप्रतिम शक्ति है। साथ ही यही मानव को देवता एवं भूमि को स्वर्ग बना देती है जिसके लिए सभी चिरतृषित है।

'सत्ता' का तात्पर्य सार्वभौम व्यवस्था है।

सत्ता का तात्पर्य सार्वभौम है।

सत्ता का तात्पर्य ज्ञान, विवेक, विज्ञान सम्पन्नता - यही प्रबुद्धता, यही प्रभुसत्ता, यही सत्ता और सत्ता ही सार्वभौम है।

प्रभुता - स्वीकार योग्य सूत्र व्याख्या।

प्रभुता अर्थात् स्वीकार योग्य सूत्र व्याख्या और सत्ता अर्थात् सार्वभौम व्यवस्था है।

''**प्रबुद्धता का परावर्तित रूप प्रभुता, प्रभुता का परावर्तित रूप सत्ता,** सत्ता का परावर्तित रूप शिक्षा, शिक्षा का परावर्तित रूप प्रणाली पद्धति व नीति, प्रणाली पद्धति व नीति का परावर्तित रूप चारों आयाम एवं दश सोपानीय व्यवस्था की एकसूत्रता और चारों आयाम व पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता ही प्रभुसत्ता है।

नियम, न्याय, धर्म एवं सत्य देश कालातीत हैं, अत: सार्वभौमिक हैं। इसलिए सार्वभौमिकता ही अप्रतिमता, अप्रतिमता ही मध्यस्थता, मध्यस्थता ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही विज्ञान व विवेक, विज्ञान व विवेक ही सम्प्रभुता, सम्प्रभुता ही अखण्डता, अखण्डता ही समाधान एवं समृद्धि, समाधान एवं समृद्धि ही सहअस्तित्व, सहअस्तित्व ही जीवन एवं जीवन ही नियम, न्याय, धर्म एवं सत्य है। मानव जीवन कार्यक्रम में विधि, नीति एवं व्यवस्था का समाहित रहना प्रसिद्ध है। जैसे :-

प्रभुता = विधानाभ्यास = सत्ता = नीति = व्यवस्था

सत्य = विधि, चिन्तनाभ्यास = नीति = व्यवस्था

धर्म = विधि, शास्त्राभ्यास = नीति = व्यवस्था

न्याय = विधि, व्यवहाराभ्यास = नीति = व्यवस्था

नियम = विधि, कर्माभ्यास = नीति = व्यवस्था

विधि विहित नीति व व्यवस्था ही चारों आयामों एवं दश सोपानीय व्यवस्था की एकसूत्रता को स्थापित करती है। यही जागृत जीवन का प्रत्यक्ष रूप एवं कार्यक्रम है। यही अभ्यास का फलन है। यही जागृत मानव परंपरा का अभ्यास और अभ्यास का वैभव है।

सहअस्तित्व ही प्रभुता है, जागृति क्रम और जागृति परंपरा में अनिवार्य क्रिया, प्रक्रिया, स्थिति एवं स्थितिशीलता व गति ही सार्वभौमिकता है। जैसे - मानव के लिए मानवीयता पूर्ण क्रियाकलाप।

सार्वभौमिकता ही निर्विवाद एवं समाधान है।

ज्ञानावस्था की इकाई में निर्विवाद की आशा आकाँक्षा है। साथ ही उसमें पूर्णता के लिये प्रयास भी साम्यत: पाया जाता है। इसकी अपर्याप्तता ही है, जो प्रभुसत्ता में, से, के लिये विविधता है। यही द्रोह, विद्रोह, आतंक तथा युद्ध है जबकि यह सब मानव की वाँछित (आशित) घटना, स्थिति या परिस्थिति नहीं है।

समृद्धि, समाधान, अभय एवं सहअस्तित्व ही मानव कुल की सार्वभौमिक आकाँक्षा है।

प्रभुसत्ता की प्रतिष्ठा तब तक परिपूर्ण नहीं है जब तक अभयता को प्रदान करने में समर्थ न हो जाए।

प्रभुता ही अभयता, अभयता ही क्रम, क्रम ही जागृति, जागृति ही अनिवार्यता, अनिवार्यता ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही जीवन सफलता और जीवन सफलता ही प्रभुता है।

मानवीयता जागृत मानव में होना ही प्रभुसत्ता की प्रतिष्ठा एवं उसकी अक्षुण्णता है।

सत्ता का तात्पर्य जागृति सहज परंपरा से है जो सार्वभौम व्यवस्था रूप में होता है। अमानवीयता में सत्ता का प्रयोग प्रभुता विहीन होता है। इस प्रकार के सत्ता के प्रयोग से प्रभुता का वैभव प्रकट नहीं है। इसी कारणवश वह मानवीयता की शरण के लिए बाध्य है।

अतिमानवीयता में प्रबुद्धता की परिपूर्णतावश सत्ता स्वतंत्रता में समाहित रहती है। फलत: प्रभुसत्ता अक्षुण्ण होती है।

वर्ग विहीन अखण्ड समाज ही प्रबुद्धता का प्रत्यक्ष रूप है।

प्रबुद्धता ही अभ्युदय है। यही शिक्षा का आद्यान्त लक्ष्य है।

मानव ही कारण, सूक्ष्म, स्थूल तथ्यों का अध्ययन करता है।

प्रत्येक मानव में पाये जाने वाले अनुभव के लिये कारण, विचार के लिये सूक्ष्म, व्यवहार के लिये सूक्ष्म-स्थूल तथा उत्पादन के लिये स्थूल तथ्यों का अध्ययन है, जो प्रत्यक्ष है।

अध्ययन से वैचारिक नियंत्रण, शिक्षा से व्यवहारिक नियंत्रण एवं प्रशिक्षण से उत्पादन में नियंत्रण प्रसिद्ध है।

वैचारिक नियंत्रण ही प्रधान उपलब्धि है, यही वैचारिक परिमार्जन संस्कार एवं गुणात्मक परिवर्तन है।

व्यवहार व उत्पादन के लिए विचार ही आधार है। विचार ही सामाजिक एवं असामाजिक है। अध्ययन की चरितार्थता ही स्वयं में, से, के लिए स्पष्ट होना है। वह चैतन्य क्रिया एवं क्रियाकलाप ही है, यही बौद्धिक अध्ययन है। चैतन्य क्रिया एवं आचरण स्पष्ट किया जा चुका है।

''नियम त्रय'' सम्पन्न विचार ही व्यवहार में सामाजिक तथा उत्पादन में सफल हैं।

न्यायपूर्ण जीवन ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है। संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही न्यायपूर्ण व्यवहार है।

न्यायपूर्ण विचार ही प्रबुद्धता के रूप में है। न्यायपूर्ण जीवन ही संयत जीवन है, यही अपव्यय एवं भय से मुक्ति है।

अपव्यय एवं भय में सामाजिकता नहीं है।

संबंध और मूल्य

प्रत्येक संबंध में स्थापित एवं शिष्ट मूल्य स्पष्ट व प्रमाणित हैं। जैसे:-

1. माता-पिता के प्रति विश्वास निर्वाह निरंतरता = गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौम्यता, अनन्यता-भावपूर्वक वस्तु व सेवा के समर्पण रूप में है।

2. पुत्र-पुत्री के प्रति विश्वास निर्वाह निरंतरता = ममता, वात्सल्य, प्रेम, सहजता, अनन्यता-भावपूर्वक वस्तु व सेवा के समर्पण रूप में है।

3. भाई–बहन की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = सम्मान, गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सौहार्द्रता, सरलता, सौजन्यता, स्नेह, अनन्यता–भावपूर्वक वस्तु व सेवा अर्पण के रूप में है।

4. गुरु–शिष्य के प्रति विश्वास निर्वाह निरंतरता = प्रेम, वात्सल्य, ममता, अनन्यता, सहजता, भावपूर्वक प्रबोधन जिज्ञासा पूर्ति सहित वस्तु व सेवा समर्पण के रूप में है।

5. शिष्य–गुरु के प्रति विश्वास निर्वाह निरंतरता = गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौजन्यता, अनन्यता–भावपूर्वक जिज्ञासा सहित वस्तु व सेवा समर्पण के रूप में है।

6. पति–पत्नी की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = स्नेह, गौरव, सम्मान, प्रेम, निष्ठा, सौहार्द्रता, अनन्यतापूर्वक सद्‌चरित्रता सहित वस्तु एवं सेवा अर्पण के रूप में है।

7. साथी–सहयोगी के प्रति विश्वास निर्वाह निरंतरता (व्यवस्था तंत्र में) = स्नेह, सौजन्यता, निष्ठापूर्वक वस्तु व सेवा प्रदान के रूप में है।

8. सहयोगी–साथी के प्रति विश्वास निर्वाह निरंतरता (व्यवस्था तंत्र में) = गौरव, सम्मान, कृतज्ञता, सौहार्द्रता, सौम्यता, सरलता, भावपूर्वक सेवा समर्पण के रूप में है।

9. सख्यता (मित्र) की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = स्नेह, प्रेम, सम्मान, निष्ठा, अनन्यता, सौहार्द्रता भावपूर्वक वस्तु व सेवा समर्पण के रूप में है।

10. व्यवस्था के प्रति भागीदारी का विश्वास निर्वाह निरंतरता = मानवीयतापूर्ण आचरण, व्यवहार, उत्पादनपूर्वक आवश्यकता से अधिक उत्पादन।

11. भागीदारी के प्रति व्यवस्था विश्वास निर्वाह निरंतरता = न्याय सम्मत अभयतापूर्ण जीवन के कार्यक्रम के लिए शिक्षा को सर्वसुलभता न्याय सम्मत आचरण तथा व्यक्तित्व के संरक्षण, संवर्धन, प्रोत्साहन सहित असंदिग्ध न्यायिक व्यवस्था के रूप में है।

12. व्यवस्था व्यवस्थिति की सहज परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = स्थायी मूल्यों में आधारित विधि, शिष्ट मूल्यों में आधारित नीति, उत्पादन

मूल्यों में आधारित व्यवस्था पूर्वक सिद्ध न्याय व समाधान सर्व सुलभता के रूप में है।

13. व्यवस्था एवं संस्कृति की परस्परता में विश्वास निर्वाह = न्याय संगत प्रक्रिया में आश्वासन विश्वसन पूर्वक न्यायानुगमन कार्यक्रम सहित व्यक्तित्व के प्रस्थापन के रूप में है।

14. सभ्यता एवं संस्कृति की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = नौ स्थापित मूल्य में नौ शिष्ट मूल्य, नौ शिष्ट मूल्य में दो उत्पादन मूल्य का अर्पण समर्पण समावेश के रूप में है।

15. सभ्यता विधि की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = प्रबुद्धता, संप्रभुता के रूप में है।

16. सहयोगी-साथी के प्रति विश्वास निर्वाह निरंतरता (अभ्यास विधि में) - श्रद्धा, गौरव, कृतज्ञता, अनन्यता, पूज्यता, सरलता, सौजन्यता एवं सेवा सहित स्व-समर्पण के रूप में है।

17. साथी-सहयोगी के प्रति विश्वास निर्वाह निरंतरता (अभ्यास विधि में) - दायित्व सहित अर्थात् समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी सहित स्नेह, वात्सल्य, ममता, सहजता, सौजन्यता सहित वस्तु समर्पण और संवेदनशील और संज्ञानशील विधि से अर्पण समर्पण सहयोग भाव का निर्वाह करेगा।

स्थापित नौ मूल्यों में, से, के लिये विश्वास साम्य मूल्य है, जिसके बिना कोई ऐसा संबंध नहीं है जो स्वस्थ हो।

प्रेमपूर्ण मूल्य है। प्रेम अन्य आठों मूल्यों के रूप में प्रकारान्तर से है, क्योंकि प्रत्येक स्थापित मूल्य प्रेम से संबंधित है, जो अनुभव पूर्वक सिद्ध है। यही प्रमाण है।

''सत्य ही प्रेम, प्रेम ही पूर्ण, पूर्ण ही अनुभव, अनुभव ही सत्य है। इसलिए पूर्ण मूल्य में स्थापित मूल्य, स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य एवं शिष्ट मूल्य में उत्पादन मूल्य समर्पित है।''

गुरु मूल्य में लघु मूल्य समाया हुआ है। इसलिये जागृति विकास के क्रम में गुणात्मक प्रगति है। इसी क्रम में चैतन्य प्रकृति है। इसके गुणात्मक परिर्वतन के फलस्वरूप ही निर्भ्रमावस्था भी प्रसिद्ध है। यही निर्भ्रम अवस्था पूर्ण मूल्यानुभूति योग्य क्षमता है, इसलिये गुणात्मक परिर्वतन के लिये चैतन्य प्रकृति प्रवृत्त है।

भौतिक वस्तुओं के उत्पादन के दो मूल्य हैं :-

1. उपयोगिता मूल्य।

2. सुंदरता मूल्य (कला मूल्य)।

इन दोनों मूल्यों को आकाँक्षा द्वय की सीमा में प्रयुक्तियाँ है।

प्रकारान्तर से संबंधों की स्थिति निम्नानुसार दृष्टव्य है :-

1. माता-पिता - जन्म दाता, प्राण दाता, जीवन दाता एवं विद्या दाता।

2. भाई-बहन - जन्म सिद्ध, व्यवहार सिद्ध।

3. पति-पत्नी - कामुकतावश अमानवीयता तथा मर्यादावश मानवीयता पूर्ण विधि से यतित्व व सतित्व।

4. गुरु - कुशलता, निपुणता, पाण्डित्य (विद्या)।

5. शिष्य - शिक्षार्थी, विद्यार्थी (जिज्ञासु)।

6. स्वामी - इष्ट उपासना में, विशिष्ट व्यवस्था में तथा शिष्ट व्यवहार में है।

मानव मानव से केवल न्याय व सहकारिता की अपेक्षा करता है। भ्रमित मानव वर्ग वाद वश ही किसी को न्याय प्रदाय करने में इच्छुक होता है और किसी को नहीं। यही मतभेद असामाजिकता का आद्यान्त कारण है।

भ्रमवश सीमित जनजाति का रूप, बल, पद, धन तथा बुद्धि से गर्वित होना भी वर्ग वाद है।

वर्ग वाद के बिना युद्ध संभव नहीं है।

मानव न्यायपूर्ण आचरण पूर्वक निर्भय व समाधानित है।

प्रत्येक मानव न्यायपूर्ण जीने का इच्छुक है, यही सत्यता सामाजिक अखण्डता का आधार है।

परिवार ही बुनियादी व्यवस्था, न्याय एवं शिक्षा है। प्रत्येक मानव के जीवन जागृति और प्रमाणित होने का आधार भी यही है।

मानव का प्रथम परिचय परिवार में ही स्पष्ट होता है। प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलन व्यवहार में प्रमाणित होता है एवं आचरण प्रकटन का भी परिवार ही बुनियादी क्षेत्र है,

उसकी विशेषतानुसार ही विशाल एवं विशालतम सीमा सिद्ध होती है।

धर्म मूलक अध्ययन व धर्मानुगमन योग्य जीवन का कार्यक्रम ही सर्वमंगल है। ''जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति में रूप, गुण, स्वभाव के धर्म प्रत्यक्ष न हो ऐसी कोई इकाई नहीं है।'' यह प्रमाण रूपानुषंगीय जाति निर्णय पदार्थावस्था में; रूप और गुणानुषंगीय जाति निर्णय प्राणावस्था में; रूप, गुण स्वभावानुषंगीय जाति निर्णय जीवावस्था में; रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्मानुषंगीय जाति निर्णय ज्ञानावस्था में पाये जाने वाले प्रत्येक मानव में आवश्यकता के रूप में होना पाया जाता है।

पदार्थावस्था में अस्तित्व धर्म; प्राणावस्था में अस्तित्व सहित पुष्टि धर्म; जीवावस्था में अस्तित्व पुष्टि सहित आशा धर्म एवं ज्ञानावस्था में अस्तित्व पुष्टि आशा सहित सुख धर्म ज्ञातव्य है। यह सब उनमें पायी जाने वाली क्रिया-प्रक्रिया, परिणाम, परिवर्तन, परिमार्जन, प्रयोजन, नियोजन, संयोजन, गठन, संगठन, प्रभाव, प्रसारण, आप्यायन (अध्ययन पूर्वक अपनाया हुआ) तथ्यों के आधार पर है।

मानव में, से, के लिए संवदेना और संज्ञानीयता से ही सम्पूर्ण क्रियाएं है। ग्रहण, विसर्जन बाध्यता = संवेदना। स्थानांतरण = गति। परिणाम, परिवर्तन, परिमार्जन = प्रक्रिया। संगठन, विघटन = परिणाम। वर्तमान से भिन्न = परिवर्तन। आशा, विचार, इच्छा, संकल्प में गुणात्मक परिष्कृति = परिमार्जन। भौतिक, बौद्धिक, गुणात्मक उपलब्धि = प्रयोजन। उत्पादन, व्यवहार = नियोजन। यांत्रिक, तांत्रिक, सामाजिक = संयोजन। मानवीय संबंध = गठन। अखण्ड समाज = संगठन। प्रभाव, क्षमता = प्रसारण। स्वागत आस्वादन पूर्वक ग्रहण = आप्यायन क्रियायें स्पष्ट हैं। आप्यायन क्रियाएं मूल्यों को स्वयं में समा लेने के रूप में स्पष्ट है जिसका प्रमाण मूल्यांकन रूप में होना पाया जाता है।

शिक्षा प्रणाली में अपूर्णता ही विधि का ध्रुवीकरण न होना है। यही व्यवस्था पद्धति का संदिग्ध होना है, जो समाज की आद्यान्त समस्याओं का प्रत्यक्ष रूप है।

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के विधिवत अध्ययन को सर्वसुलभ बनाना ही समाधान का एकमात्र उपाय है। अन्यथा शिक्षित कहलाने वाले अशिक्षितों पर, धनाढ्य निर्धन पर, सबल दुर्बल पर, पदस्थ अपदस्थ या पदहीन पर अधिकार पाने का प्रयास प्रकारान्तर से किया जाना भावी है। इसके निराकरण में गुणात्मक एकता को स्थापित करना, समग्रता के अध्ययन को सुलभ बनाना एवं विधि व्यवस्था को सफल बनाना ही मानवीय संस्कृति सभ्यता की अक्षुण्णता को पाना है। यही व्यवहारात्मक जनवाद का प्रत्यक्ष रूप है। व्यक्तिवादी वर्गवादी प्रयोग सफल नहीं रहा है।

मानव जागृति के अर्थ में गुणात्मक एकता की संभावना है, भोगात्मक भ्रमात्मक एकता की संभावना नहीं है।

मानव मानवीयता के अर्थ में ही गुणात्मक एकता के लिए तृषित है। अस्तु, न्याय का ध्रुवीकरण उसी सीमा में है। "मानव न्याय का याचक है।" इसलिए संज्ञानशील ही एकता के लिये दिशा है। जो बोध, संबोध, प्रबोध क्षमता के रूप में प्रत्यक्ष है। साथ ही यही अग्रिमता का कारण है एवं गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक सतर्कता तथा सजगता के रूप में स्पष्ट है।

संचेतनशील क्षमता ही अनुभव में परमानन्द प्रतिष्ठा, विचार में समाधान प्रतिष्ठा, व्यवहार में प्रेम प्रतिष्ठा है। इस प्रतिष्ठात्रय के लिये मानव अनवरत् पिपासु रहा है। "प्रतिष्ठात्रय ही मानव प्रकृति का लक्ष्य है।" वादत्रय का भी अभीष्ट यही है। इसलिए लक्ष्य की अपेक्षा में ही सही-गलत, उचित-अनुचित, विधि-निषेध, पाप-पुण्य का निर्धारण होता है। **नियम से ही सुख व दुःख, जागृति व ह्रास दृष्टव्य है।**

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का लक्ष्य परमानन्द प्रतिष्ठा, समाधानात्मक भौतिकवाद का लक्ष्य समाधान प्रतिष्ठा एवं व्यवहारात्मक जनवाद का लक्ष्य न्याय और प्रेम प्रतिष्ठा सूत्र है। यही लक्ष्यत्रय केवल संज्ञानशीलता की गरिमा है। यही इसकी क्षमता, योग्यता, पात्रता में गुणात्मक परिवर्तन का मूल कारण है।

जागृति के क्रम में समाधान प्रतिष्ठा की निरंतरता = प्रेम प्रतिष्ठा

प्रेम प्रतिष्ठा की निरंतरता = परमानन्द प्रतिष्ठा है।

प्रेम प्रतिष्ठा ही सतर्कता, परमानन्द प्रतिष्ठा ही सजगता है। वृत्ति व चित्त की एकसूत्रता में समाधान, चित्त व बुद्धि की एकसूत्रता में प्रेम, बुद्धि व आत्मा की एकसूत्रता में परमानन्द प्रतिष्ठा पायी जाती है जो क्रम से प्रतीति, अवधारणा एवं अनुभव है। यही जागृत मानव में, से, के लिए सहज प्रतिष्ठा है।

न्यायपूर्ण व्यवहार = सुख

सुख की निरंतरता = शान्ति

शान्ति की निरंतरता = संतोष

संतोष की निरंतरता = आनन्द

आनंद की निरंतरता = परमानन्द

नियम पूर्ण उत्पादन, न्यायपूर्ण व्यवहार एवं धर्मपूर्ण विचार = मानवीयतापूर्ण जीवन व

अतिमानवीयता की ओर स्पष्ट संभावना एवं अध्ययन

मानवीयतापूर्ण जीवन व अतिमानवीयता की स्पष्ट संभावना एवं अध्ययन = निर्भ्रम ज्ञान

निर्भ्रम ज्ञान = विवेक सम्मत विज्ञान

विवेक व विज्ञान = बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि

भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान = सहअस्तित्व

सहअस्तित्व = अखण्डता

अखण्डता = सामाजिकता

सामाजिकता = स्वर्गीयता

स्वर्गीयता = अभय

अभय = सुख, शांति, संतोष एवं आनन्द

मन तथा वृत्ति का निर्विरोध = सुख = अपराधहीन व्यवहार

वृत्ति व चित्त का निर्विरोध = शांति = अन्याय रहित विचार

चित्त व बुद्धि का निर्विरोध = संतोष = आसक्ति रहित इच्छा

बुद्धि व आत्मा का निर्विरोध = आनन्द = अज्ञान रहित बुद्धि

परम सत्य रूपी सहअस्तित्व में अनुभूति = परमानन्द

ऐसी अनुभूति ही चैतन्य प्रकृति का चरमोत्कर्ष विकास है। यही परमानंद है।

परस्पर वैषम्यता और विरोध ही असामाजिकता है।

मानव में आशय चतुष्टय (समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व) की विषमता ही दु:ख, अशांति, असंतोष एवं अनानन्द है, जो जागृति में न्यूनता है। भ्रमवश व्यक्ति की परस्पर विषमता, असंतुष्टि, असहयोग एवं विरोध है। इन्हीं मतभेदों के प्रकारों से समुदाय एवं वर्ग भावना में मानव प्रवृत्त रहता है। फलत: संघर्ष एवं समरभावी होता है। ये घटनाएं ही अजागृति का द्योतक है।

जागृति क्रम में सार्वभौम समाधान ही शिक्षा व्यवस्था है। इसकी चरितार्थता में

परिमार्जन पूर्वक उसे समृद्ध रूप प्रदान करने के लिये मानव इच्छुक है। इस क्रम में मानव की परस्परता में निर्विरोध वर्ग विहीन अखण्ड समाज के प्रत्यक्ष होने तक प्रयास का अभाव नहीं है।

विरोध का विरोध, दमन, विजय प्रसिद्ध है। प्रथम दोनों असफल एवं तृतीय ही सफल पद्धति है। विरोध के विरोध से प्रतिरोध, विरोध के दमन से प्रतिदमन सिद्ध हुआ है। विरोध पर विजय प्रबुद्धता पूर्वक ही सिद्ध है। इसलिये "वस्तुगत सत्य, व्यवहारगत सत्य, विचारगत सत्य एवं अनुभवगत सत्य के प्रति कोई मतभेद नहीं है।"

आरोप और कल्पनाएं अनेक होती है। आधार विहीनता ही आरोप व कल्पना है, आधार केवल प्रमाण ही है।

मानव जीवन के कार्यक्रम के लिये प्रमाणत्रय ही आधार है। "सत्य-सत्यता ही स्थिति है," जो प्रत्यक्ष है। यही मानव जीवन में प्रमाण पूर्वक समाधान व समृद्धि के रूप में चरितार्थ हुआ है। इसके लिए ही उसमें आशा व प्रत्याशा है।

मूलतः मानव अनुभूति एवं विचार पद में प्रतिष्ठित हैं। अनुभव मूलक व्यवहार, समाधान, समृद्धि मूलक उत्पादन ही मानव जीवन की चरितार्थता है।

स्थापित मूल्यों का अनुभव होता है। उत्पादन पक्ष में समृद्धि ही अनुभव है जिसके लिये ही सम्पूर्ण प्रयास है। यही इस सत्यता को स्पष्ट करता है कि जीवन सहज कार्यक्रम केवल अनुभव ही है।

समाधन ही अनुभव है, स्थापित मूल्य अनुभव है ही। अनुभव की अपूर्णता ही अजागृति है। जागृति के लिए ही शिक्षा व व्यवस्था है।

समाधान स्थापित है, प्रत्येक समस्या के लिए समाधान है, इसलिए अनुभव क्षमता या संभावना ही मनुष्य में पाई जाने वाली विशेषता है, जो जागृति क्रम में स्थितिवत्ता के रूप में दृष्टव्य है।

अभ्युदय सहज महिमा के मूल में अनुभव ही है। अनुभव का दृश्य रूप न्यायपूर्ण व्यवहार है, समृद्धि का दृश्य रूप नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्ण उत्पादन है।

अनुभव केवल स्थिति, स्थितिवत्ता की पूर्णतया स्वीकार क्षमता है। यही जागृति सहज गरिमा है।

सत्ता ही स्थितिपूर्ण है। प्रकृति स्थितिशील है। प्रकृति में विविधतायें है। यही

विकासक्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति व्यवस्था एवं स्थितिवत्ता है। ऐसी स्वीकार योग्य क्षमता का होना या न होना ही जागृति क्रम की स्थिति है।

केवल चैतन्य प्रकृति ही अनुभव करती है, उसको ही अनुभव करने का अवसर है।

अनुभूति ही मानव का अभीष्ट है। जागृति स्वयं में सुयोजित क्रम है। गुणात्मक विकास में सहयोगी क्रम ही सुयोजन है। क्रम ही अग्रिमता को सिद्ध करता है।

प्रकृति में पाया जाने वाला ''चक्र त्रय'' ही व्यवस्था एवं संक्रमण प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। इसी क्रम में मानव भ्रांतिपद से देवपद में प्रतिष्ठित होने की संक्रमण प्रणाली में ही उसका अनुसरण करने के लिए बाध्य है।

मानव के देव पद में आरूढ़ न होने की स्थिति में मानवीयता एक आदर्श रूप में प्रतीत होती है। वह दश सोपानीय व्यवस्था में जब सामान्य हो जाती है तब अतिमानवीयता प्रमाण के रूप में सुलभ सहज रहता है।

जागृति को प्रमाणित करने के अर्थ में किये गये सभी कार्य व्यवहार उचित है। जो अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होते है। ये सब औचित्यता की कसौटी है।

जो उचित प्रतीत होते हुए भी स्वयं के आचरण में प्रकट न हों, ऐसी समस्त घटनाएँ आदर्शों के रूप में है।

औचित्यता की स्वीकृति से ही संयमता की स्पष्टता को स्पष्ट करती है जो गुणात्मक परिवर्तन के लिए बाध्यता है।

बाध्यताएं जब कटाह स्थिति में आती है तब आचरण में प्रकट होती है।

''तीव्र इच्छा ही बाध्यता है।'' इच्छा के कार्य रूप में परिवर्तित होने की जो संक्रमण स्थिति है, वही कटाह स्थिति है। संयमता केवल मानवीयता की सीमा में स्पष्ट है।

संपूर्ण इच्छाएं मूल्यों में, से, के लिए ही हैं।

मूल्यों में, से, के लिए पूर्णता के संदर्भ में इच्छाओं का प्रसव है।

पूर्ण मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, उपयोगिता मूल्य एवं सुन्दरता मूल्य ही मूल्य

समुच्चय है।

उपयोगिता मूल्य में सुन्दरता एवं सुन्दरता मूल्य में उपयोगिता समाविष्ट हैं।

गुरु मूल्य में लघु मूल्य समाया है।

संपूर्ण मूल्य का केवल अनुभव ही है।

अनुभव केवल सत्य, सत्य ही पूर्ण मूल्य, पूर्ण मूल्य ही प्रेम, प्रेम ही आनन्द, आनन्द ही अनुभव है। इसी का प्रत्यक्ष रूप सजगता है। जो मानव का अभीष्ट है।

पूर्ण मूल्य में ही जीवन, जीवन का कार्यक्रम स्पष्ट होता है। स्थापित मूल्य के मूल में पूर्ण मूल्य ही मात्र आधार है। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति केवल सत्ता में ही है।

''**ज्ञान ही प्रेम एवं प्रेम ही ज्ञान है।**'' प्रेम अधिक और कम से मुक्त है, ज्ञानानुभूति ही प्रेम एवं प्रेम का आधार ज्ञान है। यही पूर्णता का प्रधान लक्षण है। स्थापित मूल्य प्रेम की ही स्थिति है।''

समस्त स्थापित मूल्य प्रेम में, से, के लिए ओत-प्रोत है जिसकी सत्यता स्थिर है। यह त्रिकालाबाध है।

सत्ता की स्थिरता एवं जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति की त्व सहित व्यवस्था प्रसिद्ध है। उभय प्रकृति में स्थानांतरण का अभाव नहीं है, इसलिए ''अनुभव का प्रत्यक्ष रूप संतुलन, समाधान, समृद्धि, सतर्कता, सजगता, सहअस्तित्व एवं अभय है।'' मनुष्येत्तर प्रकृति में नियम, नियंत्रण, संतुलन स्पष्ट है।

अभयता ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है, यही प्रबुद्धता का भी परिचय है, जिसके बिना मानव जीवन में स्थिरता नहीं है।

स्थिरता का तात्पर्य मानव में अनुभव से है, अनुभव सार्वभौमिक रूप में स्थापित मूल्य है।

अनुभव विहीन मानव सामाजिक नहीं है। सामाजिकता में, से, के लिए अनुभव क्षमता अनिवार्य है। मानवीयता में ही अनुभव, अतिमानवीयता में अनुभव एवं उसका वैभव (अनुभव की निरंतरता) प्रसिद्ध है।

अमानवीयता में अनुभव क्षमता की न्यूनता पायी जाती है, जो स्पष्ट है।

अखण्ड सामाजिकता ही मानव जीवन की स्थिरता का प्रत्यक्ष रूप है जो स्थापित मूल्यों की अनुभव योग्य क्षमता पर आधारित है। यह शिक्षा एवं व्यवस्था प्रबुद्धता पर आधारित है।

प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलन ही जागृति का प्रत्यक्ष रूप है। यही प्रबुद्धता, संयमता, निर्विषमता, सहजता, अभयता, सामाजिकता, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व है।

वस्तुगत सत्य व वस्तुस्थिति सत्य का दर्शन एवं सहअस्तित्व में अनुभव ही व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन है।

मानवीयतापूर्ण जीवन ही संयत जीवन का प्रत्यक्ष रूप है। इसी की सीमा में किया गया आहार, विहार एवं व्यवहार का सम्मिलित रूप ही व्यक्तित्व है। यही अभ्यास एवं जागृति में पाया जाने वाला सर्वतोमुखी विकास है। यही अभ्युदयशील होने का प्रत्यक्ष लक्षण है। इसलिए ''सुख, शांति, संतोष एवं आनंद स्थापित मूल्यों के अनुभव में ही है। पूर्ण मूल्य में अनुभव ही परमानंद है।''

अनुभव की निरंतरता ही परमानंद है। अनुभव स्थापित मूल्य सहअस्तित्व में ही है।

सुन्दरता एवं उपयोगिता मूल्य की स्थिरता नहीं है क्योंकि उपयोगिता एवं सुन्दरता स्वयं में एक सी नहीं है, यह सामयिक है, जिसके साक्ष्य में :-

1. शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधेन्द्रियों में आवश्यकताएं सामयिक हैं।
2. क्षुधा, पिपासा सामयिक हैं।
3. संपूर्ण उपयोग सामयिक है।
4. महत्वाकाँक्षा, सामान्याकाँक्षा से संबंधित उपयोग सामयिक हैं।
5. विनियम सामयिक है।
6. वस्तु व सेवा का नियोजन सामयिक है।

इसलिए उपयोगिता व सुंदरता मूल्य सामयिक सिद्ध है।

स्थापित मूल्य, मानव मूल्य, जीवन मूल्य देशकाल से बाधित (सीमित) नहीं है। प्रत्येक संबंध में निहित स्थापित मूल्य निकट व दूर, भूत भविष्य एवं वर्तमान से प्रभावित नहीं है। प्रत्येक स्थापित मूल्य तीनों कालों में एवं सभी देशों में एक सा है।

यह अपरिवर्तनीयता स्वयं में स्पष्ट करती है कि स्थापित मूल्य ही नित्य है, जबकि

प्रत्येक इकाई में पाई जाने वाली उपयोगिता एवं सुंदरता का परिणाम व परिवर्तन प्रसिद्ध है।

''मूल्य मात्र अनुभव ही है।'' यह जागृति क्रम में पाई जाने वाली चैतन्य क्रिया की क्षमता है।

क्रिया में मूल्यों की स्थिति का अभाव नहीं है। उसे अनुभव करने की क्षमता के अभाव में वह रहस्य अज्ञात एवं अप्राप्त है।

उपयोगिता मूल्यों के आधार पर समाज की स्थायी संरचना संभव नहीं है क्योंकि वह स्वयं में स्थायी नहीं है।

स्थापित मूल्यों पर ही समाज संरचना की दृढ़ता स्पष्ट है। यही सत्यता मानव को अमानवीयता से मुक्त होकर मानवीयता से सपंन्न होने के लिए प्रेरित करती है। मानवीयता प्रतीति, अवधारणा पूर्वक सफल है तथा अनुभव पूर्वक पूर्ण और प्रमाण है।

अर्थ ही मूल्य, मूल्य ही अर्थ है। उपयोगिता मूल्य शिष्ट मूल्य में एवं शिष्ट मूल्य स्थापित मूल्य में समर्पित पाया जाता है। यही संयमता का प्रत्यक्ष रूप है।

प्रतिभा और व्यक्तित्व का उद्‍बोधन प्रबोधन पूर्ण शिक्षा और उसके संरक्षण-संवर्धन योग्य व्यवस्था का अभाव ही अमानवीयता को प्रोत्साहन है। यह विधि व नीति में संदिग्धता, पराभव, विद्रोह, द्रोह, बल प्रयोग व युद्ध है।

जो शास्त्र, साहित्य, ग्रंथ या उपदेश मानवीयता पूर्ण संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था को स्पष्ट करने में असमर्थ रहते हुए भी प्रचार प्रसक्त रहते हैं, वही वर्गीयता और सामुदायिकता के कारण है। यही विविध जाति पंथ का आधार है जो त्रुटि या अपराध है। यही मानसिक रूप में त्रुटि और व्यवहारिक रूप में अपराध का आधार है।

मानवीयता पूर्ण आचरण, व्यक्तित्व एवं व्यवहार में विश्वास न होना ही परिवार तथा व्यक्ति के जीवन में संदिग्धता का होना है। यही अपराध एवं गलतियों का कारण है। जबकि शिक्षा, व्यवस्था एवं स्व-संस्कार का योगफल है, जो प्रत्यक्ष है।

शाश्वत् मूल्यों पर आधारित सामाजिक संरचना का अभाव ही मानव के चारों आयामों एवं दश सोपानीय व्यवस्था में संदिग्धता है। यही अनिश्चयता, सशंकता एवं भय प्रसव की स्तुशि है।

मूल्य दर्शन एवं अनुभव क्षमता ही संस्कार का प्रत्यक्ष रूप है। संस्कार विहीन मानव नहीं है। मानव का संपूर्ण संस्कार ''तात्रय'' की सीमा में ही प्रत्यक्ष है।

संस्कार परिवर्तन केवल शिक्षा एवं व्यवस्था से ही है क्योंकि त्रुटिपूर्ण शिक्षा व व्यवस्था के द्वारा ज्ञानी-अज्ञानी, विवेकी-अविवेकी, सबल-दुर्बल एवं अन्य किसी को भी संतुष्टि, समाधान व अभय प्रदान करना संभव नहीं हुआ है, जो स्पष्ट है।

स्थापित मूल्य तथा शिष्ट मूल्य का योगफल ही सामाजिक मूल्यवत्ता है। इसी के आधार पर संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था का प्रथम संरचना प्रारूप है एवं संचालन प्रक्रिया भी है।

सामाजिक मूल्यों की स्वीकार क्षमता = संस्कृति

सामाजिक मूल्यों की वहन क्षमता = सभ्यता

उपयोगिता व सुंदरता मूल्य समाज मूल्य में समाहित या समर्पित है। व्यवहार में ही इन दोनों की प्रयुक्ति है। इसलिए संपूर्ण प्रयुक्तियाँ जीने के लिए अथवा जीवन के लिए ही है। **''शरीर के लिए समृद्धि एवं जीवन के लिए समाधान व अनुभूति आवश्यक तथा अनिवार्य है।''**

समाधान व अनुभूति ही मानव में पाई जाने वाली विशिष्टता है। यही प्रबुद्धता, प्रभुता एवं अभयता है।

आवश्यकता से अधिक उत्पादन एवं शेष के प्रयोजनार्थ वितरण में समृद्धि पूर्वक समाधान, व्यवहार, आचरण एवं अनुभव में प्रबुद्धता प्रसिद्ध है।

मानव के प्रत्येक स्तर में आवश्यकता से अधिक उत्पादन, न्यायपूर्ण आचरण व्यवहार के रूप में अनुभव प्रभुता प्रत्यक्ष है।

शिष्ट मूल्य ही अनुभव को इंगित करता है, यही सभ्यता व शिक्षा है। प्रत्येक मानव में किसी से शिक्षित होना या किसी को शिक्षित करना प्रसिद्ध है। शिष्टता में ही उपयोगिता व सुंदरता संयत रूप में प्रयुक्त होती है। संयमता ही सदुपयोग है। सदुपयोग एवं सुरक्षा ही सतर्कता का प्रत्यक्ष रूप है। यही सामाजिकता का कार्य कारण एवं लक्ष्य भी है।

शिष्टता की अभिव्यक्ति प्रसिद्ध है। मानवीयता में शिष्टता की प्रतिष्ठा व अखण्डता है। यही सफल जीवन का प्रत्यक्ष रूप है, जो अखण्ड समाज की दश सोपानीय व्यवस्था में अनिवार्यतः अनुवर्तनीय है।

10.

मानव संस्कृति

मानवीयतापूर्ण आचरण एवं व्यवहार को स्मरण में लाने, प्रेरणा प्रदान करने एवं मार्गदर्शन कराने योग्य क्षमता ही मानव संस्कृति है, जिसमें जन्म से मृत्यु तक की वैध घटनाओं के निर्वाह पक्ष का समाया रहना आवश्यक है, जो पीढ़ी से पीढ़ी को प्रदत्त हुआ करती है।

संस्कृति को आचरण में लाना ही सभ्यता है। दायित्व व कर्त्तव्य निर्वाह ही उसका प्रत्यक्ष रूप है।

मानव संस्कृति एवं सभ्यता ही सामाजिकता को सिद्ध करती है। यही मानव की उपलब्धि, लक्ष्य एवं कार्यक्रम है।

संस्कृति व सभ्यता का योगफल ही सामाजिकता है, जिसे वहन करना ही समाज है। यही विधि व व्यवस्था का प्राण और त्राण है।

संस्कृति ही विधि एवं सभ्यता ही नीति है। विधि व नीति की संयुक्त प्रक्रिया ही व्यवस्था है।

व्यवस्था की चरितार्थता संस्कृति व सभ्यता के रूप में प्रत्यक्ष है। इसलिए नियंत्रण विहीन इकाई नहीं है। यही समाधान न्याय एवं संयम है। संयम ही सामाजिक आचरण है। मानव में, से, के लिए कायिक, वाचिक, मानसिक संयम (नियंत्रण) प्रसिद्ध है।

जागृति अनुरूप नियंत्रण का अभाव ही असंतुलन है। यही असंयमता है जो जागृति की ओर गत्यावरोध एवं पतन (ह्रास)का कारण भी है। यह प्रकृति के ''चक्रत्रय '' में दृष्टव्य है। प्रत्येक मानव में संयमता बौद्धिक, सामाजिक एवं प्राकृतिक क्षेत्र में अनुभव, समाधान, व्यवहार, आचरण एवं उत्पादन के रूप में प्रत्यक्ष है।

अनुभव प्रतिष्ठा एवं समाधान क्षमता में, से, के लिए मानव ने अनवरत प्रयास किया है। प्रत्येक प्रयास में जागृति अभिलाषा समायी हुई है।

जागृति अभिलाषानुरूप प्रयास से गुणात्मक परिवर्तन, निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य पूर्वक सफल हैं।

आभास सहित आशा ही अभिलाषा है। भास, आभास एवं प्रतीति पूर्वक प्रयास में, से, के लिए संभावनायें प्रत्येक मानव में पाया जाता है।

अनुभव के पहले अनुमान-घटना का होना आवश्यक है। प्रत्येक मानव का प्रत्येक क्षण किसी न किसी घटना या अनुमान सहित है।

अनुमानातीत रूप में जो घटनाएं क्रम से प्रत्यक्ष होती हैं वह आगम क्रिया है। प्रत्येक अनुमान अनुभव पर आधारित अन्यथा अनुभव के लिए सन्निहित है। प्रत्येक अनुमान अनुभव के पूर्वापर में है। अनुमान ही शोधपूर्वक भास, आभास एवं प्रतीति के रूप में उदय होता है। जिसके आधार पर ही मानव में योजना, विचार एवं कल्पना का प्रसव होता है जो अनुभव में प्रमाणित होता है। अध्ययन पूर्ण क्रियाएं स्पष्ट योजना एवं प्रमाणों के रूप में, विचार पूर्ण क्रियाएं योजनात्मक कार्य व्यवहार के रूप में, कल्पनात्मक क्रियाओं की उपादेयता अग्रिम शोघ एवं अनुसंधान के लिए उपयोगी सिद्ध है। यही मानव के उत्थान, प्रगति, सद्‌गति, विकास, संतुलनपूर्वक सामाजिक जीवन के रूप में प्रत्यक्ष है जो सहअस्तित्व है।

सहअस्तित्व के बिना मानव की प्रगति नहीं है। अपराध व गलतियों के बिना वाद-विवाद, मतभेद, विरोध, आक्रमण, संक्रमण, आतंक, द्रोह-विद्रोह, अविश्वास, निग्रह प्रक्रियायें संभव नहीं है। इन सबके मूल में व्यक्तित्व का संवैधानिक संरक्षण का नहीं होना ही है, यही विद्रोह या समाज से विमुखता है।

व्यक्तित्व को स्थापित करने में व्यक्ति जब असफल होता है तब पराभववश समाज से विमुख होता है, जिसे स्थापित करने के लिए वर्तमान व्यवस्था और पद्धति का विरोध करता है, यही विद्रोह है।

मानवीयता का सम्मान संरक्षण, संवर्धन, प्रोत्साहन एवं आचरण का पालन न होना ही द्रोह, जिससे समाधान पूर्ण व्यवहार सिद्ध नहीं है। फलत: इसका विद्रोह है। यह वाद-विवादात्मक स्थिति अमानवीयता की सीमा में युद्ध परंपरा के रूप में है।

अमानवीयता से मानवीयता पूर्ण जीवन में संक्रमित होने की बाध्यता न्याय की याचना के रूप में प्रत्येक व्यक्ति में अभिव्यक्त है जो दश सोपानीय व्यवस्था में सफल है। न्याय की साम्यता एवं न्याय के ध्रुवीकरण के लिए ही प्रत्येक स्थिति में प्रयास है। व्यक्तिगत रूप में कई व्यक्ति मानवीयता से समृद्ध एवं अतिमानवीयता से परिपूर्ण पाए जाते हैं। साथ ही यह भी देखा जा रहा है कि ऐसे व्यक्तियों के परिवार के सभी सदस्य उनके सदृश्य नहीं होते। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक व्यक्ति को सजग, सतर्क मान लेने मात्र से परिवार एवं समाज का एक सा होना संभव नहीं हुआ है। जिसकी साक्षी में सामुदायिक विविधता है। फलत: वर्ग एवं युद्ध परंपरा है। अतएव जब तक मानवीयता पूर्ण शिक्षा अखण्ड समाज के अर्थ में सार्वभौम व्यवस्था सर्वसुलभ नहीं होगी, तब तक सर्वशुभ के लिए प्रयोग होना स्वाभाविक है।

सामाजिकता संस्कृति व सभ्यता की व्यवस्था की विविधता जब तक रहेगी तब तक युद्ध के भय का अभाव नहीं है। संस्कृति एवं सभ्यता की एकता मात्र मानवीयता में है। शिष्ट मूल्य सहित स्थापित मूल्य का निर्वाह करना ही मानवीयता का प्रत्यक्ष रूप है, जिसमें व्यक्तित्व समाया रहता है। जिसमें उपयोगिता व कला मूल्य समर्पित होता है उसी के लिए उत्पादन किया जाता है।

11.

व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संरक्षण ही अर्थ का संरक्षण है।

यही मानव जीवन का आद्यान्त अर्थ है। व्यक्तित्व व प्रतिभा सम्पन्न विचार ही आचरण, व्यवहार, उत्पादन तथा व्यवस्था में भागीदारी में अभिव्यक्त होता है। व्यक्तित्व ही न्याय पूर्ण जीवन है। **प्रतिभा स्वयं की स्थिति एवं व्यवस्था में विस्तार ही है।** व्यक्तित्व का यह आचरण ही अर्थ का सदुपयोग पूर्वक संरक्षण के रूप में स्पष्ट होना ही प्रतिभा का उदय है जो अनुकरणीय है। व्यक्तित्व और प्रतिभा का संतुलन ही जीवन है, जो सतर्कता एवं सजगता है। मानवीयता में ही व्यक्तित्व पूर्ण होता है। ''तात्रय'' से अतिरिक्त मानव में, से, के लिये अभिव्यक्ति नहीं है। इसलिए भाव = मौलिकता = स्वमूल्य तथा मूल्याँकन क्षमता = मौलिकता का भास, आभास, प्रतीति व अनुभूति = व्यक्ति की क्षमता, योग्यता, पात्रता = जागृति = वातावरण, अध्ययन और स्वसंस्कार = उत्पादन, व्यवहार, व्यवस्था में भागीदारी = भाव प्रसिद्ध है।

मौलिकता = वस्तु स्थिति व वस्तुगत सत्य = मूल्यांकन क्षमता = आशा, विचार, इच्छा, संकल्प = प्रतिभा = कुशलता, निपुणता, पाण्डित्य = व्यवहार व उत्पादन = व्यक्तित्व = मौलिकता है।

मानव की परस्परता में स्थापित मूल्य + मूल्यांकन योग्यता + निर्वाह क्षमता + शिष्ट मूल्य = मानव मूल्य = व्यवहार है।

वस्तु + दिशा + काल = वस्तुस्थिति सत्य है। रूप + गुण + स्वभाव + धर्म = वस्तुगत सत्य है। यही इकाई की मात्रा है।

सम्पूर्ण प्रकृति वस्तु समूह के रूप में दृष्टव्य है। जड़-चैतन्य के रूप में प्रकृति स्पष्ट

है, जो दर्शन सुलभ निर्भ्रमता के लिये आवश्यक तथा आद्यान्त अध्ययन है। सत्ता स्वयं व्यापक एवं चैतन्य प्रकृति में पूर्णता का ज्ञान एवं अनुभूति ही समग्र चैतन्य प्रकृति का अभीष्ट है।

जागृति (निर्भ्रमता) = प्रतिभा + व्यक्तित्व (आहार, विहार, व्यवहार, जागृति व व्यवस्था के अर्थ में होना) का संतुलन है। यही मानव का सफल जीवन है। यही अभ्यास का प्रधान लक्षण है। मानव के द्वारा स्पष्टत: किया जाने वाला मूल्यांकन दर्शन सत्तामय ज्ञानानुभूति ही अभ्यास का प्रधान लक्षण एवं उसकी सफलता है। यही उनकी क्षमता योग्यता पात्रता पर; यही उनकी जागृति विधि पर; यही संस्कार पर; यही शक्तियों के सदुपयोग एवं प्रयोजनशीलता पर; यही वातावरण एवं अध्ययन पर; यही संस्कृति एवं सभ्यता पर; यही व्यवस्था पर; यही विधि व्यवस्था व नीति पर; यही प्रबुद्धता व प्रभु सत्ता पर; यही विवेक व विज्ञान के संतुलन पर; यही निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य पर; यही दर्शन, ज्ञान, विवेक, विज्ञान पर आधारित होना पाया जाता है।

पदार्थ व प्राणावस्था का मूल्याँकन उत्पादन निमित्त, जीवावस्था का मूल्यांकन उपयोगिता व पूरकता निमित्त, ज्ञानावस्था का मूल्यांकन सहअस्तित्व में सतर्कता-सजगता सहित समाधान समृद्धि, अभय, सहअस्तित्त्व के रूप में और मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में है।

भौतिक समृद्धि, बौद्धिक समाधान, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व की उपलब्धि है। यही दश सोपानीय व्यवस्था में सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है, जो सफलता है। इसकी नित्य संभावना है। यही मानव की चिर अभिलाषा है। यह मानवीयता पूर्वक ही सफल होना प्रत्यक्ष है।

संवेदनशीलता एवं संज्ञानशीलता की अभिव्यक्ति चैतन्य क्रिया में है। वह ज्ञानावस्था में विशेष रूप में पाया जाता है। यह आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति सहज प्रमाण है जो क्रम से सुख, शान्ति, संतोष, आनंद व परमानन्द की तृषा और तृप्ति है। इसका प्रत्यक्ष रूप ही भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान है। **चैतन्य क्रिया ही ज्ञानावस्था का प्रधान लक्षण है।** उसी में, से, के लिये संपूर्ण कार्यक्रम है। आशा आदि पाँचों क्रियाओं के अभाव में कोई कार्यक्रम सिद्धि का प्रमाण नहीं है।

सम्यकता (पूर्णता) के प्रति जिज्ञासा ही संचेतना है। पूर्णता त्रय (गठन, क्रिया, आचरण) के रूप में दृष्टव्य है। "अनुभूति ही सम्यकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।" इसी क्रम में सम्यक अनुभूति, सम्यक संकल्प (सम्यक बोध), सम्यक चिंतन, सम्यक विचार, सम्यक आशा के योगफल में ही प्रयोग एवं व्यवहार प्रमाण भी है। यही प्रमाण त्रय है। यही जीवन के कार्यक्रम को स्पष्ट करता है। जिससे बौद्धिक समाधान, भौतिक समृद्धि प्रकट होती है। यही

मानव की चिर ईप्सा है। प्राप्य के प्रति तीव्र इच्छा ही ईप्सा है।

ऐषणा-त्रय में, से, के लिये एक सूत्रता प्रतिस्थापित करने योग्य चिंतन प्रक्रिया ही ईप्सा है। यही चिंतन क्षमता की विशालता को स्पष्ट करती है। चिंतनशीलता जीवन सहज कंपनात्मक गति की शालीनता है। कंपनात्मक गति स्पन्दनशीलता का परिचय ही है चिंतनशीलता। स्पष्टता हेतु की गयी धावन क्रिया ही स्पन्दन है। स्वयं तथा वातावरण में, से, के लिये ही धावन क्रिया प्रसिद्ध है। स्वयं तथा वातावरण से अधिक स्पष्टतावकाश, अवसर, आवश्यकता प्रमाणित नहीं है। स्पष्ट होना ही निर्भ्रमता है, स्पष्टास्पष्ट होना ही भ्रांताभ्रांत है और स्पष्ट न होना ही भ्रांति है। मानव में भ्रांति ही पीड़ा है यही अजागृति है तथा पीड़ा से मुक्ति के लिये उत्प्रेरणा है क्योंकि प्रत्येक मानव पीड़ा से मुक्ति, अजागृति से जागृति के लिये प्रयासशील है जो प्रसिद्ध है।

स्वयं की स्पष्टता चैतन्य क्रिया के रूप में है। वातावरण प्राकृतिक एवं वैयक्तिक भेद से गण्य है। वैयक्तिक वातावरण की स्पष्टता, अर्थ का उपार्जन, अर्थ का सदुपयोग, अर्थ की सुरक्षा, सामाजिक मूल्यों का शिष्ट मूल्यों सहित निर्वाह, शिक्षा, प्रसार, प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन एवं व्यवस्था के रूप में दृष्टव्य है। यही अखण्ड समाज की पुष्टि है।

विवेचनापूर्ण आचरण ही विचार है। विवेचनायें "तात्रय" की सीमा में मानव के संदर्भ में होती हैं। इसी श्रृंखला में जीवन का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व एवं व्यवहार का नियम संबंधी ज्ञान एवं तत्व मीमांसा है। फलत: व्यवहारिक "नियम त्रय" यथा प्राकृतिक, सामाजिक व बौद्धिक रूप में सिद्ध हुआ है।

संपूर्ण विवेचनायें परस्परता के निर्वाह में, से, के लिये हैं क्योंकि सत्ता में प्रकृति का वियोग नहीं है। अस्तु, प्रकृति में परस्परता का अभाव नहीं है। परस्परता का अभाव प्रमाण सिद्ध नहीं है। निर्भ्रमता ही जीवन में स्थिरता, जीवन के कार्यक्रम में दृढ़ता, स्वयं में पूर्णता, समाज में अखण्डता है। इसके लिये ही मानव ने अनवरत प्रयास किया है। मानव जीवन का कार्यक्रम केवल समाधानात्मक भौतिकवादीय, व्यवहारात्मक जनवादीय, अनुभवात्मक अध्यात्मवादीय क्रम, नियम, नीति, सिद्धांत संबद्ध है।

समाधानात्मक भौतिकवादी कार्यक्रम की चरितार्थता आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में भी प्रस्तावित है, जिसके लिये मानव में शिक्षा एवं शैक्षणिक क्षमता, निपुणता एवं कुशलता के रूप में है। यही उत्पादन क्षमता है। यही क्षमता उपयोगिता एवं कला मूल्य को प्राकृतिक ऐश्वर्य पर प्रतिस्थापित करती है। व्यवहारात्मक जनवादीय जीवन का मूल तत्व जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य है। यह शिष्टता मानवीयता पूर्वक संयत

सिद्ध हुई है। शिष्ट मूल्य में उत्पादन मूल्य समर्पित होने के लिए बाध्य है क्योंकि शिष्ट मूल्य के अभाव में उत्पादित वस्तु मूल्य का संयमन एवं सदुपयोग सिद्ध नहीं होता। अस्तु, उत्पादित वस्तु मूल्य शिष्ट मूल्य में; शिष्ट मूल्य स्थापित मूल्य में; स्थापित मूल्य मानव मूल्य में; मानव मूल्य जीवन मूल्य में संयोजित विधि से प्रमाणित होता है। शिष्ट मूल्य के संयोग में ही उत्पादित वस्तु मूल्य का सदुपयोग सिद्ध हुआ है। सामाजिक मूल्य के संयोग में ही उत्पादित वस्तु मूल्य का सदुपयोग सिद्ध हुआ है। सामाजिक मूल्य अर्थात् प्रत्येक संबंध में स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य वर्तमान होना पाया जाता है। सामाजिक मूल्य में, से, के लिये ही शिष्ट मूल्य की गरिमा-महिमा गण्य है। सामाजिक मूल्य के अभाव में शिष्ट मूल्य की व्यवहारिक मीमांसा सिद्ध नहीं हुई है। अपितु स्थापित मूल्यों के अनुगमनशीलता में ही शिष्ट मूल्यों की मूल्यवत्ता एवं महत्ता स्पष्ट हुई है। अस्तु, स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य का समर्पित होना अवश्यंभावी है। स्थापित मूल्य का निर्वाह मानव मानवीयता पूर्वक करता है। यही मानव का व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन है। यही उसका आचरण है। इसके सहकारी परिवार, प्रोत्साहन योग्य समाज, संरक्षण-सवंर्धन योग्य व्यवस्था अर्थात् विधि व्यवस्था शिक्षा, संतुलन एवं अनुकूल परिस्थति निर्माण करने योग्य अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था ही ''वादत्रय'' का चरितार्थ रूप है।

समाधानात्मक भौतिकवादीय सिद्धांतों के आधार पर ही कृषि एवं औद्योगिक कार्यों में अधिकाधिक व्यक्तियों की भागीदारी उत्पादनों की विपुलता चरितार्थतावश प्रत्यक्ष होती है।

बहुभोगवादी भौतिकवादी व्यापार मूलक व्यवस्था (उत्पादन एवं वितरण व्यवस्था) आद्यान्त असफल सिद्ध होती है क्योंकि उपयोग एवं सदुपयोग की संयमता एवं नियंत्रण मानवीयता पूर्वक ''नियम त्रय'' पद्धति से ही सफल होती है, स्पष्ट है।

व्यक्तित्व व उत्पादन क्षमता सम्पन्न करने का दायित्व शिक्षा, व्यवस्था एवं नीति पर आधारित पाया जाता है। यही व्यवस्था का प्रत्यक्ष स्त्रोत है। प्रचार, प्रकाशन, प्रदर्शनपूर्वक उसे प्रोत्साहित करने का दायित्व विद्वता, कला, कविता सम्पन्न समाज का है जिनसे ही सामान्य जनजाति प्रेरणा पाती है, जो तथ्य है। परस्पर राष्ट्रों में संतुलन सामंजस्य एवं एकसूत्रता को पाने के लिये प्रत्येक राष्ट्र को मानवीयता पूर्वक ''नियम त्रय'' का पालन करने के लिए उन्मुख होना ही होगा। सार्वभौमिकता ही सभी राष्ट्रों के अनुमोदन के लिये आधार रहेगा। सामाजिक सार्वभौमिकता अर्थात् अखण्डता ही सभी राष्ट्रों का मूल आशय है। उसकी स्पष्ट सफलता न होने का कारण मात्र वर्गीयता है या वर्गीयता का प्रोत्साहन एवं संरक्षण है। यह सभी वर्गीयताएं मानवीयता में ही विलीन होती है न कि अमानवीयता में। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मानवीयतापूर्ण जीवन परंपरा ही एकमात्र शरण है। इसी का दश सोपानीय व्यवस्था में निर्वाह

करना ही एकसूत्रता, अखण्डता एवं समाधान सार्वभौमता है। **प्रत्येक संतान को उत्पादन एवं व्यवहार व व्यवस्था में भागीदारी करने योग्य बनाने का दायित्व अभिभावकों में भी अनिवार्य रूप में रहता है क्योंकि प्रथम शिक्षा माता-पिता से, द्वितीय परिवार से, तृतीय परिवार के सम्पर्क सीमा से, चतुर्थ शिक्षण संस्थान से, पंचम वातावरण से अर्थात् प्रधानतः प्रचार, प्रकाशन, प्रदर्शन से तथा प्राकृतिक प्रेरणा से अर्थात् भौगोलिक एवं शीत, उष्ण, वर्षामान से प्राप्त होती है।**

प्राकृतिक नियमानुसार ही कृषि एवं उद्योग की सफलताएं नियंत्रित होना पाई जाती हैं। जिनकी निरंतरता अनादि काल से अपेक्षित है। इस भूमि पर वर्षा, शीत, उष्णमान के संतुलन के लिये समुचित वन क्षेत्र के अतिरिक्त भूमि के क्षेत्रफल पर कृषि कार्य को सम्पन्न करने का अधिकार मानव को है। प्रत्येक भूमि में खनिज द्रव्य की ससीमता है क्योंकि भूमि स्वयं सीमित है। जिन खनिजों की क्रमिक उत्पत्ति है उन पर आधारित उद्योगों को विकसित एवं समृद्ध बनाना मंगल होगा। इसी आधार पर विस्तारित कृषि एवं उद्योग पूर्णतया सफल एवं उसकी भी अक्षुण्णता सिद्ध है।

प्राकृतिक ऐश्वर्य का मूल्य = शून्य, क्योंकि प्राकृतिक ऐश्वर्य के निर्माण में मानव का श्रम नियोजन सिद्ध नहीं हुआ है। प्रत्येक पीढ़ी अग्रिम पीढ़ी को जिन साधनों को प्रदान करती है वह उसकी अक्षुण्णता चाहती है न कि विनाश। यह सार्वभौम रूप में पायी जाने वाली मनोवैज्ञानिक अपेक्षा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव प्रत्येक मानव, समाज प्रत्येक समाज, वर्ग प्रत्येक वर्ग, राष्ट्र प्रत्येक राष्ट्र अथक प्रयास से जितने भी साधनों का निर्माण करते हैं उनमें स्वयं के उपयोग से अतिरिक्त अग्रिम पीढ़ी के लिए सुगम सन्निवेश (साधन सम्पन्न भविष्य) निर्माण करने का मंगलमय आशय एवं संकल्प समाया हुआ है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि जो जिन साधनों को बिना किसी श्रम नियोजन करतलगत किये हैं वे उनके उत्पादक नहीं थे। उसी साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि वे सभी साधन जो बिना श्रम नियोजन के उपलब्ध हुए हैं, यह विधि सम्मत सम्पत्ति नहीं है। व्यवस्था ही विधि है। यही विकास एवं जागृति का क्रम है। **विकास क्रम में अपव्यय नहीं है। अपव्यय के अभाव में साधनों के सम्पत्तिकरण की उपयोगिता एवं आवश्यकता सिद्ध नहीं होती है।** तात्पर्य, साधनों के सम्पत्तिकरण की आवश्यकता तभी दृष्टव्य है जब मानव उत्पादन से अधिक उपभोग करने के लिए तत्पर हो। उत्पादन से अधिक उपभोग अमानवीयता के अतिरिक्त और कहीं किया जाना संभव नहीं है। अस्तु, अपव्ययता के लिये अत्याशा का होना, अत्याशा के लिये हीनता, दीनता, क्रूरता का होना देखा जाता है।

साधन व स्थान के सम्पत्तिकरण के अभाव में उसका वितरण व्यवस्था प्राथमिकतः

सुलभ हो जाएगा जिससे प्रत्येक व्यक्ति के लिये साधन व स्थान का अभाव नहीं रहेगा। अपव्यय से रहित जीवन में अधिक स्थान, अधिक साधन स्वयं में पीड़ा दायक सिद्ध है। अधिक साधन अधिक स्थान को संग्रह करने के मूल में भय की पीड़ा एवं अपव्यय के आग्रह का अनिवार्य रूप में रहना पाया जाता है।

श्रम नियोजन, श्रम विनिमय पद्धति से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सेवा व वस्तु को दूसरी सेवा व वस्तु में परिवर्तित करने की सुगमता होती है, जिसमें शोषण, वंचना, प्रवंचना एवं स्तेय की संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं जो अपराध परंपरा का वृहद् भाग है। ये संभावनाएं जागृति पूर्वक मानवकृत वातावरण, प्रधानत: व्यवस्था पद्धति एवं शिक्षा से ही निर्मित होती है।

उत्पादक या उत्पादन के लिये सहायक कोटि में ही प्रत्येक मानव गण्य है। उत्पादन क्षमताएं सामान्य, विशेष एवं विशिष्ट प्रभेद से गण्य है। उत्पादन के आधारभूत तथ्य शिक्षा, साधन, विनियम एवं संरक्षण है। यही व्यवस्था का स्पष्ट रूप है। उत्पादन की गति को द्रुतगामी बनाने के लिये तारतम्यतापूर्ण सुदृढ़ व्यवस्था की अनिवार्यता निरंतर है जिससे आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना स्वभाव हो जाता है। फलत: अरक्षा एवं दुरूपयोग का दूर हो जाना पाया जाता है।

अर्थ की सुरक्षा एवं सदुपयोग ही समाधान है। यही समाधानात्मक भौतिकवाद का प्रत्यक्ष रूप है। ''सदुपयोग एवं सुरक्षा अनन्यशील है।'' नियम समाधान में, से, के लिये है।

न्याय, अनुभव और व्यवहार में, से, के लिये है जो प्रसिद्ध है। यही व्यवहरात्मक जनवाद को स्पष्ट करता है। न्याय पाने की साम्य कामना ही व्यवहारात्मक जनवाद का आधार है, मानवीयता पूर्वक ''नियम त्रय'' का पालन होता है यही न्याय है, जिसका प्रत्यक्ष रूप संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति एवं आवश्यकता से अधिक उत्पादन और अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा है। यही जनाकाँक्षा है। जनाकाँक्षानुरूप व्यवहार, व्यवस्था, प्रक्रिया ही जनवादीय तंत्र का उद्देश्य है। तदनुरूप व्यवस्था व शिक्षा का सर्वसुलभ होना ही व्यवहार है। जनवादीय तंत्र से जनवादीय व्यवस्था एवं शिक्षा, जनवादीय व्यवस्था शिक्षा से जनजाति में व्यवहार, जनजाति में व्यवहारानुरूप जनाकाँक्षा का निर्माण होना ही जनावादीय तंत्र की सफलता है। जागृत मानव परंपरा में जनाकाँक्षाए सार्थक होना पाया जाता है।

व्यवस्था, व्यवस्थापक, व्यवस्थापित की परस्परता में; शिक्षा, शिक्षार्थी, शिक्षक की परस्परता में समन्वयता का तारतम्यता सामन्जस्यता, एकसूत्रता एवं अनन्यता को पा लेना ही सौजन्यता का प्रत्यक्ष रूप है, यही न्याय पूर्ण जीवन है। सामाजिकता का निर्वाह करने में सौजन्यता एक प्रधान शिष्ट मूल्य है। शिष्ट मूल्य ही व्यवस्था मूल्य को आत्मसात कर लेता

है, जो उत्पादित वस्तु मूल्य की सदुपयोगिता है, यह प्रमाण सिद्ध है।

अशिष्टता में उत्पादित वस्तु मूल्य का नियंत्रित व समाविष्ट होना संभव नहीं है क्योंकि अशिष्टता कोई मूल्य नहीं है। वह केवल अजागृति, अज्ञान, असमर्थता का ही द्योतक है। गुरु मूल्य में लघु मूल्य समाया रहता है। इस सिद्धांत के अनुसार मूल्य विहीन अशिष्टता में उत्पादित वस्तु का मूल्य समाविष्ट होना संभव ही नहीं है। शिष्टता विहीन समाज, सामाजिकता, शिक्षा एवं व्यवस्था भी जनवादीय नहीं है। जनवादीय चिंतन का आधार ही शिष्टता है।

12.

न्याय पाना, सही कार्य व्यवहार करना एवं सत्य सम्पन्नता ही साम्यतः जनाकाँक्षा है।

जब तक न्याय के संदर्भ में जन-मन गत मतभेद हैं, तब तक व्यवहारात्मक जनवाद नहीं है। व्यवहारिकता के विपरीत में अव्यवहारिकता ही दृष्टव्य है। यही विषमता, मतभेद, द्रोह-विद्रोह, आतंक, भय, संचय, वर्ग संघर्ष एवं युद्ध है या युद्ध के लिये तत्परता है। ये सब मानव के समाधान एवं समृद्धि के अवरोधक तत्व हैं। अन्याय एवं गलती के बिना समस्या एवं असमृद्धि का प्रसव नहीं है। इस प्रकार से मानव ही प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के असंतुलनवश गलती एवं अन्याय में प्रवृत्त होता है। फलतः मंगल कामना रहते हुए भी वह अमंगलकारी कर्म करता है। अमंगलकारी कर्म व्यवहार, विचार परंपरा सामाजिकता के लिये सहायक सिद्ध नहीं हुई है। यही सत्यता मानव को मंगलदायी कर्म व्यवहार विचार में अनुगमन एवं अनुशीलन करने के लिये प्रेरणा है। यही अभ्युदयशीलता के लिये उदय, मंगलमयता के लिये मार्ग, मांगलिकतापूर्ण जीवन यात्रा एवं शुभ परंपरा की घटना है।

न्याय और समाधान सार्वभौम सत्य है। यह देश काल अबाध है। इसलिये मानव द्वारा किया गया संपूर्ण विचार एवं प्रयास तर्कसंगत या सतर्कतापूर्ण होने के लिये ही प्रत्येक मानव का समाधान एवं समृद्धि में, से, के लिये ही विचार, कर्म एवं व्यवहार करना प्रसिद्ध है। तर्क की सीमा में प्रतितर्क है। मूल वस्तु के अज्ञात व अस्पष्ट रहते हुए उसके तात्पर्य या फलवत्ता के संदर्भ में की गई प्रश्नोत्तर प्रक्रिया ही वाद-प्रतिवादी एवं तर्क प्रतितर्क है, जो समस्या की परंपरा है। तर्क समाधान नहीं है। समाधान एवं तात्विकता के लिये तर्क का प्रयुक्त होना ही उसकी चरितार्थता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि तर्क का अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है। साथ ही तर्क का प्रयोजन केवल तात्विकता से संबद्ध होना ही है। इसी प्रमाण सिद्ध साक्ष्य से स्पष्ट होता है कि तर्क सीमान्तवर्ती विचार, उपदेश एवं प्रचार मानव जीवन के लिये पर्याप्त नहीं है।

सतर्कता सहित समाधान, समाधान ही सार्वभौमता, सार्वभौमिकता ही निर्विषमता, निर्विषमता ही सत्यता, सत्यता ही यथार्थता, यथार्थता ही निर्भ्रमता, निर्भ्रमता ही अखण्डता, अखण्डता ही सफलता, सफलता ही सतर्कता है। सतर्कता सजगता ही सफल सामाजिकता का लक्षण है। सामाजिकता शिष्टता सहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह है जो अनुभव मूलक प्रकटन है। यही अभय का स्पष्ट रूप है। ऐसे जीवन में ही स्वतंत्रता, स्वत्व एवं अधिकार का विधिवत् सदुपयोग होता है। सतर्कतापूर्ण जीवन में अपव्यय की संभावना नहीं है।

13.

सतर्कता सजगता पूर्ण परंपरा में मानवीयता सहज चरितार्थता स्वभाव सिद्ध है।

यही व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन जीवन प्रतिष्ठा है। यही मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता का साकार रूप है, जिसका सामान्यीकरण ही मानव की दश सोपानीय व्यवस्था में सफलता एवं चरितार्थता है। व्यक्ति में सतर्कता, सजगता व्यक्तित्व के रूप में; परिवार में समाधान के रूप में; समाज में अखण्डता के रूप में; सार्वभौम व्यवस्था में निर्विषमता के रूप में; अंतर्राष्ट्र में सहअस्तित्व के रूप में है जिसके लिये ही मानव में चिर पिपासा है।

वादत्रय संयुक्त कार्यक्रम ही अभ्युदय है। प्रत्येक व्यक्ति एवं संस्थायें दश सोपनीय व्यवस्था में अभ्युदयार्थ भागीदार होना जागृति है। साथ ही उन्हीं स्थितियों में व्यक्ति एवं संस्थायें में, से, के लिये दायित्व व कर्त्तव्य निर्वाह करना सहज है। संस्था ही व्यवस्था है, व्यवस्था ही प्रबुद्धता है, प्रबुद्धता ही विधि, नीति व पद्धति है; विधि, नीति व पद्धति ही संस्था है। संस्था की प्रथमावस्था परिवार सभा, द्वितीयावस्था परिवार समूह सभा, तृतीय ग्राम मोहल्ला परिवार सभा, चतुर्थ ग्राम मोहल्ला समूह परिवार सभा, पाँचवाँ क्षेत्र परिवार सभा, छठा मंडल परिवार सभा, सातवाँ मडंल समूह परिवार सभा, आठवाँ मुख्य राज्य परिवार सभा, नवाँ प्रधान राज्य परिवार सभा, दसवाँ विश्व परिवार राज्य परिवार सभा, यही अखण्ड समाज की दश सोपानीय व्यवस्था स्वरूप है। अखण्डता ही समाज का प्रधान लक्षण है।

विगत में भ्रमवश परिवार सीमान्तवर्तीय संस्था में धन के उपार्जन सहित शरीर बल पूर्वक सुरक्षा एवं सदुपयोग के लिये प्रयास हुए है। यही व्यक्ति पूजा परंपरा का कारण है। इस स्थिति में अर्थ की सुरक्षा में असमर्थतावश पराभव का; सदुपयोग में असफलतावश विद्रोह-द्रोह का प्रसव हुआ है। अत: वर्ग संघर्ष के लिए मानव बाध्य हुआ है। यही प्रकारान्तर से वर्गों के रूप में प्रस्फुटित होते गये जिसमें प्रधानत: युद्ध शक्ति का विस्तार अनिवार्य हुआ। ऐसी

संस्थाएं राज्यनैतिक पद्धति प्रणाली का प्रयोग करती आ रही है, साथ ही वर्गवाद आचरण एवं व्यवहार को प्रश्रय प्रदान कर रही है। इसके कारण ही अर्थ का दुरूपयोग होना भावी हुआ है।

वर्ग की सीमा में अखण्डता नहीं है। जब तक मानव जीवन में अखण्डता नहीं है तब तक भय से मुक्ति नहीं है। जब तक भय से मुक्ति नहीं है तब तक स्वतंत्रता नहीं है, जब तक स्वतंत्रता नहीं है तब तक अपव्ययता का अभाव नहीं है।

संपूर्ण संग्राम सामग्री, साधन तंत्र, व्यवस्था मात्र अपव्यय में, से, के लिये ही है। जबकि प्रत्येक मानव प्रत्येक स्तर में अर्थ का सदुपयोग तथा सुरक्षा ही चाहता है। **यही चाहने और करने के बीच में जो दूरी है वही अंर्तद्वन्द्व, आत्मविश्वास का अभाव तथा स्वयं में स्वयं के विश्वास में सशंकता और भय का कारण है।** यही पीड़ा है। अंर्तद्वन्द्व से मुक्ति के लिये प्रत्येक मानव को प्रत्येक स्तर में अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा हेतु मानवीयता में ''नियमत्रय''का अनुगमन, अनुसरण एवं अनुशीलन करना ही होगा।

''सौजन्यतापूर्वक ही मानव अभयता से परिपूर्ण होता है'' जिसमें अर्थ की सदुपयोगात्मक भावनायें परिपूर्णत: समाविष्ट रहती है। अर्थ का सदुपयोग होना ही सुरक्षा है। सौजन्यता सीमित नहीं है। यदि सीमित है तो सौजन्यता नहीं है। वर्ग वाद या वर्गीय संस्थानुरूप अनुसरण में शिष्टता का पूर्ण विकास होना संभव नहीं है। क्योंकि जो व्यक्ति वर्गवाद से ओतप्रोत रहता है वह उस वर्ग की सीमा में अत्यंत सौजन्यतापूर्वक प्रस्तुत रहता है एवं अन्य वर्ग के साथ निष्ठुरतापूर्वक प्रस्तुत होता हुआ देखा जाता है। इस साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि वर्ग की सीमा में मानव की शिष्टता परिपूर्ण नहीं है। अपरिपूर्णतावश ही स्वयं में, स्वयं का विश्वास नहीं हो पाता है। यही घटना प्रत्येक जन्म में पराभव का कारण होती है। इसे विभव की परंपरा में पाने के लिये मानवीयता ही एकमात्र शरण है।

धर्मनीति या धार्मिक भावनाएं सुदूर विगत से ज्ञातव्य हैं। यद्यपि यह ईश्वर तंत्र पर आधारित पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक की व्याख्या में आख्यायित रही है जिनका अनुसरण अनेक वर्ग या वर्ग वाद के कारण सिद्ध हुए हैं। इन धार्मिक आख्यानों पर सदा ही तर्क की गति विजरंभित रही हैं अर्थात् छायी रही हैं। तर्कसंगत पद्धति से इन आख्यानों में ईश्वर की महत्ता का वर्णन करने का प्रयास निष्ठापूर्वक हुआ है जो जनजाति में आस्था के लिये पर्याप्त आधार सिद्ध हुआ है न कि व्यवहारिक निष्ठा के लिये। इन व्याख्यानों की अनेक परंपरायें अवतरित भी हुई हैं। इन परंपराओं में जीवन की विधाओं को स्पष्ट करने के अथक प्रयास हुए हैं जो आज भी विगत पर गौरव करने के मुख्य आधार हैं। यही विशेषताएं वर्तमान में यथार्थता के प्रति भास-आभास को प्रदान करती है साथ ही उत्साह को भी।

परंपरा की अनेकताएं मनुष्य को किसी न किसी सीमा में प्रतिबद्ध होने के लिये बाध्य करती हैं। यह बाध्यता अंततोगत्वा मानव की पूर्णता में बाधक सिद्ध हुई है क्योंकि ये सभी प्रयास रहस्य से मुक्त नहीं हो सके। मानव कृत्यकृत्यता अर्थात् क्रिया की पूर्णता वर्ग सीमा में संभव नहीं है। इसी के परिहारार्थ मानवीय चेतना का उदय अवश्यंभावी है।

समाधान व न्याय विहीन विविधता भी मानव के लिये पीड़ा है क्योंकि विविधता में ही भय, सशंकता, अतृप्ति होती है जो प्रसिद्ध है। इसके समाधानार्थ एकता का चिंतन भावी है जिसकी संभावना मानवीयता में ही स्पष्ट है। आर्थिक एवं धार्मिक विविधताएं एवं विषमताएं वर्ग सीमा को स्पष्ट करती हैं इन्हीं के तारतम्य में संस्थायें हैं। संस्थाओं की विविधता के अनुरूप में जनाकाँक्षा की विविधता स्वाभाविक रूप में पायी जाती है। विविधतावश ही परस्परता में संदिग्धता एवं सशंकता पाई जाती है। प्रत्येक संस्था जनजाति को अभय प्रदान करने के लिये आश्वासन देती है जो शुद्धतः मांगलिक है। यही मांगलिक उद्देश्य सभी अवस्थाओं की संस्थाओं में पाये जाते हैं। प्राथमिक अवस्था की संस्था एकाधिकारवश, वर्गीय संस्था अपूर्णतावश परस्परता में विश्वास व स्थिरता प्रदान करने में समर्थ नहीं होती है। यही द्वन्द्व का कारण एवं पुनः गुणात्मक परिवर्तन, चिंतन एवं व्यवहारान्वयन के लिये पीड़ा है, जिनके निवारणार्थ ''वाद त्रय'' ही है।

अभाव या भाव पुनः प्रयासोदय का स्तुषि है। अभावता भाव के लिये, भाव पूर्णता के लिये, पराभवता विभव के लिये तृषित-व्यथित-आशित-आकाँक्षित है। यही पुनः प्रयास का कारण एवं अंकुर है। यही मूल प्रवृत्ति, संवेगपूर्वक प्रयासोद्घाटक के रूप में है। वर्ग और समुदायवादी संस्थाओं में एकाधिकारवाद, प्रभुतावाद, नायकवाद, अधिनायकवाद, बहु नायकवाद, अल्प सम्मतिवाद, बहु सम्मतिवाद के आधार पर प्रयुक्त हुए हैं। ये सब सार्वभौमिकता के अभाववश ही पराभव को प्राप्त हुए हैं या असफल हुए हैं। इनका साक्ष्य समर प्रयास है। इसलिये सतर्कता सजगता का स्पष्ट होना आवश्यक है।

14.

भ्रमित मानव समुदाय की प्रथम अवस्था भय प्रलोभन है।

आस्था व प्रलोभन युक्त समुदाय एवं उन्मुक्त व अनियंत्रित अर्थ तंत्र से प्रभावित समुदाय ही वर्ग है जो द्वितीय अवस्था है।

वर्गवाद, समुदायवादी प्रवृत्ति अन्य वर्ग एवं समुदाय पद्धति से भिन्न है या विरोधी है। परस्पर विरोध के बिना वर्गीयता या सामुदायिकता की स्थिति नहीं होती है। वर्गीय व्यवस्था में धन का सम्पत्तिकरण होता है। सम्पत्तिकरण प्रक्रिया में शोषण, दलन, दमन भावी है। फलत: लोभ एवं संग्रह प्रवृत्ति का संरक्षण, प्रोत्साहन एवं पुष्टि होती है, जिसके कारणवश शिक्षा व व्यवस्था भी व्यवसाय या वर्ग सम्मान की सीमा में सीमित हो जाती है।

यही सीमायें वर्गीय सम्मान एवं अस्तित्व की निरंतरता के लिये संघर्ष करने और उसके लिये पर्याप्त साधनों का संग्रह करने के लिए बाध्य करती हैं। यही बाध्यताएं विशालता को संकीर्णता में परिवर्तित करती हैं। ये संकीर्णताएं स्व-अस्तित्व और उसकी अक्षुण्णता के महत्व की अपेक्षा में दूसरे के अस्तित्व और उनकी अक्षुण्णता को महत्वहीन स्वीकारती हैं। ऐसी वैचारिक प्रक्रियावश ही मानव, मानव की परस्परता में आतंक एवं भय की पीड़ा है। यही वर्गीय जीवन का मूल कारण एवं परिणाम है, जबकि मानव, मानव से आतंक एवं भय की अपेक्षा नहीं करता है। यही सत्यता प्रत्येक मानव में अंतर्ध्वनित होती है कि भय का निराकरण आवश्यक है। यह मानवीयता में ही सफल है।

लोकाकाँक्षा में निर्विषमता की मंगलमय कामना पाई जाती है। जन्म से ही विश्वास का प्रकटन मानव में रहता है, जो माता-पिता के साथ प्रत्यक्ष होता है। निर्विषमता की अपेक्षा मानव में शैशव काल से ही दृष्टव्य है। वर्ग वाद को संबोधित, स्थापित, प्रोत्साहित एवं संरक्षण करने से ही वही शिशु जो जन्म से निर्विषमता की अपेक्षा में प्रवृत्त होता है जाति, मत, सम्प्रदायात्मक सीमा वश वर्ग संघर्ष के लिये तत्पर हो जाता है। यही वर्ग परंपरा का परिणाम है।

वर्गीयता भय, सशंकता एवं अविश्वास से मुक्त नहीं है। यही संग्रह एवं प्रलोभन का प्रथम कारण है। संग्रह आदि पाँच प्रवृत्तियाँ अमानवीयता की सीमा में क्रियाशील हैं न कि मानवीयता की सीमा में। वर्ग विचार प्रणाली दूसरे वर्ग के साथ निर्विषमता को स्थापित करने में समर्थ नहीं हुई है। इसी असमर्थतावश वह स्वहित साधन के लिये दूसरे का अहित साधन कर जाता है। यही व्यवहार, आचरण, शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति में प्रकारान्तर से अवतरित

हो रहा है। यह समर सामग्री के संग्रह एवं समर के रूप में दृष्टव्य है। इसका निराकरण केवल मानवीयतापूर्ण चेतना सम्पन्नता में है। हर मानव मूलत: शुभ को चाहते हुए भी वर्ग समुदाय मानसिकता में ढल जाता है। इस विधि से शुभ चाहते हुए भी अशुभ कार्य के लिए हर सामान्य व्यक्ति को सहमत होना पड़ता है। सर्वाधिक व्यक्ति किसी वर्ग या समुदाय के पक्षधर हैं।

''परिवार या वर्ग के प्रत्येक सदस्य के लिये प्रत्येक समय में संकीर्णता की सीमा सहनीय सिद्ध नहीं हुई है।'' इसी कारणवश सुधार की अपेक्षा में शोषण, संचय, अतिवादी भ्रमित व्यवस्था, शिक्षा एवं व्यवहार का विरोध हुआ है।

शोषण और संचयवादी व्यवस्था एवं व्यवहार अंततोगत्वा सुविधा एवं अतिभोग में प्रसक्त पाया जाता है। अतिभोग मानव के लिये क्रांतिकारी घटना नहीं है। क्योंकि :-

अतिभोग प्रवृत्ति अपव्यय से मुक्त नहीं है।

अतिभोग प्रवृत्ति चारित्रिक सिद्ध नहीं हुई है।

अतिभोग प्रवृत्ति नैतिकता को सिद्ध नहीं करती है।

अतिभोग प्रवृत्ति उत्पादन में शिथिलता का कारण होती है।

अतिभोग प्रवृत्ति लोभ और संग्रह के लिये तृषित होती है।

अतिभाग प्रवृत्ति ही प्रधानत: हीनतावादी व्यवहार एवं शोषणवादी प्रौद्योगिकी का कारण होती है। हीनता स्वयं में विश्वास का न होना है।

अतिभोग प्रवृत्ति असंतुलन का प्रधान कारण है।

अतिभोग प्रवृत्ति सामाजिक नहीं है।

''समृद्धि शुद्धत: आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही है'' न कि हीनता, दीनता, क्रूरता पूर्वक किया गया उपार्जन।

व्यक्ति व परिवारगत स्वत्व, स्वतंत्रता, सम्पत्ति व अधिकार विहीन व्यवस्था पद्धति का भी प्रयोग हुआ है, जो व्यक्ति में सशंकता, परिवार में संदिग्धता का प्रधान कारण हुआ है। इस प्रकार की व्यवस्था भी एकाधिकारवाद, अल्पमतवाद और बहुमतवाद के आधार पर आधारित रही हैं। ऐसी संस्थाएं भी लाभोन्मुखी एवं सम्पत्तिकरण प्रक्रिया से मुक्त नहीं हुई है। फलत: :-

व्यक्ति में पराधीनतावश सशंकता, एवं

यांत्रिकता के लिये विवशतावश अनिश्चयता एवं क्रांति विहीनता

वैयक्तिक विकास में अवरोधवश आतंक

मानव की प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के असंतुलनवश संदिग्धता

व्यक्ति का उत्पादन पर स्वत्व एवं अधिकार विहीनतावश

जीवन में (स्वयम् में) अविश्वास एवं भय दृष्टव्य हैं।

ये सब प्रक्रियायें भ्रमित मानसिकता के आधार पर घटित हुई हैं जबकि सामाजिकता एवं सामाजिक संस्थाओं का मूल उद्देश्य भय मुक्ति प्रदायिता ही है। प्रत्येक राज्यनैतिक एवं धर्मनैतिक संस्था भय मुक्ति के लिये प्रतिनिधित्व करती हैं, साथ ही वाद-विवाद, विरोध एवं युद्ध साहित्य का संग्रह करती हैं, जो मूल उद्देश्य के लिये अनावश्यक या विरोधी सिद्ध हुई हैं। इसका निराकरण मात्र मानवीयतापूर्ण धर्म नीति एवं राज्य नीति का अनुसरण ही है।

15.

लाभ उत्पादन नहीं है।

कम प्रदाय के बदले में अधिक वस्तु व सेवा को पाना लाभ है यही शोषण का प्रत्यक्ष रूप है। जबकि श्रम नियोजन का परिणाम ही उत्पादन है जिसमें उपयोगिता एवं सुन्दरता मूल्य सिद्ध होता है। श्रम नियोजन से ही समृद्धि होती है न कि लाभ से क्योंकि मुद्रा शोषण पर आधारित वाणिज्य की सीमा में लाभ-हानि की संभावनाएं होती है। यह दोनों स्थिति उत्पादन या उत्पादन के लिये सहायक नहीं है। वाणिज्य कर्म शुद्धत: विनिमय के अर्थ में उत्पादन या उत्पादन के लिये सहायक सिद्ध होता है न कि लाभ के अर्थ में। उत्पादन प्रयास आवश्कता पर आधारित होती है, जबकि लाभाकाँक्षित वाणिज्य कर्म मांग पर आधारित होता है। लाभाकाँक्षी वाणिज्य पद्धति में कृत्रिम अभाव की स्थिति का निर्माण किया जाता है। अभाव की कृत्रिमता के लिये वाणिज्य साधनों व वस्तुओं का शेखरीकरण (संग्रह पूर्वक वस्तुओं को अदृश्य करना)कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया का मूल उद्देश्य उपभोक्ताओं में वस्तु सुलभता के संदर्भ में संदिग्धता बनाये रखना होता है, जिससे अधिक लाभ अर्जित किया जा सके। वस्तुओं की अदृश्यीकरण प्रक्रिया पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित होती है जो स्पष्ट है। इसका निराकरण केवल श्रम नियोजन एवं श्रम विनिमय पद्धति का अनुसरण है।''लाभ संग्रह होता है न कि उत्पादन।'' लाभ निर्मित पूंजी ही वस्तु विनिमय में असंतुलन का प्रधान कारण

है। पूंजी अधिक लाभ से निर्मित होती है जो प्रत्यक्षत: शोषण है और यही अधिक लाभ के लिये नियोजित होती है। वस्तुओं की कृत्रिम अदृश्यता केवल पूंजीवादी व्यवस्था में ही होती है। पूंजीवादी वाणिज्य भी वर्गीयता का सहायक है न कि समाज का व सामाजिकता का। सामाजिक वाणिज्य प्रक्रिया के लिए विनिमय पद्धति ही शरण्य है। साम्यवादी विधि से भी अतिरिक्त मूल्य सिद्धांतवश लाभ मुक्ति की कामना को सर्वाधिक प्रकट करता हुआ साम्यवादी देशगत व्यक्तियों का शोषण न होने के लिए बहुत कुछ सूझबूझ प्रस्तुत करते हुए देशगत लाभ या राष्ट्रगत लाभ के लिये प्रतिबद्ध निष्ठान्वित होना ही पड़ा। इसी के साथ सामान्य जनता क्षमता के अनुसार कार्य करें व आवश्यकतानुसार भोग करें। इस आश्वासन के आधार पर व्यवस्था संभव नहीं हुई, इसलिए साम्यवादी व्यवस्था पराभावित हुआ।

उत्पादन का सीधा संबंध विनिमय कार्य व स्वास्थ्य संयम कार्य, शिक्षा संस्कार, न्याय सुरक्षा, उत्पादन कार्य संरक्षण से हैं। इन पाँचों की एकसूत्रता उत्पादन के लिये अनिवार्य है। यही व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है। मूल्य विहीन संबंध नहीं है। संबंध विहीन व्यवस्था एवं व्यवहार नहीं है। उत्पादन के संबंध निर्वाह में जो न्यूनताएं हैं वही लाभोत्पादक वाणिज्य के जन्म का कारण है। यह उस समय तक रहेगा जब तक उत्पादन संबंध का निर्वाह एकसूत्रतापूर्वक पूर्ण न हो जाय।

विनिमय के अर्थ में वाणिज्य चरितार्थ होता है न कि सुविधा संग्रह के अर्थ में। विनिमय उत्पादन की सहायक प्रक्रिया है। संग्रहवादी वाणिज्य उत्पादन में सहायक सिद्ध नहीं हुआ है अपितु उत्पादन में अनेकानेक विघ्नों का निर्माण किया है। यही पद्धति उत्पादन में असंतुलन का कारण सिद्ध हुई है। इसका साक्ष्य उत्पादन में विमनता, उदासीनता है। साथ ही, संग्रह सुविधा प्रवृत्ति में विवशता भी है।

उत्पादन का सुगमतापूर्वक वांछित वस्तु व सेवा में परिवर्तित होना ही विनिमय की चरितार्थता है। लाभ मूलक वाणिज्य प्रक्रिया उसके विपरीत स्थिति का निर्माण करती है। यही सत्यता मानव को श्रम विनिमय पद्धति को सर्वसुलभ बनाने के लिये बाध्य की है।

लाभाकाँक्षी व्यापार पद्धति शुद्धत: विनिमय सिद्ध नहीं हुई है। क्योंकि इस पद्धति और प्रक्रिया में धन का पूंजीकरण और वस्तुओं का भंडारीकरण प्रत्यक्ष हुआ है। लाभ का प्रच्छन्न रूप ही शोषण और उसका प्रत्यक्ष रूप ही पूंजी एवं वस्तुओं का भंडार है। जीवन व्यवहार के मूल में भी शुद्ध विनिमय कामना है। यह आदान-प्रदान के रूप में दृष्टव्य है। मानव जीवन में आदान-प्रदान क्रिया का अभाव नहीं है। वह उसके लिये बाध्य है। समस्याग्रस्त जीवन मानव की वाँछा, वाँछित उपलब्धि या वाँछित घटना नहीं है। अस्तु, इसका समाधानात्मक

विकल्प केवल श्रम विनिमय पद्धति का अनुसरण ही है।

उत्पादन की भागीदारी के लिये श्रम नियोजन आवश्यक है। श्रम नियोजन पूर्वक ही मानव समृद्ध होता है। मानव में श्रम निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य के रूप में समझदारी होना ज्ञातव्य है जो चैतन्य क्रिया का अधिकार है। इसी अधिकारवश जड़ प्रकृति की यांत्रिकता में वह परिमार्जन और परिणाम प्रदान करता है फलत: उपयोगिता एवं सुन्दरता प्रत्यक्ष होती है। चैतन्य क्रिया की यही क्षमता परिवारगत आवश्यकता से अधिक उत्पादन एवं समृद्धि को प्रकट करती है। चैतन्य जीवन ही अमर है। शरीर का जन्म और मृत्यु घटना है। इस तथ्य को जानने वाला भी चैतन्य इकाई ही है। मानव में श्रम का मूल रूप भी चैतन्य क्रिया ही है। इस चैतन्य क्रिया में जो संवेदनशील एवं संज्ञानशील क्षमता है, वही स्थापित मूल्यों का वहन, शिष्ट मूल्यों का प्रकटन और उत्पादित वस्तु मूल्यों का मूल्यांकन करता है और प्रमाणित होना पाया जाता है। सामाजिक जीवन में उत्पादन, उपभोग एवं विनिमय अविभाज्य अंग है। यही तथ्य जीवन में एकसूत्रता, तारतम्यता, अनन्यता और एकात्मकता को स्थापित करने के लिये प्रेरित करता है। यही स्थापना शुद्धत: व्यवस्था है।

16.

विनिमय क्रिया जागृत मानव परंपरा में अनिवार्य प्रक्रिया है।

उत्पादन को दूसरी वस्तु व सेवा में बदलने के लिये अपनाई गई सुगम पद्धति ही विनिमय है, जिसकी सफलता के लिये प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक आवश्यकीय वस्तु का सहज सुलभ होने के लिये केन्द्रों का होना आवश्यक है। उत्पादन जितना महत्वपूर्ण है उतना ही उसके सहायक तत्व संरक्षण भी महत्वपूर्ण हैं। संरक्षण के अभाव में सशंकतावश, साधनों के अभाव में उत्पादन सामग्रियों की असंपूर्णतावश, शिक्षा के अभाव में अक्षमतावश, विनिमय के अभाव में दूसरी वस्तु व सेवा में परिवर्तित करने के विध्नवश उत्पादन में क्षति होती है। व्यवस्था का प्रत्यक्ष रूप में से उत्पादन एवं उसके सहायक तत्वों को सर्वसुलभ बनाना है। विधि का शुद्ध रूप ही सामाजिक मूल्यों यथा जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य व शिष्ट मूल्य का संरक्षण एवं संवर्धन है। ऐसी शुद्ध व्यवस्था के अंगभूत श्रम नियोजन एवं श्रम विनिमय पद्धति द्वारा सफल होने की पूर्ण संभावना है क्योंकि प्रत्येक मानव शोषण के विरुद्ध है। प्रत्येक मानव न्याय का याचक है। प्रत्येक मानव सही करना चाहता है। प्रत्येक मानव भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान से संपन्न होना चाहता है। साथ ही प्रत्येक वस्तु में निश्चित श्रम नियोजन होता है। प्रत्येक वस्तु का किसी एक वस्तु की अपेक्षा में श्रम मूल्य निर्धारण उपयोगिता मूल्य

के आधार पर होता है। प्रत्येक वस्तु को प्रत्येक स्थान पर सर्वसुलभ बना देना सहज है।

17.

ईश्वर तंत्र पर आधारित राज्य नीति एवं धर्म नीति रहस्यता से मुक्त नहीं है।

मनुष्य रहस्यता में समाधान पूर्ण नहीं है। रहस्यता मानव की अनवरत पीड़ा है। पीड़ा मानव का अभीष्ट नहीं है। इसके आधार पर की गई स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य की व्याख्यायें यथावत रहस्यमय ही रही हैं। इसका निराकरण अर्थ तंत्र पर आधारित राज्य नीति एवं धर्म नीति है। साथ ही विकास के क्रम में पाये जाने वाले उत्थान एवं पतन के आधार पर ही स्वर्ग-नरक और पाप-पुण्य की व्याख्यायें रहस्य मुक्त होती हैं।

वैज्ञानिक युग प्रधानतः औद्योगीकरण तथा उसके योग्य व्यवस्था के लिए प्रेरणा स्त्रोत सिद्ध हुआ है। फलतः मानव आर्थिक राज्य नीति का प्रयोग करने के लिये बाध्य हुआ है। आर्थिक राज्य नीति का लाभाकाँक्षी एवं लाभोन्मूलन प्रभेद पद्धति से प्रयोग हुआ है। प्रकारान्तर से ये दोनों प्रयोग भय से मुक्त सिद्ध नहीं हुए हैं। यही तीसरे विकल्प को आवाहित कर रहे हैं। यह तीसरा विकल्प केवल धार्मिक, आर्थिक, राज्य नीति ही है।

संस्था समाज का ही प्रतिरूप है। संस्था की प्रक्रिया का जनाकाँक्षा के विरोध में प्रस्तुत होना ही संघर्ष या क्रांति का कारण होता है। जनाकाँक्षा सर्वदा ही न्याय की पक्षधर रही है। संस्था के प्रथम एवं द्वितीय स्थितियों में परिवार या वर्ग की सीमा में ही विधि व नीति की प्रतिस्थापना या स्थापना होती रही है। प्रत्येक संस्था की विचार रूप में भी मंगल कामना रही है। जब वह प्रक्रिया पद्धति, नीति व प्रणालीपूर्वक प्रस्तुत होती है तब जनाकाँक्षा व संस्था की परस्परता में जो अव्यवहारिकताएं रह जाती है, वही अप्रत्याशित घटनाओं के रूप में प्रकट होती है। यही परस्पर विश्वास के तिरोभाव के कारण होते हैं। फलतः विरोध का प्रार्दुभाव एक आवश्यकता बनती है। इसके दो विकल्प प्रसिद्ध हैं:-

1. संस्था का मूल रूपात्मक दर्शन जिसके आधार पर निर्धारित विधि व व्यवस्था का सुदृढ़ न होना अर्थात् मानवीयता पर आधारित न होना।
2. संस्था की कार्य सीमा में पायी जाने वाली जनजाति में संस्कृति, सभ्यता का आधार मानवीयतापूर्ण न होना।

संस्कृति एवं सभ्यता के संरक्षणार्थ ही विधि एवं व्यवस्था की स्थापना है। सभ्यता

संस्कृति में, से, के लिये ही सामाजिकता है। सामाजिकता के लिये ही उत्पादन, वितरण, उपयोग व सदुपयोग होना आवश्यक है। इसी कारणवश विधि व व्यवस्था का ध्रुवीकरण एवं उसकी अक्षुण्णता सर्व स्वीकार्य है। यह मानवीयता पूर्वक सफल और अमानवीयता में असफल सिद्ध हुआ है।

अर्थ संस्कृति में, संस्कृति सभ्यता में चरितार्थ होती है। अर्थ व्यवस्था से और सभ्यता विधि से सम्बद्ध है। यही सम्बध्दता उनकी अन्योन्याश्रयता को सिद्ध करती है। इसकी अक्षुण्णता मानवीयता में सफल और अमानवीयता में असफल सिद्ध हुई है। असफलता ही वर्ग संघर्ष, समर, पराभव, भय और आतंक है।

सामाजिकता औपचारिक तथ्य नहीं है अपितु जागृति पूर्वक जीने की शैली है। वह केवल वास्तविकता पर आधारित क्रियाकलाप है। वास्तविकताएं ही नियति क्रम, नियति क्रम ही विकास, विकास ही अभ्युदय, अभ्युदय ही व्यवहारिकता एवं व्यवहारिकता ही सामाजिकता है। व्यवहार संस्कृति, सभ्यता और विधि, व्यवस्था का योगफल है। मानव जीवन का आद्यान्त कार्यक्रम इसी चतुर्दिशा में वैभव है। विधि अनुभव को, संस्कृति विचार को, सभ्यता व्यवहार को, व्यवस्था उत्पादन विनिमय सहित पाँचों आयामों को स्पष्ट करती है। यह प्रमाण सिद्ध है। यही ''मूल्य त्रय'' को प्रकट करता है।

18.

प्रत्येक मानव इकाई भ्रम, भय, रहस्य मुक्ति के लिए प्रयासरत है।

संदिग्धता सशंकता एवं विरोध ही भय है। समाधान के विपरीत में विरोध है। मानव जीवन के कार्यक्रम को मानवीयता में स्पष्ट करने की क्षमता का अभाव ही संदिग्धता, रहस्यता, सशंकता एवं भय है।

मूलत: शुभाकाँक्षा रहते हुए भी कार्यक्रम में जो अपूर्णता रह जाती है वह आकाँक्षा के विपरीत फल का कारण बनती है यही अविश्वास स्थली है। अविश्वास पूर्वक सामाजिकता का निर्वाह नहीं है। यही भ्रम है।

भ्रमित विधि से संस्था की प्रथम व द्वितीय अवस्था में भय से मुक्ति पाना संभव नहीं है। इसी विवशतावश परिवार एवं वर्ग सीमावर्ती व्यवस्था संदिग्धता से मुक्त नहीं है। इसी संदिग्धतावश ही समर शक्ति का विस्तार हुआ है। समर संभावना पर्यन्त समाज एवं सामाजिकता की उपलब्धि नहीं है। समाज एवं सामाजिकता के बिना मानव आश्वस्त एवं विश्वस्त नहीं है।

प्रत्येक मानव आश्वस्त होने के लिए उत्पादन, विश्वस्त होने के लिए व्यवहार करता है। जब उसे उपलब्ध नहीं कर पाते हैं तब उनमें निराशा एवं कुण्ठा उत्पन्न होती है। ये सब प्रक्रियायें भ्रांति पद चक्र में पाई जाती है। प्रत्येक मानव भ्रांति से मुक्ति पाना चाहता है। यह केवल मानवीयता में सफल एवं अमानवीयता में असफल होता है।

सफलता के लिये ही मानव ने अशेष प्रयास किये हैं। सफलता चारों आयामों एवं दश सोपानीय व्यवस्था की एकसूत्रता है। यह सहअस्तित्व समाधान एवं समृद्धि को प्रत्यक्ष करती है। यही सर्वमंगल जीवन है जिसके लिये मानव चिर प्रतिक्षारत रहा है और जिसकी संभावना भी सर्वकाल में है। अमानवीय जीवन में ही अपराध की संभावनायें चारों अवस्थाओं एवं पाँचों स्थितियों में है। बाल्य-कौमार्य, कौमार्य-युवा, युवा-प्रौढ़, प्रौढ़-वृद्धावस्थायें दृष्टव्य है। इन्हीं अवस्थाओं में विभिन्न कारणवश अपराध प्रवृत्तियों की क्रियाशीलता मानव में पाई जाती है। प्रधानत: शिशु-कौमार्य अवस्था में अपराध की संभावना माता-पिता के संरक्षण के बिना नहीं होती है। कौमार्य युवावस्था में अज्ञान, कौतूहलवश माता-पिता और साथियों के प्रोत्साहन अपराध किए जाते हैं। युवा-प्रौढ़ावस्था में मानव अज्ञान, कौतूहल, प्रलोभन, अत्याशा, कामुकता एवं अभाववश परिवार और साथियों की स्थिति, परिस्थिति की विवशतावश अपराध करता है। प्रौढ़-वृद्धावस्था में प्रधानत: अज्ञान, अत्याशा एवं अभाववश परिस्थिति बाध्यता पूर्वक अपराध करना प्रसिद्ध है। बाल अपराध में प्रधानत: अभिभावकों का, कौमार्य अपराध में प्रधानत: परिवार या मित्रों का, युवावस्था में परिवार या साथियों का, वृद्धावस्था में रहस्यता, नि:सहायता का होना आवश्यक है। अपराध का मूलरूप अज्ञान ही है। यही अत्याशा, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, काम, क्रोध एवं अक्षमता के रूप में क्रियाशील होता है जो स्पष्ट है। उपरोक्त वर्णन भ्रमित मानव परंपरा में स्पष्ट है। अपराध एवं निरापराध के सहायक तत्व प्रधानत: दो ही हैं :-

प्रथम :- शिक्षा, प्रचार, प्रदर्शन और प्रकाशन।

द्वितीय :- व्यवस्था, नीति, पद्धति और प्रक्रिया।

परधन, परनारी/परपुरुष एवं परपीड़ा के रूप में सामाजिक अपराध; संग्रह, द्वेष, अविद्या एवं अभिमान के रूप में वैचारिक अपराध; युद्ध, वध एवं विध्वंस के रूप में राष्ट्रीय अपराध; प्राकृतिक ऐश्वर्य का शोषण व दुरूपयोग एवं उसके संवर्धन में विघ्न के रूप में अंतर्राष्ट्रीय अपराध प्रसिद्ध है।

''अपराध मानव का लक्ष्य नहीं है।'' प्रत्येक मानव न्याय पाना चाहता है, सही करना चाहता है। मानव के जीने के क्रम में ''अपराध'' एक घटना के रूप में दृष्टव्य है।

अपराध से पाँचों स्थिति एवं चारों आयाम स्वस्थ नहीं होते हैं। अपराध अमानवीयता में सीमित प्रक्रिया है। अमानवीयता प्रकृति के विकास के क्रम में एक भ्रमित अवस्था है। यह भ्रांति पद चक्र का प्रकाशन है, इससे विकसित अवस्था ही देव पद चक्र है जिसके लिये मानव में सतत तृषा, अथक प्रयास एवं पूर्ण आकाँक्षा है। देव पद चक्र में संक्रमित होना ही मानवीयता सहज वैभव है। यही वैयक्तिक एवं परिवार की स्थिति में आचरण एवं व्यवहार है। इसका व्यवस्था एवं शिक्षा के रूप में उपलब्ध हो जाना ही मानवीयतापूर्ण समाज का प्रत्यक्ष रूप है। यह संक्रमण प्रक्रिया चेतना विकास मूल्य शिक्षा के क्रम में भावी है। अमानवीयता से मुक्ति पाने के लिये मानवीयता ही एकमात्र शरण है। मानवीयता से परिपूर्ण होने के अनन्तर यह मानव का अधिकार और स्वत्व है। यही अधिकार एवं स्वत्व, स्वतंत्रता के लिये उत्प्रेरणा है। पूर्ण स्वतंत्रता दिव्य मानवीयता में ही होती है। देव पद चक्र में संक्रमित समाज ही जागृति सहज समाज है। इससे पूर्व की स्थिति में सामाजिकतापूर्ण समाज सिद्ध नहीं है, क्योंकि अमानवीयता में सामाजिकता का पूर्ण होना संभव नहीं है। इसी कारणवश वर्ग संघर्ष का क्रम दृष्टिगोचर है।

मानवीयतापूर्ण शिक्षा व व्यवस्था की प्रस्थापना, आप्त कामना सहित प्रमाण पूर्वक विश्लेषण पूर्ण प्रक्रियाबद्ध सिद्धांतों का उद्घाटन है। यह अनुसंधान क्षमता की स्वाभाविक प्रक्रिया है। प्रत्येक जागृत इकाई में सबके जागृति के प्रति कामना जागृत होना स्वाभाविक है। इसी क्रम में प्रत्येक अनुसंधान जनसुलभ होता आया है। जिनमें यह क्षमता प्रत्यक्ष हुई है, वे आप्तपुरुष हैं। मानवीयता में ही संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकरूपता सिद्ध होती है अर्थात् निर्विषमता सिद्ध होती है। यही धार्मिक, आर्थिक एवं राज्य नैतिक एकात्मकता को सिद्ध करती है, जिसके लिये ही मानव कुल प्रतीक्षारत है। यही व्यक्ति में उत्पादन, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति के लिये अविरत प्रेरणा का स्रोत है।

शिक्षा ही मानव जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम को विश्लेषण व व्याख्या पूर्वक बोधगम्य कराने के लिये एकमात्र सूत्र है। प्रधानत: मानव को शिष्टता विशिष्टता से पूर्णत: प्रबोधन करा देना ही शिक्षा है। साथ ही उत्पादन विनिमय कुशलता एवं निपुणता योग्य योग्यता का निर्माण करना ही शिक्षण की चरितार्थता है।

19.

आचरण पूर्णता पर्यन्त शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन का अभाव नहीं है।

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति ही अध्ययन के लिये वस्तु व विषय सर्वस्व है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज ज्ञान एवं अनुभूति ही प्रसिद्ध है। यह ज्ञान मानव में भ्रम पर्यन्त संभव नहीं है। मानव प्रकृति में जागृति ही (निर्भ्रमता)। विकास एवं जागृति के क्रम में पाई जाने वाली चारों अवस्थाओं, तीनों चक्रों एवं भ्रम मुक्ति की व्याख्या, विश्लेषण एवं प्रमाण है। यही दर्शन सर्वस्व है। दर्शन विहीन जीवन में गुणात्मक परिवर्तन सम्भव नहीं है। प्रत्येक मानव विकास के लिये ही प्रत्याशु है क्योंकि जन्म से ही मानव सत्यवक्ता, न्याय पाने का इच्छुक एवं सही कार्य व्यवहार करने का इच्छुक है।

दर्शक ही दृश्य का दृष्टि के द्वारा दर्शन करता है। दर्शक, दृश्य और दृष्टि क्रिया ही है। प्रत्येक क्रिया संवेदना एवं गति का संयुक्त रूप है, जो कम्पनात्मक एवं वर्तुलात्मक गति के रूप में दृष्टव्य है। कम्पनात्मक गति ही संवेदनशीलता है। यही स्पन्दनशीलता भी है। संवेदन विहीन चैतन्य क्रिया नहीं है। संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति चैतन्य प्रकृति में ही आरंभ होती है और जागृत मानव परंपरा में ही संज्ञानशीलता सफल होता है। जबकि कम्पनात्मक गति जड़ प्रकृति में भी आंशिक रूप में पायी जाती है। जड़ प्रकृति में जो कम्पनात्मक गति है वह उसकी वर्तुलात्मक गति की अपेक्षा ऋणस्थ है। इसी कारणवश जड़ प्रकृति में वर्तुलात्मक गति प्रधानत: गणनीय है। कम्पन विहीन इकाई नहीं है।

स्पन्दन ही अग्रिम विकास के लिये तृषाभिव्यक्ति है। यही प्रत्येक अवस्था में स्वभाव है। **''स्वभाव परिवर्तन ही मूल्य परिवर्तन है।''** गुणात्मक मूल्य परिवर्तन ही विकास अर्थात् जागृति है। यही स्पंदनशीलता का क्रम है। कम्पनात्मक एवं वर्तुलात्मक गति का योगफल ही क्षमता है। क्षमता ही संस्कारपूर्वक स्वभाव में अभिव्यक्त होती है। अभिव्यक्ति की विविधता ही गुणात्मक परिवर्तन के लिए भी सहायक है। इसी क्रम में मानव न्याय प्रदायी धर्मीयता को प्रसारित करता है। यही अन्य मानवों पर स्थापित होने वाला प्रभाव है। स्थापित मूल्यों का शिष्ट मूल्यों सहित निर्वाह करने की क्षमता ही न्याय प्रदायी धर्मीयता का प्रसारण है जिसके लिये निपुणता, कुशलता और पाण्डित्य है।

''अध्ययन की चरितार्थता आचरण में ही है।'' आचरण दश सोपानीय व्यवस्था में पाई जाने वाली अनिवार्य प्रक्रिया है। आचरण विहीन इकाई नहीं है। आकाँक्षा सहित गतिशीलता

ही आचरण है। आचरण ही विकास व ह्रास का प्रत्यक्ष बिन्दु है। जड़ और जीवन प्रकृति में भी आचरण का अभाव नहीं है। मानव जीवन के कार्यक्रम को अक्षुण्ण बनाने के लिए विचार श्रृंखला में सामाजिकता का अनुसंधान हुआ है। सामाजिकता की अक्षुण्णता केवल मानवीयता में सिद्ध होती है। सामाजिकता के लिये मानवीयता ही एक मात्र शरण है।

''मानव द्वारा दश सोपानीय व्यवस्था में किये जाने वाले आचरणों में ही प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का प्रकटन होता है।'' प्रतिभा और व्यक्तित्व का संतुलन ही संतुलित जीवन का प्रत्यक्ष रूप है। यही ''जाने हुए को मानना और माने हुए को जानना'' है। यही अर्न्तद्वन्द्व से मुक्ति एवं भौतिक समृद्धि और बौद्धिक समाधान है, जो सर्वमानव की आकाँक्षा है। यही गुणात्मक परिवर्तन का चरितार्थ स्वरूप है। जागृति क्रम में गुणात्मक परिवर्तन भावी है, जो सहज प्रक्रिया है जिसमें वेदना का अत्याभाव है। यही जीवन का संगीत है। विकास एवं जागृति की प्रत्येक कड़ी सुखद होती है। विकास एवं जागृति के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं हैं।

''प्रबुद्धता ही प्रतिभा और आचरण ही व्यक्तित्व है।'' आचरण एवं प्रतिभा सम्पन्नता के लिये शिक्षा एवं उसके संरक्षण के लिये व्यवस्था प्रसिद्ध है। प्रतिभा ही ज्ञान और आचरण ही सभ्यता एवं संस्कृति की अभिव्यक्ति है। अभिप्राय पूर्वक किया गया प्रकटन ही अभिव्यक्ति है। अभ्युदयार्थ अनुभव मूलक विधि से की गई वैचारिक प्रक्रिया ही अभिप्राय है। विधि, व्यवस्था एवं संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में सत्यानुभूति योग्य क्षमता के प्रति जिज्ञासा भी प्रतिभा का द्योतक है। अर्थतंत्र धर्मनीति एवं राज्यनीति व्यवस्था प्रसिद्ध है। व्यवस्था ही विकास एवं जागृति क्रम सहज प्रमाण है, प्रकृति स्वयं में व्यवस्था है।

''स्वभाव, धर्म ही मौलिकता, मौलिकता ही मानव का अर्थ, अर्थ ही सार्थकता है।''

''मौलिकता ही मूल्य है। मूल्य चतुष्टय अर्थात् उपयोगिता मूल्य, सुन्दरता मूल्य, शिष्ट एवं स्थापित मूल्य ही उद्‌घाटन एवं प्रकटन है।'' यही अभ्युदय का प्रत्यक्ष रूप है। मानव का निर्वाह अर्थात् उसका निश्चित दिशा व लक्ष्य की ओर विचार एवं व्यवहार पूर्वक वहन ही स्वभाव का प्रकटन है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अभ्युदयपूर्ण होना चाहता है।

समस्या मानव में वांछित उपलब्धि नहीं है। यही सत्यता, समाधान के लिये प्रयास और अनुसंधान है। समाधान ही स्थिति है, यही विभव है। विभव ही वैभव है। वैभव पूर्ण होने के लिए मानव चिराशित है।

विधि, व्यवस्था, संस्कृति एवं सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में निर्भ्रमता, सत्यानुभूति योग्य क्षमता के प्रति पूर्ण विश्वास, अनुभव सहित प्रमाणित होने की जिज्ञासा ही प्रतिभा समुच्चय

है जो निपुणता, कुशलता और पाण्डित्य है।

तन, मन, धन रूपी अर्थ के संबंध में ही व्यवस्था है। व्यवहार एवं व्यवहारिक शिष्टता के संबंध में विधि है, जो राज्यनीति व धर्मनीति पूर्वक जीवन में चरितार्थ होती है।

मानव में स्वभाव और धर्म ही मौलिकता, मौलिकता ही मानव का अर्थ, अर्थ ही प्रकटन, प्रकटन ही स्वभाव है। मानव की मौलिकता ही मानव मूल्य है। मूल्य-सिद्धि मूल्याँकन पूर्वक होती है। मूल्य चतुष्टय ही आद्यान्त प्रकटन है। यही अभ्युदय की समग्रता है। प्रत्येक व्यक्ति अभ्युदय पूर्ण होना चाहता है। अभ्युदयकारी कार्यक्रम से सम्पन्न होने में जो अंतर्विरोध है (चारों आयामों तथा पाँचों स्थितियों में परस्पर विरोध) वही संपूर्ण समस्यायें है। इसके निराकरण का एकमात्र उपाय मानवीयतापूर्ण पद्धति से ''नियम त्रय'' का पालन ही है। यही पाँचों स्थितियों का दायित्व है। अमानवीयता पूर्वक ''नियम त्रय'' का पालन सम्भव नहीं है। अमानवीयता हीनता, दीनता और क्रूरता से मुक्त नहीं है। इसी कारणवश अपराध, प्रतिकार, द्रोह, विद्रोह, हिंसा-प्रतिहिंसा, भय-आतंक प्रसिद्ध है। ये सब मानव के लिये अवांछित घटनायें हैं। यही सत्यता मानवीयतापूर्ण जीवन के लिये बाध्यता है।

व्यवस्था विधि, नीति और पद्धति का संयुक्त रूप है। अनुभव में विधि, व्यवहार में नीति और उत्पादन-विनियम में पद्धतियाँ प्रमाणित होती हैं। विशिष्ट ज्ञान ही विधि है जो स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य को बोधगम्य एवं व्यवहारगम्य बनाती है। विशिष्ट बोध सत्ता में संपृक्त प्रकृति एवं उसके विकास क्रम, उसी के आनुषंगिक दर्शन एवं अनुभव योग्य क्षमता के संदर्भ में है। अनुभव क्षमता ही समाज एवं सामाजिकता के संदर्भ में निर्विषमता तथा एकसूत्रता को स्थापित करती है। यही स्थापित मूल्य को अनुभव पूर्वक एवं शिष्ट मूल्य को व्यवहार पूर्वक सिद्ध करती है। यही विधि है।

नियति क्रमानुसरण प्रक्रिया ही नीति है। नियति क्रम ही विकास एवं जागृति क्रम है। नियति क्रमानुषंगिक प्रगति ही गुणात्मक परिवर्तन है। प्रत्येक पद में, से, के लिये निश्चित अर्थवत्ता प्रसिद्ध है। नियति क्रमवत्ता से सम्बद्ध उपयोगिता, उपादेयता और अनिवार्यता की सिद्धि तथा सिद्धि पूर्वक अग्रिम कार्यक्रम ही पद्धति है। यही गुणात्मक परिवर्तन परंपरा है। यह तब तक रहेगा जब तक आचरण पूर्ण न हो जावे। इसी पद्धति में आश्वासन एवं विश्वसन स्वभाव से सिद्धियाँ हैं।

गुणात्मक परिवर्तन पद्धति स्वयं सिद्धांत, विकास एवं जागृति है। ह्रास मानव के लिये वांछित घटना नहीं है। समाज की अखण्डता में, से, के लिये सार्वभौम व्यवस्था मानव परंपरा में एक अनिवार्य प्रक्रिया है।

व्यवस्था के मूल में सत्यतापूर्ण प्रबुद्धता ही आधार है। प्रबुद्धता जागृतिपूर्वक सार्थक होने वाला पद है। प्रबुद्धता का सामान्यीकरणार्थ ही व्यवस्था की अनिवार्यता है। व्यवस्था मानव में वांछित घटना है।

परिवार एवं वर्ग में जितनी भी संस्थायें हैं, ये प्रथम एवं द्वितीय अवस्था में गण्य हैं। इनके द्वारा किये गये सभी प्रयोगों की असफलता ही सामाजिकता के लिए अर्थात् संस्था की तृतीय अवस्था के लिये बाध्यता है। संस्था का सार्वभौम होना अनिवार्य है। सार्वभौम सामाजिक संस्था मानवीयता पर आधारित वास्तविकताओं की अनुसरण पद्धति ही है। व्यवस्था का स्वत्व और व्यवस्थापीय कार्यक्षेत्र के मध्य में तारतम्यता का अभाव ही व्यवस्था का पराभव है। सार्वभौम संस्था के कार्यक्रम में पराभवता की संभावना नहीं है। मानव के लिये मानवीयता ही वांछित वैभव है।

मानव जीवन की विधि एवं नीति संहिता में असंदिग्धता ही शिक्षा में पूर्णता है। व्यवस्था की सफलता उसके कार्यक्षेत्र के अंतर्गत पाई जाने वाली जनजाति में तारतम्यता ही असंदिग्धता का प्रत्यक्ष रूप है। विधि संहिता ही मानव जीवन संहिता है। यही प्रकृति के विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति की भाषाकरण संहिता है। उसका अनुकरण, अनुसरण और आचरण प्रक्रिया ही नीति है। यही मानव जीवन का कार्यक्रम है।

क्षेत्र और वर्ग सीमा पर आधारित विधि अर्थात् अपराध संहिता और उसकी व्याख्या का सार्वभौम होना संभव नहीं है। इसी सत्यतावश सार्वभौम जीवन क्रम, जीवन के कार्यक्रम में संक्रमित होने के लिये आवश्यकता उत्पन्न हुई है।

सार्वभौम विधि संहिता मानवीयतापूर्ण पद्धति से "नियम त्रय" का विश्लेषण है। दश सोपानीय व्यवस्था में जिसका पालन एवं व्यवहृत हो जाना ही उसकी चरितार्थता है। यही सर्वमानव की कामना है। यही आप्त पुरुषों का उपदेश है। नीति का आधार विधि है। नीति सम्मत वस्तु, विषय, पद्धति एवं प्रक्रिया ही लोकाकाँक्षा से सम्बद्ध होती है, होना ही है। नीति केवल दो ही है:- प्रथम - धर्म नीति, द्वितीय - राज्य नीति।

ये दोनों नीतियाँ अर्थतंत्र सहित वैभव है। अर्थ तन, मन और धन के रूप में प्रमाणित हैं। मानव संतृप्त होने के लिए आश्वस्त, विश्वस्त होना चाहता है। अर्थ के सदुपयोग में विश्वास धर्म नीति, अर्थ की सुरक्षा में विश्वास राज्य नीति सहज सिद्ध होता है। अर्थ के उत्पादन, वितरण एवं उपयोग से ही सदुपयोग स्पष्ट होता है। सदुपयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक नीति ही मानव की आकाँक्षा है। परिवार एवं वर्ग सीमा से मुक्त संस्था ही सार्वभौम संस्था है। ऐसी संस्था में मानव जीवन, मध्यस्थ दर्शन सहित, स्वभावत: समाविष्ट रहती है। फलत:

मानव जीवन के कार्यक्रम का क्रियान्वयन होता है। दर्शन क्षमता के अनुरूप में कार्यक्रम का निर्धारण संस्थाओं ने किया है। असंदिग्ध कार्यक्रम केवल मानवीय संस्कृति, सभ्यता पर आधारित विधि व्यवस्था ही है। इसका प्रत्यक्ष रूप ही है व्यवहारिक ''नियम त्रय'' का पालन। नियम त्रय का प्रत्यक्ष रूप ही शिष्ट मूल्यों सहित संपूर्ण स्थापित मूल्यों का निर्वाह है। यही अखण्ड समाज, सहअस्तित्व, समाधान एवं समृद्धि है।

भ्रमित परंपरा में भी संस्थाओं ने शासक तंत्र व्यक्तिवादी राजतंत्र, सभावादी राजतंत्र, समाजवादी राजतंत्र, पूंजीवादी राजतंत्र, साम्य राजतंत्र, गणतंत्र एवं जनवादी तंत्र के प्रभेदों में से व्यवस्था का प्रयोग करने का प्रयास किये हैं। जिसमें से पहले तीन प्रकार के प्रयोग हो चुके हैं। गणतंत्र भी वर्ग संघर्ष से मुक्त नहीं हो पाया है। शासन संस्था तंत्र गणवादी तंत्र की अपेक्षा में संकीर्ण; शासक तंत्र शासन संस्था तंत्र की अपेक्षा में संकीर्ण पद्धति प्रक्रिया के प्रयोग किये हैं उसी आधार पर वर्ग संघर्ष एवं युद्ध हुए हैं।

मानवीयता पूर्ण व्यवस्था अथवा सार्वभौमिक व्यवस्था के अर्थ में जनवादी तंत्र को दश सोपानीय विधि से निर्देश किया है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति, सभ्यता को प्रत्येक मानव जीवन में चरितार्थ करना चाहता है, जिसके लिये ही वह संस्था में स्वयं को समर्पित करता है।

जागृत जनवादी तंत्र ही वर्ग, जाति सम्प्रदाय एवं मत की सीमाओं से मुक्त, मानवीयता से सम्पन्न तंत्र व्यवस्था है। यही सभी संस्थाओं की प्रकारान्तर में की गई काँक्षा भी है। यही स्पष्टता सार्वभौम व्यवस्था तंत्र की संभावना को स्पष्ट कर देती है। अनिवार्यता का संयोग ही इसकी सफलता है।

मानवीयता पूर्ण व्यवस्था अथवा सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में जनवादी व्यवस्था तन्त्र को दश सोपानीय परिवार सभा विधि से सार्थक होने के अर्थ में निर्देशित किया है।

20.

केवल साधनों की प्रचुरता मानवीयता को स्थापित करने में समर्थ नहीं है।

समझदारी से समाधान एवं श्रम से समृद्धि है। क्योंकि :-

1. साधन ही सामाजिकता का एकमात्र आधार नहीं है।
2. संपूर्ण साधन मानव की स्वेच्छा से, स्वेच्छानुरूप ही निर्मित होते हैं।
3. संपूर्ण साधन मानव की स्वेच्छा से नियोजित और प्रायोजित होते हैं।
4. साधन मनुष्यों को निर्मित नहीं करता है।
5. उत्पादन मानव का एक आयाम मात्र है न कि मानव जीवन समग्र।

समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद, अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का संयुक्त रूप ही सहअस्तित्व एवं सहअस्तित्ववाद है। यही प्रत्येक स्थिति एवं प्रत्येक आचरण को अतिसंतृप्ति प्रदान करने के लिए सूत्र व्याख्या है। व्यवहारात्मक जनवाद के आधार पर व्यवहार निर्वाह अर्थात् स्थापित मूल्यों का निर्वाह, शिष्ट मूल्य सहित प्रत्यक्ष होता है। जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य का अनुभव व मूल्यांकन होता है और शिष्ट मूल्य का आचरण होता है। उत्पादित वस्तु का उत्पादन, उपयोग एवं वितरण होता है।

बौद्धिक समाधान ही समाधानात्मक भौतिकवाद का आधार है। यही आधार स्वयं स्पष्ट करता है कि मानव के लिये समाधान एक प्रधान आयाम में, से, के लिये काँक्षित उपलब्धि है। चारों आयामों की प्राथमिकता क्रमश: अनुभव, विचार, व्यवहार और व्यवसाय है। अनुभव मूलक पद्धति से विचारों में समाधान, विचारानुरूप व्यवहार पद्धति से सहअस्तित्व एवं न्याय, नियम, नियंत्रण, संतुलन मूलक उत्पादन से समाधान, समृद्धि दृष्टव्य है।

प्रत्येक मानव संपूर्ण मूल्यों को शिष्ट मूल्य सहित निर्वाह करने के पक्ष में है। सम्बन्धों का निर्वाह न होना ही अव्यवहारिकता अर्थात् अमानवीय व्यवहार, उद्दण्डता, अराजकता एवं अस्थिरता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव संबंध विहीनता में, से, के लिए स्वीकार नहीं है। यही सत्यता व्यवहारात्मक जनवाद को उद्घाटित करने का प्रधान कारण है। स्वयं के समर्पण का तात्पर्य ही है निर्वाह करना। जितने भी परिप्रेक्ष्यों में निर्वाह क्षमता प्रकट हुई है, ये सब समर्पण से प्राप्त गुणात्मक परिवर्तन के रूप में ही स्पष्ट हैं। **समर्पण में पूर्ण स्वीकृति होती है। जो जिसे स्वीकार नहीं करता है उनमें परस्पर समर्पित होना संभव नहीं है। जो जिसको स्वीकारता है, उसको वह आत्मसात कर लेता है या आत्मसात होता है, जो स्पष्ट है।**

जन्म से ही मानव में संबंध का होना पाया जाता है। **संबंध विहीन जन्म, जीवन परंपरा नहीं है।** शरीर सहित जीवन संबंध में इसे स्पष्ट करना होना ही अध्ययन है। मानव के जन्म जीवन काल में ही समाज एवं सामाजिकता के अध्ययन की अनिवार्यता है। यही अनिवार्यता संबंधों के निर्वाह के लिए प्रेरणा है। यह जन्म से ही आरंभ होता है। जैसे :-

1. प्रत्येक माता-पिता अपनी संतानों का पोषण करते हैं, करना चाहते हैं।
2. प्रत्येक शिक्षार्थी शिक्षा पाना चाहता है।
3. प्रत्येक शिक्षक शिक्षा प्रदान करना चाहता है।
4. प्रत्येक व्यक्ति न्याय पाना चाहता है और सही कार्य-व्यवहार करना चाहता है।
5. प्रत्येक व्यक्ति परस्परता में कर्त्तव्य एवं दायित्व निर्वाह की अपेक्षा करता है और स्वीकारता है।
6. प्रत्येक व्यक्ति भौतिक समृद्धि और बौद्धिक समाधान चाहता है।

इसलिए **प्रत्येक स्थापित संबंधों में निहित संपूर्ण मूल्यों का निर्वाह ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है।** यही निर्विषमता सहअस्तित्व का भी प्रत्यक्ष रूप है। इसमें संदिग्धता या विषमता ही अर्थात् स्थापित मूल्यों का निर्वाह होने में जो असमर्थता है, अन्याय एवं भय के रूप में भासित होता है। फलत: उनके निराकरण के लिए प्रयास होते हैं। इसी प्रयास क्रम में मानव मानवीयता को स्वीकारने के लिए उत्सुक हो जाता है।

समाज संरचना शुद्धत: मानव की परस्परता में स्थापित संबंध ही है। यही समाज की आद्यान्त संरचना है। संबंधों की अक्षुण्णता उसमें स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही है। यही मानव जीवन की गरिमा है। स्थापित मूल्य अनुभूति है। मानव जीवन अनुभव क्षमता सम्पन्न है। यही क्षमता मूल्यों का अनुभव करने के लिए प्रवृत्त है।

समाज संरचना का आधार मानव मूल्य एवं स्थापित मूल्य ही है। संबंधों से अधिक समाज संरचना नहीं है। मित्र संबंध में समस्त मानव मात्र संबंधित हैं ही। अपराध विहीन समाज को पाने के लिए मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति ही मूलत: कारक व आवश्यक है। मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था अन्योन्याश्रित उद्घाटन हैं। इनकी आधारभूत संहिता में मानव जीवन के अनुरूप जीवन के कार्यक्रम को पूर्णतया विश्लेषित करते तक अंतर्विरोध स्वाभाविक है। भ्रमित शिक्षा और व्यवस्था का अंतर्विरोध ही अराजकता है। अराजकता व्यक्ति परिवार एवं वर्ग के लिए भी वांछित घटना नहीं है। यही समीक्षा उनमें

निर्विरोधिता, निर्विषमता को स्थापित करने एवं पूर्णता को प्रदान करने के लिये प्रेरणा पूर्वक प्रयास प्रक्रिया व्यवहारोदय है। मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था संहिता का योगफल ही मानव जीवन संहिता है, जिसमें मानव की परिभाषा, मानवीयता की व्याख्या समायी हुई है। यही जीवन संहिता की पूर्णता है। इसी के आधार पर निर्विषमता, निर्विरोधिता स्थापित होती है। ये जागृति पूर्वक, प्रमाण पूर्वक पाई जाने वाली स्थिति है।

प्रत्यक्ष रूप में स्थापित संबंध ही समाज संरचना है जिसके अनुभव में ही संपूर्ण मूल्य ज्ञातव्य हैं। ये मूल्य शुद्धत: स्थिति ही हैं। स्थिति दर्शन एवं अनुभूति हैं। संबंध विहीन इकाई नहीं हैं। प्रत्येक संबंध मूल्य सम्पन्न हैं। मानव के परस्पर संबंधों में निहित संपूर्ण मूल्यों में से नौ स्थापित मूल्यों में से पूर्ण मूल्य प्रेम है, जो मानव संबंधों में इष्ट, मंगल एवं शुभ है। यही अनुभव है जिससे ही निर्विषमता, अनन्यता मानव जीवन में प्रकट होती है। यही सामाजिकता की आत्मा प्राण और त्राण है। प्रेरणा ही प्राण, आचरण ही त्राण है।

संबंध विहीन समाज नहीं है। समाज रचना संबंध में, से, के लिए ही है। संबंध मात्र समाज में, से, के लिए है। अत: समाज एवं संबंध अन्योन्याश्रित हैं। इसी तारतम्य में सभी मूल्य अन्योन्याश्रित है। फलत: अनन्यता सिद्ध है। यही सहअस्तित्व का मूल सूत्र है।

संबंध ही जन्म, शिक्षा, व्यवहार, परिवार, उत्पादन, व्यवस्था के प्रभेद से दृष्टव्य है। वह :-

1. जन्म संबंध :- माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन उनसे संबंधित सभी संबंध
2. शिक्षा संबंध :- गुरु-शिष्य।
3. व्यवहार संबंध :- मित्र, वरिष्ठ, कनिष्ठ (आयु के आधार पर)
4. उत्पादन प्रौद्योगिकी संबंध :- साथी-सहयोगी, स्वामी-सेवक, साधन-साधक-साध्य।
5. व्यवस्था संबंध :- दश सोपानीय परिवार सभा विधि।
6. परिवार संबंध :- परिवार संबंध में पति-पत्नि सहित सभी संबंध समाये रहते हैं।

प्रत्येक मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए उत्सुक है। जागृत मानव प्रधानत: मानव के साथ ही स्वयं की जागृति को प्रमाणित करता है। स्थापित संबंध में ही निर्वाह क्षमता का उपार्जन कर लेना ही शिक्षित होने की उपलब्धि है। इसकी अनिवार्यता व्यक्ति, परिवार,

समाज, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों में साम्यत: पायी जाती है। व्यवहार स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य एवं वस्तु मूल्य के योगफल में ही है। अनुभव ही मानव जीवन का प्रधान आयाम है। अन्य आयाम जैसे - विचार, व्यवहार एवं व्यवसाय अनुभव क्षमता के बिना पूर्ण नहीं होता है। अनुभव क्षमतावश ही मानव सामाजिकता के लिए उन्मुख होता है। क्योंकि :-

शीत-उष्ण; प्रकाश-अंधकार; प्रिय, हित, लाभ; न्याय, धर्म, सत्य; उचित-अनुचित; हानि-लाभ; उत्थान-पतन; ह्रास-विकास का आंकलन प्रत्येक मानव में किसी न किसी अंश में होता ही है। यही समीक्षा पूर्णता सहज निरंतरता के लिए प्रेरणा है।

अनुभव क्षमता के अभाव में मानव जीवन का विश्लेषण एवं उनके कार्यक्रम की स्थापना संभव नहीं हैं। मानव में स्थापना का तात्पर्य स्वीकृति से है। स्वीकृति ही संस्कार है। यही क्रम से मूल प्रवृत्ति एवं संवेग के रूप में अवतरित होकर क्रिया, व्यवहार, आचरण में प्रत्यक्ष होता है। अनुभव क्षमता में ही भाव और अभाव का निर्णय होता है। भाव ही उपलब्धि है। अभाव ही भाव में परिणत होने के लिये शेष प्रयास है। प्रत्येक भाव मौलिक है। प्रत्येक मूल्य मानव और उसकी धर्मियता पूर्वक प्रतिष्ठित है। इकाई और उसकी मूल्यवत्ता का वियोग नहीं है। यही स्वभाव है। यही सत्यता प्रत्येक इकाई में उत्सव है। दिव्य मानवीयता में आचरण/स्वभाव पूर्णता है। देव मानवीयता मानव यशस्वी होता है। मानव मानवीयता पूर्वक सामाजिक होता है। यही जागृति में पायी जाने वाली वास्तविकता है। प्रत्येक मानव इकाई में पूर्णता की तृषा है। परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम, गति का गन्तव्य प्रकृति के जागृति क्रम, जागृति में दृष्टव्य है।

21.

विकास व जागृति ही वैभव क्रम है।

मानव शरीर के अर्थ में भी आकार, आयतन, धनोपाधि अपूर्णता का द्योतक है क्योंकि यह भौतिक रासायनिक वस्तुएं हैं। उपाधि का तात्पर्य ही उपाय के लिए बाध्यता है। यहाँ बाध्यता का तात्पर्य रासायनिक, भौतिक वस्तुएं अपने यथास्थिति में उपयोगिता और पूरकता विधि से सार्थक होना स्पष्ट किया जा चुका है। अपूर्णता से पूर्णता को पा लेना ही चैतन्य क्रिया का आद्यान्त उपाय चिंतन का या उपायों की चरितार्थता है। उपयोगितार्थ आय भी उपाय है यथा उपाय पूर्वक ही उपयोग होता है, उपाय पूर्वक ही उत्पादन होता है। उपयोग की चरितार्थता विकास क्रम के अर्थ में, मानव की जागृति क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता के अर्थ में स्पष्ट है।

अपूर्णता ही तृष्णा, तृष्णा ही विकल्पापेक्षा, विकल्पापेक्षा ही सापेक्षता, सापेक्षता ही अपेक्षा, अपेक्षा ही गति, गति ही अग्रिम उदय, अग्रिम उदय ही परिणाम-परिवर्तन-परिमार्जन, परिणाम-परिवर्तन-परिमार्जन ही गठन क्रिया एवं आचरण पूर्णता है। यही जागृति क्रम और जागृति की आद्यान्त स्थिति है, जिसके संदर्भ में संपूर्ण अध्ययन है। यही दर्शन है।

क्रमिकता ही नियति क्रम है। नियंत्रणपूर्ण गति ही नियति है। क्रमिकता ही गुणात्मक विकास एवं जागृति की श्रृंखला है। गुणात्मक जागृति ही प्रकटन है। यही जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति की अभिव्यक्ति है। अभ्युदय को व्यक्त करना ही अभिव्यक्ति है। रूप, गुण, स्वभाव की वैविध्यता ही अनेक स्थितियों को स्पष्ट करती है। यही स्थितियाँ क्रम से गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता को प्रकट करती हैं। यही त्रिसिद्धियाँ आद्यान्त प्रकृति में पायी जाने वाली उपलब्धियाँ हैं। दर्शन क्षमता का उदय मानव में विशेषत: हुआ है। अशेष प्रकृति प्रकटन है। यही अध्ययन एवं उदय का कारण है। क्रिया में वैविध्यता का समापहरण ही सार्वभौमिकता है। यही मानवीयता का प्रत्यक्ष रूप है। मानव में व्यवहार एवं उत्पादन क्रियाएं प्रसिद्ध हैं। उत्पादन क्रियाओं की सार्वभौमिकता निपुणता एवं कुशलता से अर्थात् उपयोगिता मूल्य एवं सुन्दरता मूल्य के स्थापन करने की सामर्थ्य समानता से, व्यवहार क्रिया में सार्वभौमिकता पाण्डित्यपूर्ण पद्धति से अर्थात् संबंधों में निहित मूल्यों के निर्वाह से है। यही संस्कृति एवं सभ्यता में सार्वभौमिकता का आधार है या यही सार्वभौमिकता है। सार्वभौमिकता ही विरोध की विजय है, विरोध की विजय ही सहअस्तित्व है। अमानवीयतावादी जीवन में सामान्य समाज व्यवस्था एवं शिक्षा समृद्धि पर्यन्त विरोध का अभाव नहीं है। इकाई की क्षमता में जागृति पर्यन्त विरोध का अभाव नहीं है। इकाई की क्षमता में जागृति ही गुणात्मक परिमार्जन है। प्रत्येक मानव इकाई की क्षमता ही आचरण में अभिव्यक्त होती है। अमानवीयता से मानवीयता, मानवीयता से अतिमानवीय गुणात्मक परिवर्तन सिद्ध हुआ है। मानवीयता सहज क्रिया की पूर्णता होती है। फलत: संस्कृति एवं सभ्यता में निर्विषमता एवं सतर्कता सहित सजगता पूर्ण होती है। अतिमानवीयता पूर्वक आचरण में पूर्णता होती है, फलत: सजगता प्रमाण सिद्ध होती है।

अपेक्षाकृत स्थितिवत्ता ही अनुमान का उदय है। यही अध्ययन हेतु की गई उत्सुकता है। उदय विहीन स्थिति में अध्ययन एवं अध्ययन सिद्धि नहीं है। उदय ही कौतूहल है अर्थात् जानने, मानने, पहचानने, उपयोगिता, उपादेयता एवं अनिवार्यता पूर्वक अनुभव करने की क्रिया ही उत्कंठा है। तीव्र इच्छा का उत्कर्ष ही उत्कंठा है। यही मानव जीवन में क्रियाकलापों का आधार है। अमानवीय क्रियाकलाप मानवीयता पूर्ण जीवन के कार्यक्रम में अवसानित होते हैं। मानव जीवन चार आयाम, दश सोपनीय परिवार सभा व्यवस्था एवं मूल्यों के निर्वाह के रूप

में दृष्टव्य है जो संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है। कौतूहल तब तक भावी है जब तक मानव जीवन और सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व का पूर्ण विश्लेषण न हो जाए, साथ ही प्रकृति के विकास एवं जीवन जागृति में रहस्य न रह जाए। यह चारों अवस्था प्रकृति की स्थिति, स्थितिवत्ता एवं उनके रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्मवत्ता के आधार पर अरहस्यमय सिद्ध हुई है और दश सोपनीय परिवार सभा व्यवस्था मानव की स्थितिवत्ता के विश्लेषण से प्रत्येक मानव की जीवनी, जीवन का कार्यक्रम स्पष्ट हो चुका है।

22.

प्रत्येक मानव समाजिकता के लिए समर्पित होना चाहते है।

प्रत्येक मानव शुद्धत: संघर्ष, विषमता, द्रोह-विद्रोह को नहीं चाहता है। यह सब भ्रमित मानवकृत वातावरण के बाध्यतावश ही होता हुआ पाया जाता है। यही सामाजिकता के लिए अड़चन है। अखण्ड समाज व्यवस्था के बिना मानव में मानव चेतना प्रगट होना संभव नहीं है। मानव में विकास एवं जागृति के प्रति स्पष्ट ज्ञान, तदनुकूल आचरण, अनुसरण, संरक्षण, सहयोग व अध्ययन की न्यूनता ही सामाजिकता की अपूर्णता है। यह मानव के लिए वांछित एवं आवश्यक घटना नहीं है।

''निर्भ्रमता पूर्वक ही मानव चारों आयामों और दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था में पूर्णता का अनुभव करता है।'' यह पूर्णता समाधान, समृद्धि, अभय एवं सहअस्तित्व के रूप में प्रत्यक्ष होती है। पूर्णता मानव जीवन एवं प्रकृति की विकास क्रम एवं जीवन जागृति की संहिता है। जिसका सार्थक भाषाकरण ही संहिता है। यह सर्ववांछित उपलब्धि हैं। मानव के संस्कारों के अन्तरान्तरवश उनमें अध्ययन, अन्वेषण, अनुसंधान एवं दर्शन क्षमता में विविधता पायी जाती है। सार्वभौम सिद्धांत, नीति एवं पद्धति को पाना अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा के लिए अनिवार्यतम आवश्यकता है जिसके बिना शिक्षा एवं व्यवस्था में सार्वभौमिकता संभव नहीं है। फलत: संस्कृति सभ्यता में सार्वभौमिकता संभव नहीं है। यही सभ्यता मानवीयता की अपेक्षा में अमानवीयता का, अतिमानवीयता की अपेक्षा में मानवीयता का, व्यापाकता की अपेक्षा में अतिमानवीयता का, प्रकृति की अपेक्षा में व्यापकता का, क्रियाशीलता की अपेक्षा में प्रकृति का, ह्रास और विकास की अपेक्षा में क्रियाशीलता का, चार अवस्था की सृष्टि की अपेक्षा में ह्रास और विकास जागृति का विश्लेषण पूर्वक अध्ययन स्पष्ट है।

''मनुष्य निर्भ्रमता पूर्वक ही चारों आयामों तथा दश सोपानीय व्यवस्था में

चरितार्थता का अनुभव करता है।''

संवेदनशीलता एवं संज्ञानशीलता का प्रमाण ही सामाजिकता है। संज्ञानशीलता सामाजिक मूल्यों का निर्वाह व अनुभव करती है। साथ ही शिष्ट मूल्य एवं वस्तु मूल्य का अनुभव करने वाली क्षमता संज्ञानशीलता ही है। मानव अल्प जागृत अवस्था में वस्तु मूल्य का, अर्ध जागृत अवस्था में शिष्ट मूल्य का, जागृत अवस्था में स्थापित मूल्य का अनुभव करता है। मानव में गुणात्मक परिवर्तन संज्ञानशीलता पूर्वक है यही दर्शन क्षमता के रूप में सहअस्तित्व में ज्ञान एवं अनुभूति के रूप में प्रत्यक्ष होता है। वस्तु मूल्य के संदर्भ में प्रयोग एवं उत्पादन-विनिमय, शिष्ट मूल्य के संदर्भ में व्यवहार एवं आचरण, स्थापित मूल्य के संदर्भ में स्वीकार एवं अनुभव प्रसिद्ध है। निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य ही विचार सर्वस्व है। यही संपूर्ण समाधान है। इसी का नियोजन उत्पादन एवं व्यवहार के रूप में प्रत्यक्ष होता है। यही उत्पादन एवं व्यवहार मानव के अल्प जागृति, अर्ध जागृति, जागृति और जागृति निरंतरता के रूप में स्पष्ट होता है।

''**चारों आयामों की परितृप्ति ही सुख, शांति, संतोष एवं आनंद है।**'' यही मानव की चिरआकाँक्षा है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन अर्थात् समृद्धि में उत्पादन-विनिमय आयाम की परितृप्ति; शिष्टता सहित आचरण से व्यवहारिक आयाम परितृप्ति; निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य पूर्ण समाधान से वैचारिक आयाम की तृप्ति; पूर्ण मूल्य एवं स्थिति सत्य में निरंतरता ही अनुभवात्मक आयाम की तृप्ति है।

पूर्णता को पूर्णतया स्वीकार करने योग्य क्षमता ही अनुभव क्षमता है। यह अनुक्रम से अर्थात् जागृति क्रम और जागृति से प्राप्त प्रकटन एवं स्थिति है। इस प्रकटन के अनन्तर परिवर्तन-परिमार्जन नहीं है। यही पूर्ण जागृति है। ऐसी पूर्णता केवल तीन ही है - गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता। जिस अनुभूति के अनन्तर शंका अथवा परिवर्तन परिमार्जन होता है वह पूर्ण विकास का लक्षण नहीं है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर चैतन्य होने के समय में गठन पूर्णता जिसमें प्रस्थापन एवं विस्थापन का सर्वथा अभाव, मानवीयता में क्रिया पूर्णता जिसमें मानव संस्कृति एवं सभ्यता से संदिग्धता का सर्वथा अभाव, आचरण पूर्णता में सतर्कता एवं सजगता के प्रति शंका का सर्वथ अभाव पाया जाता है। यही प्रमाण का आधार है।

पूर्ण स्वीकृति केवल स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य एवं वस्तुगत सत्य के संदर्भ में, से, के लिए है। यही संचेतना का चरमोत्कर्ष एवं अन्तिम उपलब्धि नित्य मंगल सिद्धि है।

23.

कम्पनात्मक एवं वर्तुलात्मक गति का वियोग नहीं हैं।

प्रत्येक परमाणु में उभय गतियाँ प्रसिद्ध हैं। रासायनिक एवं भौतिक परिवर्तन सीमा पर्यन्त कम्पनात्मक गति की अपेक्षा में वर्तुलात्मक गति का अधिक रहना, रासायनिक सीमा से मुक्त गठन पूर्णता से सम्पन्न परमाणु में वर्तुलात्मक गति की अपेक्षा में कम्पनात्मक गति का विपुल होना पाया जाता है। कम्पनात्मक गति ही स्वागत भाव अर्थात् मूल्य संकेत ग्रहण एवं प्रसारण क्षमता एवं वर्तुलात्मक गति ही आस्वादन भाव को प्रकट करती है। रसों के आस्वादन की स्थिति रासायनिक क्रिया-प्रक्रिया सीमांतवर्ती है। चैतन्य प्रकृति कम्पनात्मक गति सहित स्वागतभाव पूर्वक ही मूल्यों का आस्वादन प्रवृत्ति व प्रमाण हैं। भावग्राही एवं भाव प्रदायी संकेतों का ग्रहण एवं प्रसारण करती है। इस संकेत ग्रहण-प्रसारण क्षमता में गुणात्मक परिवर्तन ही सुसंस्कार है। यही जागृति है, स्वभावात्मक महिमा है। यही वातावरणस्थ मौलिकताओं का संकेत ग्रहण एवं प्रसारण क्रिया कम्पनात्मक गति में ही होता है। यही प्रभावात्मक एवं प्रभावशील गति को प्रकट करता है, वर्तुलात्मक गति दबावात्मक एवं तरंगात्मक गति को प्रदान करती है जो प्रसिद्ध है।

सामाजिकता के मूल में संज्ञानशीलता ही सक्रिय है। जो कम्पनात्मक गति की महिमा है। महानता का विस्तार ही महिमा है। महानता ही जागृति सहज प्रमाण परंपरा है। अस्तित्व वर्तमान ही महानता का प्रधान लक्षण है। अस्तित्व में ही धर्मीयता का वर्तमान होना प्रसिद्ध है। मानव में धर्मीयता सुख है। मानव जब तक सुख धर्मीयता से परिपूर्ण नहीं होता है, तब तक जागृति सहज प्रमाण नहीं है। जागृति पूर्णता ही महिमा सम्पन्नता है। मानव से अधिक महिमा सम्पन्न इकाई नहीं है। मानव ही जागृति पूर्वक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए शरीरान्तर भी देवात्मा एवं दिव्यात्मा के पद में स्थित रहना होता है। सम्यकता अर्थात् पूर्णता के लिए जो जिज्ञासा है यही संचेतना है। सम्यकता केवल गठन, क्रिया एवं आचरण ही है। जिसका प्रत्यक्ष रूप ही अमरत्व, सतर्कता एवं सजगता है। सतर्कता की परिपूर्णता ही मानव में अभय एवं विश्वास, समृद्धि एकमात्र उपाय है। आशय पूर्ति के संदर्भ में समझदारी पूर्ण हो जाना ही अभयता है। अभयता ही सामाजिकता की आद्यान्त उपलब्धि है यही संज्ञानशीलता है।

24.

सर्वशुभ उदय का भास-आभास संवेदनशीलता की ही क्षमता है और प्रतीति व अनुभूति संज्ञानीयता की महिमा है।

अत: सर्वप्रथम सुख समाधान का भास-आभास संवेदनशीलता पूर्वक होता है। सुख, शान्ति, संतोष, आनन्द, न्याय, धर्म, सत्य सहज प्रतीति, अनुभूति यह संज्ञानशीलता की गम्यस्थली है। यही पूर्ण जागृति है। वस्तु स्थिति के साथ आशा, विचार, इच्छा एवं संकल्प का उत्कर्षन (तीव्र इच्छा) एवं उज्जवलता का होना अनिवार्य है। उत्कर्षता का तात्पर्य गतिशीलता से, उज्जवलता का तात्पर्य निर्भ्रमता से है। किसी न किसी सीमा में अनुभूति ही अग्रिम स्थितिवत्ता के प्रति अनुमान है। यही अनुमान अगिम प्रयोग का कार्यक्षेत्र तथा वस्तु है। अनुमान क्षमता ही प्रयोग व्यवहार एवं अनुभव के लिए संभावना, अवसर तथा बाध्यता है। यही बाध्यता ही प्रवृत्ति, निवृत्ति या वृत्ति है। प्रवृत्तियाँ भोगों में, वृत्तियाँ व्यवहार एवं आचरण में, निवृत्ति केवल अनुभव में आनंद के अर्थ में प्रायोजित होना पाया जाता है। अमानवीयता की सीमा में प्रवृत्तियाँ, मानवीयता में वृत्तियाँ एवं अतिमानवीयता में निवृत्ति मूलक क्रिया पायी जाती है।

''जागृति सहज अनुमान क्षमता मानव की विशालता को और अनुभव ही पूर्णता को स्पष्ट करता है।'' सतर्कता एवं सजगता मानव जीवन में प्रकट होने वाली क्रिया पूर्णताएं है। चैतन्य क्रिया अग्रिम रूप में क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता के लिये तृषित एवं जिज्ञासापूर्वक अपनी विशालता को अनुमान के रूप में प्रकट करती है। ज्ञानावस्था की इकाई का मूल लक्ष्य ही पूर्णता है। पूर्णता के बिना ज्ञानावस्था की इकाईयाँ आश्वस्त एवं विश्वस्त नहीं है। उत्पादन एवं व्यवहार में ही क्रमश: समाधान एवं अनुभव चरितार्थ हुआ है। प्रयोग एवं उत्पादन में ही समस्या एवं समाधान है। व्यवहार एवं आचरण में ही सामाजिक मूल्यों का अनुभव होने का परिचय सिद्ध होता है। आशा, विचार, इच्छा समाधान के लिए ही प्रयोग व उत्पादन विनिमयशील है। इच्छा एवं संकल्प अनुमानपूर्वक अनुभव के लिए प्रवर्तनशील है। आचरण के मूल में मूल्यों का होना पाया जाता है। स्वभाव ही आचरण में अभिव्यक्त होता है। मानवीय स्वभाव धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करूणा ही है। अनुभव आत्मा में अनुभवमूलक व्यवहार एवं आचरण आत्मानुशासित होता है, आत्मानुभूति ही प्रमाण और वर्तमान है। आत्मानुभूति मूलक व्यवहार समाधान सम्पन्न होता है। तभी परावर्तन एवं प्रत्यावर्तन में संतुलन सिद्ध होता है। अनुभूति आत्मानुषंगी एवं अपरिवर्तनीय है। यही पूर्णता सहज व्यवहार आत्मानुषंगी एवं अपरिवर्तनीय है यही पूर्णता है। यही पूर्ण सजगता है, पूर्ण

सजगता ही सहजता है। समाधान एवं अनुभूति की निरंतरता ही सामाजिक अखण्डता एवं अक्षुण्णता है। अनुभव एवं समाधान के बिना जीवन चरितार्थ नहीं है। चरित्र पूर्वक अर्थ निस्सरण ही चरितार्थता है। आचरण ही स्वभाव के रूप में प्रकट होता है। यही स्वभाव ''तात्रय'' में स्पष्ट है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में प्रयोग पूर्वक किया गया उत्पादन-विनिमय में सफल हुआ है। व्यवहार एवं उत्पादन का योगफल ही सहअस्तित्व है। उनमें निर्विषमता ही जागृति है। उसकी निरंतरता ही सामाजिकता की अक्षुण्णता है, जिसके दायित्व का निर्वहन शिक्षा एवं व्यवस्था करती है।

''परिमाण विश्लेषण पूर्वक सिद्ध होता है जो नियति सहज निर्णय है। यह निर्णय ही समाधान है। परिमाणता, फल, प्रभाव, दबाव, तरंग, वस्तु, दूरी, विस्तार, काल एवं क्रिया के रूप में गण्य होता है।'' ये सब प्रयोजन एवं आवश्यकता के आधार पर उपयोगी पूरक सिद्ध हुए है। जागृत मानव की उपयोगिता या व्यवहारिकता सहज मानसिकता ही मूल्य है। उपयोगिता एवं व्यवहारिकता अन्योन्याश्रित तथ्य हैं। व्यवहारिकता स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य पूर्वक सिद्ध होती है। वस्तु मूल्य केवल उपयोगिता एवं सुन्दरता मूल्य में सीमान्तवर्ती है। सुंदर हो, व्यावहारिक न हो, अर्थात् सामाजिकता के लिए उपयोगी न हो यह निषेध है। विश्वासघात, प्राणघात, अर्थघात, मानघात, जीवनघात ये सामाजिकता के लिए उपादेयी नहीं है। इसी आंकलनवश ये सब निषिद्ध है।

परिचय ज्ञान, व्यवहार एवं आचरणपूर्वक सिद्धि के लिए की गई प्रक्रिया ही परिमाण प्रक्रिया है। मानव में पूर्णता केवल क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता है। परिणाम-निर्णय-प्रक्रिया में कारण, गुण, गणित ही आद्यान्त आधार है। यही निर्णायक तथ्यत्रय है। कारण सहित घटनाएं, गुण सहित प्रक्रियाएं एवं मात्रा की गणनाएं प्रसिद्ध हैं। शुद्धत: परिमाण का परिणाम परमाणु की स्थिति में होता है। ''रूप, गुण, स्वभाव व धर्म का संयुक्त रूप ही मात्रा है।'' प्रत्येक इकाई में स्वभाव गति एवं आवेशित गति दृष्टव्य है। ह्रास के योग्य गति आवेशित गति है। आवेशित गति ही सापेक्ष शक्तियों के रूप में दृष्टव्य है। जो जड़ प्रकृति में विद्युत, ताप, प्रकाश, चुम्बक और शब्द के रूप में; चैतन्य प्रकृति में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य के रूप में स्पष्ट है। ये सब आवर्तनशीलता सूत्र प्रक्रिया पूर्वक नियंत्रित व संरक्षित होती है।

25.

आवेश मानव का अभीष्ट नहीं है

आवेश विकास एवं जागृति के क्रम में सहायक नहीं है। यही सत्यता मानव के आवेश से मुक्ति पाने के लिए बाध्यता है। इसी बाध्यता ने आवेश के मूल तत्वों और उनके परिहार का अन्वेषण करने के लिए प्रयोग, अभ्यास, व्यवहार, उत्पादन करने के लिए प्रवृत्त किया है। यही क्रम अपने में एक इतिहास है। सुदूरकाल का इतिहास, अनन्त काल की प्रक्रियाएं क्रम से विकास के रूप में प्रत्यक्ष है। यह प्रत्यक्षता ही प्रकृति का एक इतिहास है। इसी इतिहास की एक श्रृंखला में मानव एक उपलब्धि है। मानव में पायी जाने वाली स्वतंत्रता की तृषा का तृप्त हो जाना ही मानव जीवन में दृष्टा पद प्रतिष्ठा एवं जागृति है। मानव जीवन में ही जागृति का क्रम है। स्वतंत्रता का प्रत्यक्ष रूप ही सतर्कता एवं सजगता है जो मानवीयतापूर्ण समाज, सामाजिकता, आचरण, संस्कृति, विधि, व्यवस्था एवं शिक्षा है। ये सभी परस्पर पूरक तथ्य हैं। इन सभी पूरक तथ्यों का एक ही सुदृढ़ आधार है मानवीयता। मानवीयतापूर्ण जीवन में ही मानव के विचार, व्यवहार एवं अनुभूति में एकात्मकता सिद्ध होता है। अनुभूति के विपरीत विचार, व्यवहार एवं उत्पादन होना ही अनेकता है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन पूर्वक वस्तु विनिमय एवं व्यवस्था; मूल्यों का निर्वाह पूर्वक व्यवहार एवं विधि; कुशलता, निपुणता एवं पाण्डित्य पूर्ण विचार तथा मूल्यत्रय के अनुभव की निरंतरता से जीवन चरितार्थ होता है। यही जीवन में समाधान है। यही मानवीयता पूर्ण जीवन जागृति सहज प्रमाण है। समस्या मानव का अभीष्ट नहीं है या उपलब्धि नहीं है। समाधान ही मनुष्य का आद्यान्त इष्ट, अभीष्ट एवं उपलब्धि है। यह केवल चारों आयामों दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था एकसूत्रता है, जिसके लिए अनवरत अभ्यास है।

''सतर्कता एवं सजगता पर्यन्त उदय क्रम है अर्थात् अनुमान का अभाव नहीं है।'' अनुमान ही अनुगमन, आचरण, अनुसंधान, प्रयोग, उत्पादन एवं व्यवहार की प्रवृत्ति है। अनुमान ही अग्रिम गति का प्रेरणा स्रोत है। अनुक्रम पूर्वक प्रमाणित करने के लिए प्रयासोदय ही अनुमान है। आनुषंगिक क्रम ही अनुक्रम है। आनुषंगिक क्रम सुदूर इतिहास से सम्बद्ध व विकास एवं जागृति से सम्बद्ध पाया जाता है। इसलिये प्रत्येक प्रामाणीकरण जागृति की श्रृंखला में ही सिद्ध होता है ऐसी प्रमाणिकता ''प्रमाण त्रय'' के रूप में मानव जीवन में चरितार्थ होती है। विकास क्रम व जागृति क्रम ही आद्यान्त क्रम है। जागृति पूर्णता तक अनुगमन के अनन्तर पुन: अनुगमन के लिए उदय अनुस्यूत होना पाया जाता है। यही उदय के अनन्तर उदय ही

जागृति की गरिमा, महिमा एवं सिद्धि है।

जागृति क्रम ही जागृतिशीलता पूर्वक प्रस्फुटित अवस्था एवं स्थिति है। यही समाधानित स्थिति है। मानव समस्या में, से, के लिए जीना नहीं चाहता है। इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि अमानवीयता जागृति की श्रृंखला में मानव जीवन के कार्यक्रम के स्तर पर उपादेयी सिद्ध नहीं हुई है या स्वीकृत नहीं हुई है। यह आंकलन मानवीयता में संक्रमित होने के लिए भी प्रवृत्ति है। मानवीयता में ही जीवन एवं जीवन जागृति सहज कार्यक्रम विश्लेषित, व्यवहृत एवं चरितार्थ होता है। समर संभावना पर्यन्त मानव सामाजिकता का सत्यापक नहीं है। इसी लाजवश पुन: समर विहीन राज्य, प्रबुद्धतापूर्ण प्रभुता से संपन्न होने के लिए ही प्रयास है। यह प्रयास वर्ग विहीन, विविध जाति विहीन तथा युद्ध विहीन प्रस्ताव है जो प्रबुद्धता पूर्ण सम्प्रभुता सिद्धि अर्थात् पूर्णता से सम्पन्न जीवन संहिता को करतलगत एवं सामान्यीकरण करते रहेगा।

अखण्ड सामाजिकता का उदय होना ही अध्ययन में पूर्णता, व्यवस्था पद्धति में दृढ़ता, व्यक्ति में आचरण पूर्णत, समाज में अभयता है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम एवं शुभ है।

26.

मानव में संचेतनशीलता ही संस्कार एवं जागृति सम्पन्नता सहज आधार एवं प्रमाण है।

यही व्यक्तित्व एवं प्रतिभा को प्रकट करती है। सतर्कता सहित सजगता ही प्रतिभा और सजगता ही व्यक्तित्व का प्रधान परिचय है, जिसके लिए निपुणता कुशलता एवं पाण्डित्य है। यही प्रतिभा के रूप में प्रमाण सिद्ध होता है। "तात्रय" (मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता) में किए जाने वाले आहार, विहार एवं व्यवहार के रूप में व्यक्तित्व प्रमाणित होता है। प्रतिभा में से निपुणता, कुशलता का परिचय उत्पादन में, व्यक्तित्व का परिचय व्यवहार में स्पष्ट होता है। तन, मन, धनात्मक अर्थ के सदुपयोग की सजगता उसके संरक्षण में सतर्कता है।

सतर्कता व सजगता प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संयुक्त रूप ही मानव जीवन है। यही प्रत्येक व्यक्ति में क्षमता, योग्यता और पात्रता के रूप में दृष्टव्य है जो वहन, प्रकटन एवं ग्रहण क्रिया है। प्रतिभा के नियोजन में उपयोगिता एवं कला सिद्ध होती है। यही सतर्कता है। यही नियोजन में उपयोगिता एवं कला सिद्ध होती है। यही सतर्कता है। यही व्यवहार विषमता का उन्मूलन करती है। फलत: अभयता सिद्ध होती है। अनुभव मूलक आचरण में ही सजगता सिद्ध होती है, जो अर्थ के सदुपयोग के रूप में स्पष्ट होती है। यही सहअस्तित्व को सिद्ध करती है।

''जागृत संचेतना ही प्रतिभा, प्रतिभा ही सतर्कता एवं सजगता, सतर्कता एवं सजगता ही जीवन, जीवन ही जागृति, जागृति ही व्यक्तित्व, व्यक्तित्व ही आचरण, आचरण ही संचेतना है।'' जागृत जीवन और शरीर के तन्त्र में स्पन्दन ही कम्पनात्मक गति, कम्पनात्मक गति ही संचेतना, संचेतना ही कम्पनात्मक गति है। यही चैतन्य क्रिया की महिमा, गरिमा एवं विशेषता है। मानव जीवन में अभिव्यक्त होने वाले संपूर्ण आचरण ''तात्रय'' में दृष्टव्य है। प्रतिभा ही उत्पादन-विनिमय एवं व्यवहार में प्रकट होती है। यही उत्पादन की सीमा में उपयोगिता एवं कला मूल्य का मूल्यॉंकन एवं प्रस्थापन तथा व्यवहार में स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य का निर्वाह है। यही विचार में समाधान, अस्तित्व में अनुभूति है।

''दर्शन क्षमता ही प्रतिभा, प्रतिभा ही उत्पादन-विनिमय एवं व्यवहार के लिए प्रवृत्ति है।'' आचरण ही मानव की अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति ही प्रकटन, प्रकटन ही जागृति पूर्वक अस्तित्वशीलता, विकास एवं जागृति अस्तित्वशीलता ही प्रकृति, प्रकृति ही जड़-चैतन्य क्रिया, जड़-चैतन्य क्रिया ही समग्र, समग्र ही अध्ययन, अध्ययन ही जागृति क्षमता एवं जागृति क्षमता ही दर्शन क्षमता है।

''ज्ञानावस्था की चैतन्य इकाई में प्रधान लक्षण दर्शन क्षमता ही है।'' मानव की मूल क्षमता या स्वत्व यही है। यही क्षमता ''तात्रय'' को स्पष्ट करती है। यही स्व-पर मौलिकता की स्वीकृति ही संस्कार, संस्कार ही निश्चय, निश्चय ही संकल्प, संकल्प ही अनुगमन एवं अनुसरण, अनुगमन एवं अनुसरण ही अनुसंधान एवं संधान, अनुसंधान एवं संधान ही व्यवहार एवं उत्पादन, व्यवहार एवं समृद्धि ही अनुभूति व समाधान, अनुभूति व समाधान ही जीवन, जीवन ही अस्तित्व एवं परमानंद, अस्तित्व एवं परमानंद ही सतर्कता एवं सजगता, सतर्कता एवं सजगता ही पूर्ण जागृति, पूर्ण जागृति ही दर्शन क्षमता की परमावधि है।

''मानव इस सृष्टि में सर्वोच्च विकसित इकाई है। यह कम विकसित का भी दर्शक, समान में सहअस्तित्वशील, अधिक विकास के लिए अभ्यासशील, पूर्णता के लिए जिज्ञासु है।''

प्रकृति का अध्ययन एवं दर्शन तथा मूल्यों का अनुभव प्रसिद्ध है। अनुभव क्षमता ही मूल्य एवं मूल्यांकन का निष्कर्ष है। स्थिति मूल्य या मूल्यांकन ही अनुभव है। अनुभव विहीन मानव अपने में स्पष्ट नहीं होता है। प्रत्येक मानव स्पष्ट होने में, से, के लिए निरंतर प्रयासशील है। स्वयं स्पष्ट होना ही समाधान एवं अनुभव पूर्ण प्रकटन है। तत्पर्यन्त मानव संतृप्त नहीं है। सम्यक प्रकार से तृप्ति ही संतृप्ति है। सम्यक प्रकार से तुष्टि ही संतुष्टि है। संतुष्टि का तात्पर्य पूर्णता से है। आद्यान्त प्रकृति में पूर्णता की स्थित तीन ही है वह गठन, क्रिया और आचरण ही

है जो प्रमाण सिद्ध है। पूर्णता त्रय सम्पन्नता ही जीवन में पूर्णता है जो प्रमाण सिद्ध है जो सजगता, सतर्कता एवं अमरत्व है। यही समाधान व प्रतिभा का चरमोत्कर्ष है। यही सहअस्तित्व, समृद्धि, स्वर्ग, मंगल, शुभ है। यही अभ्युदय है जिसके लिए मानव अनादि काल से तृषित है। इसे सर्वसुलभ बनाना ही मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम एवं सफलता है।

''सजगता एवं सतर्कता का प्रकटन अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा के ही रूप में भी दृष्टव्य है।'' तन-मन-धन की सुरक्षा एवं सदुपयोग प्रसिद्ध है। इन तीनों क्रम में धन से तन, तन से मन वरीय है। मन आश्रित तन, मन एवं तन आश्रित धन प्रसिद्ध है। मानसिकता के अनुरूप ही शरीर संचालन और कार्य व्यवहार प्रवृत्ति अर्थ का उपार्जन एवं उपयोग प्रसिद्ध है। मन का तात्पर्य ही विचार से है। संपूर्ण विचार निपुणता, कुशलता और पाण्डित्य ही है। विचार के अभाव में मानव शरीर द्वारा क्रियाकलापों को सम्पादित करने में समर्थ नहीं है। यही संचेतनशीलता है। सुरक्षा एवं सदुपयोग क्षमता सम्पन्न होने के लिए ही दर्शन एवं सहअस्तित्व चिंतन है।

सामाजिकता का अनुसरण आचरण तब तक संभव नहीं है जब तक मानवीयतापूर्ण जीवन सर्वसुलभ न हो जाय। ऐसी सर्वसुलभता के लिए शिक्षा और व्यवस्था ही एकमात्र दायी है, जिसके लिये मानव अनादिकाल से प्रयासशील है। प्रत्येक मानव को सतर्कता एवं सजगता से परिपूर्ण होने का अवसर है, जिसको सफल बनाने का दायित्व शिक्षा एवं व्यवस्था का ही है। सफलता और अवसर का स्पष्ट विश्लेषण ही शिक्षा है। प्रत्येक मानव सही करना चाहता है और न्याय पाना चाहता है साथ ही सत्यवक्ता है। ये तीनों यथार्थ प्रत्येक मानव में जन्म से ही स्पष्ट होते हैं। यही अवसर का तात्पर्य है। इन तीनों के योगफल में भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान की कामना स्पष्ट है। यह भी एक अवसर है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए अवसर का सुलभ हो जाना ही व्यवस्था की गरिमा है। न्याय प्रदान करने की क्षमता एवं सही करने की योग्यता की स्थापना ही शिक्षा की महिमा है।

''मानव संवदेनशीलता वश ही स्व-पर एवं अन्य अनन्यता के मूल रूप का भी अध्ययन करना चाहता है।'' यही सहअस्तित्व का मूल आधार है। (अपरिष्कृत विचार पूर्वक सामाजिकता का निर्वाह संभव नहीं है। अमानवीयता की सीमा में विचार परिष्कृति संभव नहीं है। काम मूलक आर्थिक जीवन में अतिभोग के अतिरिक्त और कुछ सिद्ध नहीं हुआ है। कामुकता ही जीवन सर्वस्व नहीं है।) इसी सत्यतावश मानव जीवन सर्वस्व का अध्ययन करने के लिए बाध्य है। मानव जीवन सर्वस्व चार आयाम दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था सीमानुवर्तीय है।

''संचेतनशीलता का पूर्ण उपयोग समाज में व्यवहार और व्यक्ति में अनुभूति है।'' अनुभव विहीन आचरण पूर्ण नहीं है। मूल्य ही सत्य है। सत्य ही अनुभूति है। सामाजिक मूल्यानुभूति ही अखण्डता का और वस्तु मूल्यानुभूति ही समृद्धि का द्योतक है। वस्तु मूल्यानुभूति के बिना उसका उत्पादन संभव नहीं है। धर्मीयता का अनुभव हो जाना ही मूल्यानुभूति है। वस्तु मूल्यानुभूति ही उत्पादन, समृद्धि में सफलता है। यही आवश्यकता से अधिक उत्पादन की क्षमता है। मूल्यानुभूति में असमर्थता ही उत्पादन में अपूर्णता, सदुपयोग में अक्षमता एवं सुरक्षा में असमर्थता है। परिणामत: दरिद्रता एवं असामाजिकता है। व्यवहार मूल्य के अनुभव में जो अक्षमता है वही संदिग्धता, सशंकता, अविश्वास एवं भय है। फलत: मानव में आतंक, युद्ध एवं असहअस्तित्व है। इससे स्पष्ट होता है कि असामाजिकता के मूल में व्यवहार एवं व्यवसाय मूल्य का अनुभव करने की अक्षमता है। यही आंकलन मानव को मूल्यानुभूति के लिये प्रवर्तित करता है। मूल्यानुभूति ही सामाजिक अखण्डता है, जिसमें संस्कृति सभ्यता एवं विधि व्यवस्था की एकरूपता पायी जाती है। यही मानवीयता का साकार रूप है, जो मानव के लिए चिर प्रतीक्षित तथ्य है। यही सर्वमंगल, शुभ एवं वाँछित घटना है।

27.

सामाजिकता का आधार संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था ही है।

उपलब्धि सहअस्तित्व एवं समृद्धि है। पूर्णता को प्रमाणित करने की प्रक्रिया श्रृंखला ही संस्कृति है, जिसका आचरण ही सभ्यता है। मानव जीवन में पूर्णता का प्रमाण केवल सहअस्तित्व ही है, जिसकी व्यवहारिक सुगमता के लिए समृद्धि की आवश्यकता होती है जो महत्वाकाँक्षा एवं सामान्य आकाँक्षा के अंतर्गत सीमित हैं। संस्कृति के मूल रूप विचार ही है। ये विचार ''तात्रय'' मानवीयता, देवमानवीयता व दिव्य मानवीयता के अर्थ में है। अमानवीय परंपरा सामाजिक नहीं है। असामाजिक आहार, विहार, व्यवहार, जाति, धर्म, भाषा, उत्पादन, उपभोग, वितरण ये सब सहअस्तित्व को सिद्ध करने में समर्थ सिद्ध नहीं हुए हैं। सहअस्तित्व के बिना अखण्ड समाज एवं सामाजिकता नहीं है। उत्पादन परंपरा भी सामाजिकता के लिए है। सामाजिकता का विरोध, विद्रोह एवं आतंक में प्रयुक्त उत्पादन सहअस्तित्व के लिये निषेध है। इसी आंकलन वश इस सीमा में प्रयुक्त सभी शक्तियाँ अनुपयोगी, दुरूपयोगी और निरर्थक सिद्ध हुई साथ ही समाज एवं सामाजिकता के विकास अर्थात् पूर्णता के क्रम में बाधक सिद्ध हुई है। सामाजिकता के बिना मानव परंपरा में सफल अर्थ व्यवस्था नहीं है। सहअस्तित्व में

ही सफलता एवं उसकी निरंतरता है। वर्ग समुदाय में की गई अर्थ व्यवस्था सर्वप्रथम दूसरे वर्ग का दलन, दमन, उन्मूलन करने के लिये बाध्य हो जाती है। यही शोध-प्रतिशोध का कारण एवं सहअस्तित्व की मूल बाधा है। इसका निराकरण मानवीयता पूर्ण अर्थ व्यवस्था ही है।

''संस्कृति का शुद्ध रूप संस्कार सम्पन्न होने की परंपरा है।'' यही पूर्ण शिक्षा है। मानव में संस्कार गुणात्मक परिवर्तन क्रिया परंपरा है। गुणात्मक परिवर्तन जागृति अनुक्रमानुगमन या अनुसरण है। मानव की जागृति अमानवीयता से मानवीयता में, मानवीयता से अतिमानवीयता में स्पष्ट है। क्रम ही परंपरा है। व्यतिक्रम परंपरा नहीं है। व्यतिक्रम का सुधार होना भावी है। व्यतिक्रम सहअस्तित्व को प्रदान करने या सिद्ध करने में समर्थ नहीं है। इसी कारणवश प्रत्येक व्यतिक्रम के स्थान पर क्रमानुषंगीयता को पाने के लिये मानव प्रयासरत है। व्यतिक्रमता ही अमानवीयता है, जो अपराध एवं गलती है। मानवीयता पूर्ण परंपरा में ही प्रणाली, पद्धति एवं नीति पूर्ण प्रक्रिया सिद्ध होती है क्योंकि मानव मानवीयता को स्वीकार करने के लिये प्रवर्तनशील है। मानवीयता विहीन मानव का अपने में विश्वास एवं सम्मान पाना संभव नहीं है। मानवीयता पूर्ण जीवन में ही मूल्यांकन और मूल्यानुभूति होती है। मानवीयता पूर्ण जीवन में ही सहअस्तित्व सिद्ध होता है। यही मानव धर्म सहज सफलता है।

परंपरा किसी लक्ष्य को पाने के लिये किया गया प्रयास है। मानव व्यवहार परंपरा का मूल लक्ष्य सुख, शांति, संतोष एवं आनन्द ही है। इसका व्यवहार प्रमाण ही अभय, सहअस्तित्व, समाधान, समृद्धि है। यही अभयता है, जो समाज की मूल धारणा है। मूल धारणा को पाने के लिये अथवा सफल बनाने के लिये प्रक्रिया प्रभावशील होती है। मानवीयतापूर्ण प्रक्रिया ही लक्ष्य सफलता के लिये एकमात्र शरण है।

संस्कृति परामपरागत उद्‌बोधन, प्रयोजन, प्रोत्साहन, संरक्षण, संवर्धन, परिपालन प्रक्रिया सहित चेतना विकास मूल्य शिक्षा संस्कार है जो अवधारणा पूर्वक संस्कार का आरोपण करती है एवं अनुभव प्रमाण है। यही शिक्षा सर्वस्व है। संस्कार पूर्वक ही प्रवृत्तियों का उदय होता है। प्रत्येक प्रवृत्ति संवेग के रूप में अवतरित होकर क्रियाशील होती है। यही स्वभाव में गण्य होता है। स्वभाव ''तात्रय'' की सीमा में गण्य होता है।

''वर्ग विहीन मानवीयता पूर्ण समाज में संघर्ष का अत्याभाव होता है।'' जागृति और संगठनपूर्वक ही समाज चेतना का परंपरा उदय होता है। संगठन के मूल में पूर्णता की धारणा व अध्ययन होता है। यही अभयता है।

''प्रत्येक समाज के मूल में अखण्डता सहज परंपरा में, से, के लिए स्थापक, ज्ञापक, प्रेरक का रहना अनिवार्य होता है।''

इन्हीं से उस परंपरा के अस्तित्व की महत्ता उसकी अक्षुण्णता के लिये कार्यक्रम उद्‌गमित होता है जो प्रत्यक्ष, परोक्ष आधार पर प्रतिस्थापित होता है। प्रत्यक्ष के स्थूल-सूक्ष्म कारण भेद हैं जो प्रकृति की सीमा है। परोक्ष के रहस्य एवं अरहस्य भेद हैं जो सहअस्तित्व में ज्ञानानुभूति परक हैं। इन्हीं आधारों पर संपूर्ण परंपरायें उद्‌गमित हुई है। प्रत्यक्ष के स्थूल रूप पर आधारित प्रस्तावनाओं से मानव जीवन को पूर्णतया विश्लेषित करना संभव नहीं हुआ है। मानव जीवन स्थूल, सूक्ष्म व कारण का संयुक्त रूप है। रहस्य के आधार पर प्रस्तावित किया गया जीवन दर्शन स्वयं में असंपूर्ण सिद्ध हुआ है। रहस्यता पूर्णता का द्योतक नहीं है। इसी पराभव ने मानव को प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव सिद्ध प्रमाणों पर आधारित जीवन दर्शन से परिपूर्ण होने के लिए बाध्य किया है जिसका विश्लेषण स्पष्ट हो चुका है। परंपरा की स्वीकृति ही प्रतिबद्धता है। स्वस्थ परंपरा केवल मानवीयता पूर्ण सामाजिक होती है। वर्गीय एवं पारिवारीय व व्यक्तिवादी परंपरा संघर्ष एवं व्यक्तिवादिता से मुक्त नहीं है फलत: सामाजिक नहीं है। परंपरा सामाजिक या वर्गीय ही है। वर्गीय चेतना की परंपरा का अखण्डता में परिवर्तित होना संभव नहीं है। वर्ग मान्यता का सीमा से सीमित होना आवश्यक है। सामाजिकता सीमा नहीं अपितु अखण्डता है। प्रतिबद्धताएं संकल्प पूर्ण प्रवृतियों के रूप में प्रकट होती है जो उनके आहार, विहार, आचरण, व्यवहार, उत्पादन, उपभोग, वितरण और दायित्व, कर्त्तव्य निर्वाह के रूप में प्रत्यक्ष होती है। संकल्प में परिवर्तित होना ना होना ही अवधारणा है। ऐसी अवधारणा भास, आभास, प्रतीति पूर्वक ही होती है जबकि धारणा संक्रमण ज्ञानपूर्वक स्वीकृति है जिसे शिक्षा ही स्थापित करती है। **प्रथम शिक्षा माता-पिता, द्वितीय शिक्षा परिवार, तृतीय शिक्षा केन्द्र, चतुर्थ शिक्षा व्यवस्था सहज वातावरण है जिसमें प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन प्रक्रिया भी हैं। यही शिक्षा मानव में अवधारणा स्थापित करती है। फलत: मानव ''तात्रय'' के रूप में अपने आचरण को प्रस्तुत करता है। यही मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता है।**

अवधारणा का स्थापन कार्य जागृत परिवार में जन्म से ही आरम्भ होता है, जागृत मानव परंपरा रूप में युवा अवस्था तक में दृढ़ हो जाता है, प्रौढ़ावस्था में अवधारणा प्रमाण पुष्टि होता है। शैशव व बाल्यावस्था में अवधारणाएं सुलभत: स्थापित होती है। ऐसे समय से ही मानवीयतापूर्ण संस्कृति की स्थापना तदनुरूप शिक्षा दश सोपानीय व्यवस्था में एकरूपता को पा लेना ही अखण्डता की प्रत्यक्ष उपलब्धि है।

मानवीयता पूर्ण परंपरा के मूल में मंगल कामना समायी रहती है। ऐसी उदात्त मंगल कामना व्यवहारानुगमन में सार्थक होता है।

अवधारणा ही संस्कार है। संस्कार विहीन मानव नहीं हैं। संस्कार प्रदाता केवल चार

अवस्था में पायी जाने वाली शिक्षा ही है। इस शिक्षा एवं शिक्षण समुच्चय को मानवीयता से परिपूर्ण किया जाना ही अखण्डता की स्थापना है। यही क्रम अखण्ड सामाजिकता की अक्षुण्णता है। यही सर्वमंगल, शुभ, धर्म की सफलता है।

''मानव में अखण्ड समाज परंपरा 'तात्रय' में ही अभिव्यक्त होता है।'' जागृत मानव सहज अभिव्यक्ति के लिए इससे अधिक कोई वस्तु नहीं है। समाज के लिए सहायक तत्व ही विधि, असहायक तत्व ही निषेध है, जो मानवीयता एवं अमानवीयता की सीमा में स्पष्ट हो चुकी है। प्रत्येक परंपरा भी पूर्णता को पाना चाहती है। किंवा प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण होना चाहता है। पूर्णता के लिए ही गुणात्मक परिवर्तन की संभावना, पद्धति एवं प्रक्रिया पूर्वक स्थिति है। यही संभावना वर्गीय और सामुदायिक मान्यता से मुक्त होने की भी है। उत्कंठा अथवा पीड़ा की पराकाष्ठा के अनन्तर ही प्रत्येक इकाई परिवर्तन में समर्पित हुई है। उत्कंठा ही जिज्ञासा है, पीड़ा अभाव का द्योतक है। जिज्ञासा मूलक पीड़ा अथवा पीड़ा मूलक जिज्ञासा प्रसिद्ध है। इन दोनों का योगफल ही अग्रिमता में संक्रमण है। मानव में पीड़ा प्रतिक्रिया मूलक होना स्वाभाविक है।

28.

जिज्ञासात्मकता सुखी होने के अर्थ में एवं आवेशात्मक क्रियाकलाप के फलस्वरूप पीड़ाएं प्रसिद्ध हैं।

अज्ञात और अप्राप्त के प्रति जिज्ञासायें हैं। जिज्ञासात्मक आवश्यकता ही अनुसंधान की उत्प्रेरणा है। आवेशात्मक पीड़ा सम्मोहन व विरोध के रूप में है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य मूलक है। काम, मद, मोह, लोभ सम्मोहनात्मक; क्रोध व मात्स्र्य विरोधात्मक हैं। औचित्यता के संदर्भ में अनौचित्यता के प्रति प्रतिकारात्मक आवेश का होना पाया जाता हैँ औचित्यता एवं अनौचित्यता मानवीयता पूर्वक नियम त्रय के रूप में निर्धारित हुई हैं।

औचित्यता के प्रति स्वीकृति	–	विकास, गुणात्मक परिवर्तन, परिवर्तन के लिए जिज्ञासा की संभावना
औचित्यता की अस्वीकृति में पीड़ा (समाधान की जिज्ञासा)	–	ह्रास, ऋणात्मक, गुणात्मक परिवर्तन की संभावना
अनौचित्यता की अस्वीकृति ही औचित्यता की अपेक्षा	–	विकास, गुणात्मक परिवर्तन की संभावना

अनौचित्यता की स्वीकृति पीड़ा – ह्रास, ऋणात्मक परिवर्तन की संभावना और अपराध प्रवृत्ति

गुणात्मक परिवर्तन ही धनात्मक परिवर्तन है। जागृति ही धनात्मक परिवर्तन है। जागृति पूर्णता में, से, के लिए ही है। प्रत्येक मानव पूर्णता से सम्पन्न होना चाहता है। मानव में, से, के लिए पूर्णता केवल क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता ही है। अनुचित अर्थात् अमानवीयतावादी पद्धति व प्रक्रिया से पूर्णता सिद्ध नहीं हुई है। प्रत्येक मानव जन्म से वर्ग विहीन है, समुदाय विहीन है, सम्प्रदाय विहीन है, साथ ही उसमें सफलता एवं पूर्णता से सम्पन्न होने की पीड़ा समाहित रहती है। पीड़ा के बिना संक्रमण व्यतिक्रमण (ह्रास) सिद्ध नहीं हुआ है। सम्यकता की ओर प्रवेश ही संक्रमण है। लक्ष्य के विपरीत दिशा में गति ही व्यतिक्रमण है। कोई मानव अनौचित्य और व्यतिक्रमण के पक्ष में नहीं है। प्रत्येक मानव आचरण, क्रिया एवं व्यवहार में सफलता तथा समाधान पूर्ण पद्धति से उत्पादन, उपभोग, वितरण प्रक्रिया सम्पादित करना चाहता है। जिसके लिए ही प्रत्येक मानव शिक्षा एवं व्यवस्था में समर्पित होता है। शिक्षा एवं व्यवस्था से समाधान का न मिलना ही अविश्वास अवाँछनीय बाध्यताएं हैं। फलतः संघर्ष एवं युद्ध है।

29.

मानव में न्यायापेक्षा, सही करने की इच्छा और सत्य वक्ता होना जन्म से ही दृष्टव्य हैं।

जन्म के अनन्तर वर्ग, जाति, मत, सम्प्रदाय का आरोपण होता है। शुद्धतः प्रत्येक संतान केवल मानव संतान है। इसमें मानव से अतिरिक्त जाति, मत, संप्रदाय, वर्ग, बोध को उनके माता-पिता परिवार तथा प्रतिबद्ध समूह प्रस्थापित करते हैं जो एक पारम्परिक प्रक्रिया है। वह वर्ग सीमा से अधिक नहीं हैं। शैशवावस्था से ही तदाकार वृत्ति होती है। फलतः विभिन्न जाति, मत, सम्प्रदाय, धर्म, वर्ग को मानता है। फलतः उसी सीमा में स्व-अस्तित्व को मानता है। यह मान्यता उसको उस वर्ग के सीमावर्ती कार्यकलाप, आचरण, व्यवहार में प्रवृत्त होने के लिए बाध्य करता है। यह बाध्यताएं तब तक रहेगी जब तक किसी विशेष घटनावश उसमें विशिष्ट परिवर्तन न हो जाये। विशिष्टता का तात्पर्य मानवीयता एवं अतिमानवीयता पूर्ण जीवन में स्थिति को पा लेने से है। ऐसा व्यक्ति जिस परंपरा से उद्‌गमित हुआ रहता है उसी परंपरा में उसकी विशिष्टता एवं शिष्टता का समावेश करने के लिए प्रयास करता है। पहले से ही वह परंपरा किसी सीमा से सीमित रहने के कारण अनुभवमूलक तत्वों का समावेश करने में

असमर्थ होकर उस व्यक्ति या व्यक्तित्व को एक आर्दश के रूप में वह परंपरावादी जनजाति स्वीकारता है। फलत: वह आर्दश एक स्मारक रूप में परिणत हो जाता है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ग विहीन परंपरा को वहन करने के लिए मानवीयता के अतिरिक्त कोई भी उपाय परंपरा समर्थ नहीं हुआ है। उसका साक्ष्य केवल वर्ग संघर्ष एवं युद्ध ही है।

जो जिस मूल्य को अवधारणा में स्वीकारता है, उसी के अनुरूप उसमें स्वभाव का अवतरण होता है। मानवीय स्वभाव सिद्धि के लिये ही अवधारणाओं की स्वीकृति होती है। इसी प्रक्रियावश मानव जिस मूल्य को स्वीकार कर लेता है उसी मूल्य में, से, के लिए प्रस्तुत होता है। उन्हीं मूल्यों की अनुकूल सीमा तक अपनत्व को स्थापित करता है। उसी को सर्वस्व एवं सर्वश्रेष्ठ मान लेता है। यही वर्ग प्रतिष्ठा है। ऐसी सविरोधी वर्ग प्रतिष्ठाएं संघर्ष के लिए उत्प्रेरित होती है। प्रत्येक व्यक्ति का स्वविवेक से मानवीयता पूर्ण होना संभव नहीं हुआ है। जन्म से प्रत्येक व्यक्ति में कोई वर्ग प्रतिष्ठा नहीं रहती है, वर्ग सीमा में सीमित होने के अनन्तर स्वविवेक में सीमित होना पाया जाता है। इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए जागृत परंपरा और शिक्षा का सुलभ होना आवश्यक है। तभी अखण्ड सामाजिकता, सहअस्तित्व सिद्ध होता है।

वर्गीयता को मानवीय चेतना में परिवर्तित करना मानव कुल के लिए वांछित घटना एवं अभीष्ट है। प्रत्येक स्थिति में मानव संस्कृति एवं सभ्यता की एकात्मकता ही इसका एक मात्र व्यावहारिक रूप है। इसे समृद्ध बनाने योग्य शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति की स्थापना ही मूल प्रक्रिया है, इसकी समानत: सभी व्यवस्था संस्थाओं में अर्थात् राज्यनैतिक एवं धर्मनैतिक में समान रूप हो जाना ही अभ्युदय है। यही व्यवहारिक समाधान का प्रमाण है। अनेक धर्म के स्थान में मानव धर्म का, अनेक जाति के स्थान पर मानव जाति का, अनेक राष्ट्र के स्थान पर अखण्ड समाज और भूमि का, रहस्यात्मक अनेक ईश्वर के स्थान पर व्यापक सत्ता रूपी ईश्वर का पूर्णतया बोध कराने वाली पद्धति से वर्गीयता मानवीय चेतना में परिणित होती है। यही व्यक्ति के जीवन में सार्वभौमिक आचरण, परिवार में सहयोग, समाज में प्रोत्साहन, राष्ट्र में संरक्षण-संवर्धन, अंतर्राष्ट्र में अनुकूल परिस्थितियाँ है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है, यही समृद्धि एवं समाधान है।

30.

मानव में अखण्डता के लिए मानवीयता ही एकमात्र शरण है।

मानवीयता ही मानव समाज की धर्मीयता (समाधान) है। धर्मीयता विहीन इकाई नहीं है। रूप, गुण स्वभाव ही धर्मीयता में आश्रित हैं। यह प्रत्येक अवस्था में दृष्टव्य है। पदार्थावस्था में रूपवत्ता पूर्वक अस्तित्व धर्मीयता; प्राणावस्था में रूप गुणवत्ता पूर्वक पुष्टि धर्मीयता; जीवावस्था में रूप, गुण स्वभाववत्ता सहित जीने की आशा धर्मीयता; ज्ञानावस्था में रूप, गुण, स्वभाव धर्मवत्ता की सुख धर्मीयता प्रसिद्ध है। मानव जीवन का आद्यान्त मूल्य ही धर्म है। यही अनुभव क्षमता है। अनुभव केवल मूल्यों में, से, के लिए ही होता है। मूल्यानुभूति योग्य क्षमता के आधार पर ही अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा का निर्णय होता है। यही पोषण, शोषण, न्याय, अन्याय, उचित, अनुचित, सार्थक, असार्थक, सफलता, असफलता का निर्णय करने की क्षमता है। अनुभव का मूल आधार मानवीय मूल्य ही है। मानवीय मूल्य ही स्थापित एवं शिष्ट मूल्य है। जिसमें ही वस्तु मूल्य का समर्पित होना पाया जाता है। यही सफलता न्याय एवं अखण्डता का एकमात्र आधार है।

धर्म सफल जीवन को पाने के लिए मानव का सुसंस्कारपूत होना अनिवार्य है। सुसंस्कार गुणात्मक जागृति का द्योतक है। संस्कार विहीन मानव नहीं है। **पूर्णता के प्रति प्राप्त प्रयासोदय ही सुसंस्कार है।** मानवीयता एवं अतिमानवीयता ही सुसंस्कारों की आद्यान्त सीमा है। यही सुसंस्कार क्रिया एवं आचरण पूर्णता में परिणित होता है। यही गुणात्मक जागृति है। मानवीयता पूर्ण जीवन में ही आद्यान्त क्रियाकलाप मंगलमय होता है। क्योंकि इस जीवन में अनिष्ट चिंतन संभव नहीं है। अनिष्ट चिंतन के लिए विरोध का होना आवश्यक है। **मानवीयता पूर्ण सामाजिक जीवन में परस्परता में मानव का निर्विषम होना सर्वप्रथम उपलब्धि है।** यही स्वर्गीयता का प्रथम सोपान है। विश्वास का आधार है। वर्ग वाद के बिना मानव-मानव में विषमता का होना संभव नहीं है। वर्गीयता सामाजिकता का लक्षण नहीं है।

मानव के लिए ह्रास पूर्वक सहअस्तित्व, भय पूर्वक मंगलमयता को पाना संभव नहीं है। अमानवीयता पूर्वक मानव में ह्रास का प्रकाशन है अथवा अमानवीयता ही ह्रास का द्योतक है। इसलिए सर्वशुभ और मंगलमयता को पाना संभव नहीं है। इसका निराकरण केवल जागृति का अनुसरण ही है। परंपरा और परस्परता ही संस्कार परिवर्तन का एक सशक्त कारण है। संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था का ध्रुवीकरण (स्थिरता) मानवीयता पूर्ण में, से, के लिए ही है। पूर्णता में स्पष्ट अर्थात् यथावत् विचार-व्यवहार परंपरा ही उत्थान का प्रत्यक्ष रूप है। गुणात्मक परिवर्तन के लिए प्राप्त प्रयोग अथवा प्रेरणा परंपरा ही संस्कारीयता है। सार्थक

विचार के मूल में संस्कार का होना पाया जाता है। विचार की मूल प्रेरणा संस्कार है। संस्कार ही इच्छा व संकल्प के मूल में रहता है। अवधारणा बुद्धि में होती है, यही निष्ठा एवं संकल्प है। अवधारणा के पूर्व भास, आभास, प्रतीति होती है जो क्रम से मन, वृत्ति, चित्त में होती है। आत्मा में अनुभव होता है। यही चैतन्य जीवन है। यह प्रत्यावर्तन क्षमता पर्यन्त गुणात्मक जागृति के लिए प्रवृत्त है। इसी प्रेरणा वश मानव क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता को पाने के लिए चिरकाल से इच्छुक है। इसकी सफलता मानवीयता एवं अतिमानवीयता की सीमा में ही पाई जाती है।

सुसंस्कृति के आधार पर सुसंस्कारों का उदय घटनाओं में, से, के लिए सम्बद्ध है। प्रत्येक घटना प्रेरणादायी है। मानव में ही वातावरणस्थ क्रियाओं अर्थात् घटनाओं की संकेत ग्रहण एवं प्रसारण क्षमता प्रसिद्ध है। मानव जड़-चैतन्य का संयुक्त साकार रूप है। उसमें से जड़ शरीर का जन्म और मृत्यु स्पष्ट है। चैतन्य पक्ष का अमरत्व स्थापित सत्य है। गठन पूर्णता के अनन्तर प्रस्थापन एवं विस्थापन संभावना समाप्त हो जाती है। यही अमरत्व का प्रधान लक्षण है। मृत्यु घटना रासायनिक एवं भौतिक परिवर्तन ही है। गठन पूर्ण इकाई में उक्त दोनों प्रकार के परिवर्तन नहीं है, यही जीवन की प्रारंभिक स्थिति है। जीवन पूर्णता सजगता एवं सतर्कता में सम्पन्न होती है।

वातावरण से संस्कार में परिवर्तन योग्य जो प्रक्रियायें होती हैं वे इकाई के साथ होने वाली घटनाओं पर निर्भर करती है।

प्रत्येक मानव के जीवन में घटने वाली घटनायें गर्भ, जन्म, नामकरण, शिक्षा, दीक्षा, विवाह एवं मृत्यु के रूप में दृष्टव्य हैं। ये प्रत्येक घटनायें मानव में संस्कारों का निर्माण करती हैं अर्थात् मूल प्रवृत्तियों में परिवर्तन को स्थापित करती है। प्रत्येक मानव गर्भावस्था से ही संस्कार पूत होने के लिये प्रवृत्त है। जीवन एवं जीवन गति में संस्कार ही प्रत्यक्ष होता हुआ देखा जाता है। जीवन परिष्कृति के लिये संस्कारों में गुणात्मक परिवर्तन आवश्यक एवं अनिर्वाय है। गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक ही क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता सिद्ध होता है। सुसंस्कार परिचय इसी सीमा में चरितार्थ होता है जिसके लिए प्रत्येक मानव प्यासा है। ये सुसंस्कार अर्थात् मानवीयता एवं अतिमानवीयतापूर्ण जीवन प्रदायी प्रेरणा परंपरा ही मानवीय संस्कृति है, जो मानव से मानव को परंपरात्मक पद्धति से उपलब्ध होती है। उक्त सभी घटनाओं में प्रेरणा प्रदायी प्रक्रिया ही संस्कृति का आद्यान्त कार्यक्रम है। इसी अर्थ सिद्धि के लिए ऐतिहासिक स्मरण एवं कला प्रदर्शन भी सहायक है। यही जीवन की चरितार्थता है।

''**सफलता ही चरितार्थता है।**'' व्यक्ति में सफलता चारों आयामों के एकसूत्रता पूर्ण कार्यक्रम में हैं। फलत: समाधान एवं समृद्धि है। सामाजिक सफलता दश सोपानीय व्यवस्था

की एकात्मकता है। फलतः सहअस्तित्व एवं अभयता है।

ये सर्ववांछित सफलताएं मानव में सुसंस्कार पद्धति प्रणाली एवं प्रक्रिया से होती है।

सुसंस्कारों का मूल मूर्त रूप आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभव सहज क्रियाकलाप ही है। यही अनुभव पूर्वक अर्थात् अनुभव मूलक होकर मानवीयता पूर्ण व्यवहार में अवस्थित होता है। अनुभूति केवल मूल्य में, से, के लिये ही है। ''मूल्य त्रय'' से अधिक और कोई वस्तु व्यवहारिकता को प्रकट करने के लिए नहीं है। मूल्य त्रय अनुभूति ही व्यवहारिकता को सिद्ध करती है। यही प्रमाण है। मूल्यानुभूति योग्य क्षमता निर्माण में सहायक होना ही संस्कृति का शुद्ध रूप है। मूल्यानुभूति ही मानव जीवन का लक्ष्य है। अनुभव विहीन क्षमता ही अजागृति है। यही असामाजिकता है। मूल्य त्रयानुभूति योग्य क्षमता पर्यन्त मानव सामाजिक सिद्ध नहीं होता, जबकि प्रत्येक मानव सामाजिकता से परिपूर्ण होने के लिए तृषित एवं इच्छुक है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक मानव या मानव जाति मानवीयता से परिपूर्ण होने की जो चिराकाँक्षा है उसके योग्य संस्कार अर्थात् संस्कृति से सम्बद्ध होने के लिए बाध्य है जिसका प्रत्यक्ष रूप मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था है।

सांस्कृतिक विषमता ही प्रधानतः सामाजिक विषमता है। यही परिणामतः वर्ग एवं संघर्ष है। इससे मुक्त होने के लिए मानवीयता ही एकमात्र शरण है। मानवीयता में ही समस्त प्रकार के वर्ग वाद विलीन होती हैं। मानवीयता के बिना मानव सफल नहीं है। सफलता ही जीवन का लक्ष्य है। जीवन परंपरा अर्थात् संस्कृति में मानवीयता का समावेश होना ही सर्वमंगल एवं नित्य शुभोदय है।

''**विकास योग्य कार्यक्रम से सम्पन्न होना ही गुणात्मक परिवर्तन है।**'' यही मूल प्रवृत्तियों में विशिष्टता की स्थापना है। मूल प्रवृत्तियों की परावर्तन प्रक्रिया ही व्यवहार एवं उत्पादन में मधुरता है। चैतन्य क्रिया में ही भास, आभास, प्रतीति, अवधारणा एवं अनुभूति होती है न कि जड़ क्रिया में। अनुभव योग्य क्षमता का निर्माण ही गुणात्मक परिवर्तन की क्रमोपलब्धि है। अनुभव के बिना व्यवहार कुशल होना नहीं पाया जाता। उत्पादन में भी अनुभव रहता है। व्यवहार में अनुभव प्रधान है। सभी मूल्य अनुभव में ही प्रमाणित हैं। अनुभव प्रमाण ही क्रम से व्यवहार एवं प्रयोग में उद्घाटित होता है। अनुभव पूर्वक उद्घाटन (व्यवहारिक एवं उत्पादन विनिमय) पूर्णतया सामाजिकता, सर्वदा समृद्धि एवं समाधान है। यह जागृति पूर्वक प्रमाणित होता है।

भ्रांत पद चक्र से देव पद चक्र में संक्रमित होते समय मानव के संक्रमण का आधार केवल मानवीयता पूर्ण संस्कार व संस्कृति ही है। मानवीयता से परिपूर्ण हो जाना ही देव पद

चक्र में अवस्थिति है। इस अवस्थिति के अनन्तर ही मानवीय सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था सहज निरंतरता है। यही सर्व स्वर्गीयता है। इसे पाने के लिये ही अशेष मानव आतुर-कातुर एवं आकुल-व्याकुल है। इसे सफल बनाने की दिशा में प्रथम शिक्षा, द्वितीय विधि, तृतीय व्यवस्था, चतुर्थ संस्कृति एवं सभ्यता का प्रमाण ही मानवीय संस्कृति की स्थापना है। मानवीय संस्कृति की स्थापना ही देव पद चक्र में संक्रमण पूर्वक पद स्थिति है। इससे सुस्पष्ट हो जाता है कि मानव प्रबुद्धता पूर्वक ही मानवीयता एवं अतिमानवीयता को सहज सुलभ कर लेता है। यही जागृति की गरिमा, नियति की अक्षुण्णता है। यही जीवन में सफलता है।

''भ्रांतिपद चक्र में समस्या का अभाव नहीं है।'' समस्यायें मानव की वांछित उपलब्धि नहीं है। समस्याएं समृद्धि की द्योतक नहीं है। भ्रांत पद चक्र में मानव का परिवर्तन शक्तियों के अपव्यय पूर्वक ह्रास होने में भावी है। फलतः जीवावस्था में अवस्थित होना होता है। भ्रांति पद चक्र में जीवन विकास क्रम पूर्वक भ्रांत मानव पद को प्राप्त करता है। यही भ्रांत मानव ह्रास पूर्वक जीव पद को पा लेता है। यही भ्रांति पद चक्र का तात्पर्य है। इस चक्र पर्यन्त जीवन में समाधान, सतर्कता, सामाजिकता, अभयता एवं समृद्धि सिद्ध नहीं होती है क्योंकि अपव्ययता के कारण कितनी ही संपत्ति क्यों न हो उसमें समृद्धि का भाव नहीं होता है जबकि अभावता मानव के लिये वांछित तथ्य नहीं है। अभाव को भाव में परिवर्तित करने के लिए प्रत्येक मानव का अजस्र प्रयास है। यह प्रयास मानवीयता पूर्वक ही सफल होता है। भ्रांति पूर्वक सदुपयोग सिद्ध होना संभव नहीं है। साथ ही मानवीयता सहज विधि से अपव्यय सर्वथा असंभव है। सद्व्ययता ही अभाव का अभाव है। अभाव का अभाव ही चिरवांछित संतोष है। सम्यकता का तात्पर्य पूर्ण तोष से है। पूर्ण तोष ही पूर्ण तृप्ति है जिसमें संशय, विपर्यय एवं भय का अत्याभाव है। भ्रांतिपद चक्र में संतोष होना संभव नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव का मानवीय संस्कृति, विधि, व्यवस्था पूर्वक देवपद चक्र में संक्रमित एवं प्रतिष्ठित हो जाना ही समस्या से मुक्ति और समाधान परिपूर्णता है। यही इस पृथ्वी पर होने वाली स्थायी उपलब्धि है। प्रकृति के अंतर्गत इस पृथ्वी के विकास क्रम में वर्तमान बिन्दु जो वास्तविकता को स्पष्ट कर रही है वह केवल मानव को देवपद चक्र में संक्रमित होने के लिए संकेत है क्योंकि मानव सामान्य एवं महत्वाकाँक्षाओं से संबंधित समस्त साधनों से सम्पन्न हो चुका है। जड़ प्रकृति के उपयोग क्रम में उसकी गति निरंतरता मानव को प्राप्त हो चुकी है। इन उपलब्धियों की सदुपयोगिता मानवीयता पूर्ण सामाजिकता एवं व्यवहार में सिद्ध होती है। जिसकी पूर्ण संभावना अविरत बनी हुई है।

''जो जिसका अपव्यय करेगा वह उससे वंचित हो जायेगा।'' यह सिद्धान्त स्वयं इस स्थिति को स्पष्ट कर रहा है कि सद्व्ययता की सीमा में ही प्राप्त उपलब्धियों की अक्षुण्णता

रहेगी अन्यथा में, से, के लिए उससे वंचित होने अवश्यम्भावी है। यह सत्यता मानव को उत्प्रेरित करती है कि उपलब्धि एवं उपलब्धि के स्रोत अस्त होने के पहले उसे अनुस्यूत बनाये रखने के लिए तत्पर हो जाए। यह तत्परता केवल देव पद चक्र में ही सफल होती है। इसी में समाधान समृद्धि पूर्वक सत्यता की अनुभूति प्रमाणित होती है। अनुभूति मूलक जीवन ही मानव का चिरवांछित जीवन है। भ्रांति पर्यंत अनुभव संभव नहीं है। अनुभव ही जीवन का वरीयतम आयाम है जिस में, से, के लिए अन्य तीनों आयाम अर्थात् विचार, व्यवहार एवं उत्पादन अनुभव से ही संचालित होना अभ्युदय है। अस्तु, मानव जीवन के कार्यक्रम को मानवीयता पूर्वक दश सोपानीय व्यवस्था में आत्मसात् कर लेना ही सर्वमंगल, शुभ, समाधान, समृद्धि, सहअस्तित्व एवं अभय है।

31.

मानवीयतापूर्ण जीवन में, से, के लिए सुसंस्कारों का अभाव नहीं है।

गर्भ संस्कार से ही मानव में संस्कार प्रक्रिया आरंभ होती है। गर्भावस्था में गर्भवती द्वारा किया गया धीरता, वीरता और उदारतापूर्ण एवं दया, कृपा, करूणा पूर्ण संभाषण एवं आचरण गर्भस्थ शिशु में उत्तम संस्कारों का कारण होता है। गर्भवती द्वारा किये गए व्यक्तित्व के स्मरण एवं आचरण गर्भस्थ शिशु में सुसंस्कारों के कारण होते हैं। गर्भवती में पायी जाने वाली सौम्यता, सरलता, पूज्यता, सौजन्यता, अनन्यता, सहजता, उदारता, सौहार्द्रता एवं निष्ठा पूर्ण आचरण गर्भगत शिशु में सुसंस्कारों का कारण होता है। गर्भवती द्वारा कृतज्ञता, श्रद्धा, गौरव, प्रेम, वात्सल्य, विश्वास, स्नेह, ममता एवं सम्मान की अनुभूतियाँ गर्भगत शिशु में सर्वोच्च संस्कारों का निर्माण करती है। गर्भ से संस्कारपूत शिशु में जन्म और जन्म के अनंतर सुसंस्कारों को ग्रहण करने में सुगमता होता है। गर्भवती के आहार, विहार, व्यवहार की संयमता गर्भगत शिशु में वरिष्ठ संस्कारों को प्रदान करती है। गर्भावस्था में शिशु में प्राण व रस का संचालन एवं पूर्ति गर्भवती के शरीर के क्रियाकलाप पर आधारित है। यही गर्भस्थ शिशु का वातावरण है। वातावरण का दबाव स्वाभाविक है। वातावरणस्थ क्रिया का संकेत प्रसारण प्रदायिता सहित प्रक्रिया ही वातावरण का दबाव है। चैतन्य क्रिया में वातावरणस्थ क्रियाओं के संकेत ग्रहण एवं प्रसारण प्रक्रिया को पाया जाता है। गर्भस्थ शिशु के शरीर के साथ चैतन्य क्रिया का होना स्वाभाविक है। अस्तु, गर्भस्थ शिशु का वातावरण शुभद होने के लिए जो निश्चित पद्धति वर्णित है उसके विपरीत अर्थात् अमानवीयता पूर्ण जीवन यापन पूर्वक सुसंस्कारपूत संतान को पाना संभव नहीं है।

''जन्म समय में भी संस्कारों का अभाव नहीं है।'' अर्थात् स्वीकृतियों का अभाव नहीं है। चैतन्य इकाई में ही संस्कारों का होना पाया जाता है। सुसंस्कार ही गुणात्मक परिवर्तन के लिए मूल तत्व है। कुसंस्कार ह्रास के लिए कारण होता है। सुसंस्कारीयता विहीन पद्धति से जागृति में संक्रमित होना संभव नहीं है। जागृति के लिए प्रत्येक मानव इकाई बाध्य है। इस सत्यतावश मानव जागृति योग्य संस्कारीय कार्यक्रम को अपनाने के लिये विवश है। अस्तु, मंगलमय कामनापूर्ण वातावरण का जन्म समय में निर्माण करने से, कोलाहल विहीन वातावरण को बनाए रखने से सुगम प्रकाश, सुखद वायु, मधुर संभाषण की व्यवस्थिति का निर्माण करने से जन्म समय में उत्तम संस्कार स्थापित होता है।

''नामकरण संस्कार प्रसिद्ध है।'' नाम विहीन मानव नहीं है। नामकरण व्यवहार के लिए एक अनिवार्यतम घटना है। नामकरण प्रक्रिया में माता-पिता के अतिरिक्त अन्य कुटुम्ब परिवार बन्धुओं की सम्मति रहती है। जो स्वयं में एक ज्ञापन प्रक्रिया है। इस सम्मति के साथ ही शुभ कामना का होना पाया जाता है। स्वयं के संबोधन के लिए नामकरण प्रक्रिया है। शुद्धत: मानव का मूल रूप चैतन्य क्रिया है। चैतन्य क्रिया के साथ स्थूल शरीर का संयोग होना ही जन्म घटना होती है। इसी मूल कारणवश नामकरण परंपरा है। शिशु के नामकरण के समय में शुभकामनाएं एवं वातावरण सहायक तत्व है। शुभकामनाएं एवं वातावरण परस्पर सुखप्रद होता है, जो प्रत्यक्ष है। प्रधानत: चैतन्य क्रिया को इंगित कराने वाला नाम शुभद होता है। अन्ततोगत्वा स्वयं के बोध एवं अनुभव में ही नाम चरितार्थ होता है। यह देखा जाता है कि नामकरण के कुछ समय पश्चात् ही शिशु उस नाम के साथ स्वयं के संबोधन को स्वीकारता हुआ देखा जाता है, जो सर्वविदित तथ्य है। यह सत्यता स्पष्ट करती है कि तादात्म्य तदाकार योग्य-योग्यता शैशवावस्था से ही समायी रहती है। पूर्ण स्वीकृति ही अनन्यता है, जो प्रत्येक मानव के नाम में स्पष्ट होती है। जो परम विशिष्ट प्रक्रिया है। यही अनुभव क्षमता का द्योतक है, और संकेतग्राही क्षमता का लक्षण है। यही क्रम से शिष्टता को प्रकट करने का मूल तत्व है। इस अनन्यता योग्य क्षमता को शुभ नाम संबोधन उद्दीप्त करता है अर्थात् प्रखर बनाता है। अनन्यता ही प्रधान शिष्टता है, जो प्रेम को अभिव्यंजित करने में समर्थ है। प्रेम ही जीवन में पूर्ण मूल्य है। प्रेममयता ही अभयता का अनुभव है। यह संबोधन क्रम से स्थापित संबंधों को ज्ञात कराता है। प्रत्येक संबंध में स्थापित मूल्य प्रसिद्ध है। प्रत्येक संबंध की चरितार्थता केवल अभयता एवं अनिवार्यता ही है। जो जीवन का लक्ष्य है। प्रत्येक चैतन्य इकाई जीवन घटना में लक्ष्य को साधना चाहती है। इसी महत्वपूर्ण भूमिका का आरम्भ नामकरण से होता है। अस्तु, मानवीयता का प्रबोधन उद्बोधन करने का आधार भी नाम ही है। जीवन में प्रमाण सिद्धि या प्रमाणिकता को उद्दीप्त एवं प्रकट करने के लिए आधार केवल नाम ही है। नामकरण संस्कार जीवन सहज कार्यक्रम में एक कड़ी है।

''**मानव जीवन में गुणात्मक जागृति के लिए शिक्षा-संस्कार प्रसिद्ध है।**'' गुणात्मक विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करने का कार्यक्रम पद्धति नीति, वस्तु, विषय, प्रणाली एवं प्रक्रिया ही मानव जीवन में शिक्षा-संस्कार का प्रत्यक्ष रूप है। यह क्रम से माता-पिता, परिवार, संपर्क, संबंध, शिक्षा मंदिर, शिक्षा संस्थान एवं मानवकृत वातावरण से सम्पन्न होता है। प्रत्येक मानव जन्म से जाति एवं वर्ग विहीन है। शिक्षा पूर्वक ही उसमें वर्गीय, जातीय संस्कारों को स्थापित किया जाता है, जो मानवता के लिए वांछित घटना नहीं है। इसका विकल्प अर्थात् मानवीयता पूर्ण संस्कृति एवं सभ्यता का अप्रचुर होना ही ऐसी अवांछित घटना के लिए विवशताएं हैं। इसका निराकरण मानवीयतापूर्ण जीवन चित्रण एवं मानवीय चेतना की परंपरा ही है, जो शुद्धत: मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता में विलीन होती है। गुरू मूल्य में लघु मूल्य का विलय होना पाया जाता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक विद्यार्थी में क्रम से शैशव, बाल एवं किशोरावस्था से ही माता-पिता, परिवार, शिक्षा मन्दिर, शिक्षा संस्थान, व्यवस्था-पद्धति, प्रचार, प्रकाशन, प्रदर्शन समुच्चय द्वारा मानवीयता पूर्ण जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम को उद्‌बोधन-प्रबोधन कराने वाली प्रक्रिया परंपरा ही वर्ग विहीन चेतना को प्रस्थापित करने का एकमात्र उपाय है। यही मानवीय संस्कृति का मौलिक देय है। संस्कृति एवं सभ्यता से संबद्ध शिक्षा सर्वसुलभ न होने से अखण्ड सामाजिकता में प्रत्येक व्यक्ति के भागीदार होने की संभावना नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि इसका सर्वसुलभ होना अनिवार्य है। यही शिक्षा-संस्कार की गरिमा, महिमा एवं जीवन में अविभाज्यता है।

शिक्षा में प्रधानत: मानव की परस्परता में निहित स्थापित एवं शिष्ट मूल्य का प्रबोधन है साथ ही वस्तु मूल्यों का शिक्षण भी। स्थापित एवं शिष्ट मूल्य की पूर्ण स्वीकृति एवं अनुभूति ही प्रबुद्धता का प्रत्यक्ष रूप है, जो व्यवहार में प्रमाणित होता है। व्यवहार में केवल स्थापित मूल्य का निर्वाह एवं शिष्ट मूल्य का प्रकटन होता है। यही मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता की चरितार्थता है। इसके अभाव की स्थिति में कितने भी विशाल वस्तु मूल्य की उपलब्धि एवं योग्यता का उपार्जन करने पर भी सामाजिकता की सिद्धि होना संभव नहीं है। मानवीयता की सीमा में ही सामाजिकता सिद्ध होती है। सामाजिकता से ही सुसंस्कृति की अक्षुण्णता होती है। यही सत्यता प्रत्येक मानव को प्रत्येक स्तर एवं स्थिति में अमानवीयता से मानवीयता, मानवीयता से अतिमानवीयता पूर्ण जीवन में प्रबोधन पूर्वक संक्रमित होने के लिए बाध्य की है। यही उदय एवं जागृति का प्रधान लक्षण है।

धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा एवं करूणा पूर्ण स्वभाव से अभिभूत होकर व्यवहार में आरूढ़ होने के लिए प्रदान की गई शिक्षा एवं सम्मान, आदर एवं पुरस्कार पूर्वक सम्पन्न की गई प्रक्रिया ही मानव जीवन में उपादेयी सिद्ध हुई है। शिक्षा के माध्यम से ही श्रेष्ठ

संस्कारों की स्थापना होती है। न्यायान्याय, धर्माधर्म एवं सत्यासत्य पूर्ण दृष्टियों की सक्रियता पूर्वक सुयोजित पद्धति प्रक्रिया सहित व्यवहार एवं आचरण करने की क्षमता एवं आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने योग्य योग्यता को प्रबोधन पूर्वक व्यवहृत करने योग्य स्थिति, परिस्थितियों का निर्माण कर देने पर सर्वश्रेष्ठ संस्कारों की स्थापना होती है। वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेषणा एवं भ्रम मुक्ति के संदर्भ में किया गया प्रबोधन सर्वोत्तम संस्कारों को स्थापित करता है। मानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं कर्माभ्यास पूर्ण उत्पादन शिक्षा-संस्कार से विद्यार्थियों में अभ्युदय अवश्यंभावी होता है। फलतः मूल्य के अनुभव योग्य क्षमता प्रकट होती है। ऐसी संस्कार प्रक्रिया ही मानवीयता को व्यवहार रूप में साकार रूप प्रदान करती है। मूल्य व लक्ष्य तंत्रित राज्यनीति एवं धर्मनीति के प्रबोधन से श्रेष्ठ संस्कार स्थापित होते हैं। इसी से वर्ग विहीन एवं सम्प्रदाय विहीन संस्कारों की स्थापना होती है। प्रत्येक मानव में तन, मन, धनात्मक अर्थ प्रसिद्ध है, जिसके सदुपयोग एवं सुरक्षा की कामना मानव मात्र में समान है। सदुपयोगात्मक नीति में धर्मनीति एवं सुरक्षात्मक नीति ही राज्यनीति है। ऐसी धर्मनीति एवं राज्यनीति में भ्रम की संभावना नहीं है। निर्भ्रमता ही चैतन्य जीवन में सक्षमता का द्योतक है। धर्मनीति की परम्परा ही अन्ततोगत्वा संस्कृति एवं सभ्यता है और राज्यनीति ही विधि एवं व्यवस्था नीति है जो संस्कृति एवं सभ्यता की संहिता है। यही व्यवस्था एवं शिक्षा का आधार है तथा आयाम चतुष्टय की एकात्मकता है। मानव संस्कृति की एकात्मकता के बिना अखण्ड सामाजिकता संभव नहीं है। संस्कृति का मूल उद्देश्य ही है सामाजिक चेतना का विस्तार करना। यही मानव चेतना सभ्यता से स्पष्ट होती है। मानवीय संस्कृति अखण्ड सामाजिकता को प्रस्थापित करने के लिये एकमात्र उपाय है। मानवीयता पूर्ण संस्कृति का शिक्षा प्रणाली में समावेश हो जाने से ही अखण्ड सामाजिकता की स्थापना होती है। जिससे सहअस्तित्व सिद्धि एवं उसकी अक्षुण्णता के लिए समुचित संस्कारों की स्थापना विद्यार्थियों में होती है। उन्नत संस्कार पूत बनाना ही शिक्षा का प्रत्यक्ष देय है। मानवीय संस्कृति पूर्ण शिक्षा से व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलित प्रयोग योग्य संस्कार की स्थापना होती है। मानवीयता पूर्ण शिक्षा से ही धीरता, वीरता एवं उदारता पूर्ण व्यवहार एवं आचरण का प्रकट होना स्वाभाविक है, जिससे ही आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को उन्मूलन करने योग्य संस्कारों की स्थापना होती है। मानवीयता पूर्ण संस्कृति सभ्यता से सम्बद्ध शिक्षा पद्धति, प्रणाली एवं नीति से बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि योग्य संस्कारों की स्थापना होती है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति की शिक्षा से ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान एवं स्नेहात्मक मूल्यों का अनुभव करने योग्य संस्कारों की स्थापना होती है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति के अनुसरण योग्य सौम्यता, सरलता, पूज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, उदारता, सौहार्द्रता एवं निष्ठात्मक शिष्टता को अभिभूतता पूर्वक अभिव्यक्त करने योग्य संस्कारों की स्थापना

होती है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति सम्बद्ध शिक्षा ही प्राकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य का सदुपयोग एवं सुरक्षा करने योग्य संस्कारों की स्थापना करती है। यही क्रम से विधि-निषेध एवं व्यवस्था-अव्यवस्था का निर्णय करने योग्य सुसंस्कारों को स्थापित करती है। यही क्रम से मानव की चिर आशा एवं तृषा है। शिक्षा ही मानव में संस्कार परिवर्तन की अतिमहत्वपूर्ण प्रक्रिया एवं कार्यक्रम है। शिक्षा में ही संस्कृति एवं सभ्यता का उद्‌बोधन-प्रबोधनपूर्वक स्फुरण होता है, जो व्यक्तित्व को प्रकट करता है।

''विवाह मानव के लिए अवांछित घटना नहीं है।'' विधिवत् वहन करने के लिए की गई प्रतिज्ञा ही विवाह है। मानवीयता की सीमा में ही विधिवत् जीवन का विश्लेषण हुआ है, जिसमें विवेक-विज्ञान सम्पन्न जीवन सुसम्बद्ध होता है। जिसका प्रत्यक्ष रूप कायिक-वाचिक-मानसिक, कृत-कारित-अनुमोदित भेद से किए सभी क्रियाकलापों में अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा ही है। यही वैध सीमा की सीमा है। विवाह घटना में दो जागृत मानव द्वारा समान संकल्प के क्रियान्वयन की प्रतिज्ञा है। यह समाज गठन का भी एक प्रारूप है। विवाह गठन में निर्भय जीवन की कामना व प्रमाण समायी रहती है। सामाजिकता का अंगभूत जीवन क्रियाकलाप के प्रति प्रतिज्ञा ही विवाह में उत्तम संस्कार को प्रदान करती है। मानवीयतापूर्ण जीवन, व्यवस्था क्रम एवं जीवन के कार्यक्रम में संकल्प ही दृढ़ता को प्रदान करता है। यही विवाह संस्कार की प्रधान धर्मीयता है। इस उत्सव को शुभ कामनाओं सहित बन्धु परिवार समेत सम्पन्न किया जाता है। इस घटना में वधू एवं वर का संगठन होता है। इन दोनों में संस्कृति की साम्यता ही सफलता का आधार है। मानव में संस्कृति साम्य मानवीयता की सीमा में सुलभ होता है। विवाह संस्कार प्रधानत: परस्पर दायित्व वहन के लिए घोषणा है। यह घोषणा मानवीयता सहज रूप में सफल होती है। विवाह संयोग संस्कृति एवं सभ्यता को साकार रूप देने के लिए प्रतिज्ञा है जो मानवीयता पूर्ण विधि से होती है। विवाह उत्पादन, उपयोग एवं वितरण के स्पष्ट कार्यक्रम को आरंभ करने के लिए बाध्य करता है। यही आवश्यकता से अधिक उत्पादन की आवश्यकता को जन्म देता है। यह मात्र मानवीयता पूर्वक सफल होता है। विवाहित जीवन व्यवस्था में, से, के लिए बाध्य होता है। अविवाहित जीवन में भी वैधता सहज व्यवस्था की अनिवार्यता स्वीकार्य होती है। मानवीयता पूर्वक ही पुरूषों में यतित्व अर्थात् देव मानव एवं दिव्य मानवीयता की ओर गतिशीलता एवं नारियों में सतीत्व उसी अर्थ में स्पष्ट होता है जो आर्थिक एवं सामाजिक संतुलनकारी मूल तत्व है। अस्तु, विवाह संस्कार का आद्यान्त अर्थ निष्पत्ति मानवीयतापूर्ण आचरण एवं मानव कुल का संरक्षण है।

दीक्षा संस्कार प्रत्येक मानव के लिए अनिवार्य है। ''मानव धर्मीयता का अनुभव करने के लिए की गई प्रक्रिया, पद्धति एवं प्रणाली ही दीक्षा है।'' दीक्षा संस्कार गुणात्मक

परिवर्तन की ओर सुस्पष्ट दिशा निर्देशन के संदर्भ में ज्ञातव्य है। दिशा जागृति सहज प्रमाणों के क्रम में अग्रिमता को इंगित करता है। मानव जीवन जागृति क्रम में अमानवीयता से मानवीयता एवं मानवीयता से अतिमानवीयता की ओर है। शिक्षा द्वारा मानवीय अवधारणा को स्थापित किया जाना, दीक्षा द्वारा अनुभव एवं अतिमानवीयता की ओर दृढ़ता एवं गति को प्रस्थापित करना ही इन दोनों संस्कारों की चरितार्थता है, जो सर्व वांछनीय उपलब्धि है। मानवीय जीवन प्रतिष्ठा के बिना दीक्षा संस्कार सफल नहीं होता है। दीक्षा संस्कार स्वमूल्य और मौलिकता का अनुभव करने के लिए ही दिशादायी प्रक्रिया है। स्वमूल्याँकन मात्र अनुभव है क्योंकि "मूल्य" भी अनुभव प्रमाण ही है। यही अनुभव क्षमता पर मूल्य में निष्णातता है। पूर्णता एवं परिपक्वता की सम्मिलित प्रक्रिया ही निष्णातता है। स्वमूल्यानुभूति योग्य क्षमता ही सर्वोच्च जागृति है। यही क्रम से जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, वस्तु मूल्य के वरीयता क्रम को प्रमाणित करता है। अनुभव योग्य क्षमता ही स्वमौलिकता है। अनुभव क्षमता ही क्रम से आचरण, व्यवहार एवं व्यवसाय में प्रकट होती है जिसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि समाधान एवं समृद्धि है। मानव जीवन अनुभवमय है। जागृति के क्रम में यह एक संभावना एवं जागृति पूर्णता में उपलब्धि है। यही विशेषवत्ता जागृत को अजागृत में अवबोधन, प्रबोधन एवं निर्देशन पूर्वक अनुभव योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता को प्रस्थापित करने के लिए बाध्य करती है। यही दीक्षा संस्कार की गरिमा है। स्वागत पूर्वक स्वीकार्य योग्य बोध क्रिया ही अवबोधन क्रिया है, जिसकी चरितार्थता अवगत होने से है। आवश्यकता एवं अनिवार्यतापूर्वक स्वीकृति क्रिया से ही अवगत होने का तात्पर्य है।

दीक्षा ही व्रत, व्रत ही निष्ठा, निष्ठा ही सकंल्प, संकल्प ही दृढ़ता, दृढ़ता ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही श्रद्धा-विश्वास एवं प्रेम, श्रद्धा-विश्वास एवं प्रेम ही अनुभूति तथा अनुभूति ही दीक्षा है। मानव में, से, के लिए व्रत अवधारणा है जो सत्यवक्ता, इन्द्रिय संयमता, विचार संयमता, अस्तेय, अपरिग्रह, निरपराधिता, बह्मचर्य (संज्ञानीयता में संवेदनायें नियंत्रित रहना), विवेकशीलता एवं गुणात्मक परिवर्तनशीलता है, जिनका प्रत्यक्ष रूप धीरता, वीरता, उदारता एवं दया, कृपा, करूणा की अभिव्यक्ति ही है। व्रत का तात्पर्य गुणात्मक परिवर्तन की दिशा में आचरण की निरंतरता से है। गुणात्मक परिवर्तन की अपरिहार्यता जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति में पायी जाती है, जो वास्तविकताओं पर आधारित यथार्थता है। मूल्य मात्र ही अनुभूति तथ्य है। जीवन मूल्यमय है। इसकी अनुभूति ही आत्मानुभूति है। मूल्यमयता की अनुभूति ही तन्मयता है। मूल्यमयता ही मूल्यों में तादात्मय है। यही समग्रता के प्रति सौजन्यता है, स्नेह निष्ठा व विश्वास जैसी मूल्य प्रदायी क्षमता है। स्थापित मूल्य अपरिवर्तनीय है। इनकी अनुभूति ही स्वयं शिष्टता को अभिव्यक्त करती है क्योंकि प्रत्येक स्थापित मूल्य प्रत्येक देश काल में एक सा स्थित पाया जाता है। स्थापित मूल्यानुभूति में, से, के लिए अनुगमन एवं

अनुशीलन योग्य प्रेरणा, परंपरा, प्रक्रिया ही दीक्षा का आद्यान्त प्रमाण है। यह संस्कार मानवीयता पूर्ण जीवन के स्वभावगत होने के अनन्तर सफल होने वाला सहज सुलभ संस्कार है। यही चिन्तनाभ्यास की अर्हता है। सत्ता में अनुभूति ही चिन्तनाभ्यास का चरम लक्ष्य है जो प्रतीति पूर्वक प्रारंभ होता है एवं अनुभव प्रमाण पूर्वक सफल है। परंपरा में यहाँ निर्विचारानुभूति कही गयी है। इस लक्ष्य के लिए जिज्ञासा स्थापित मूल्यानुभूति के अनन्तर स्वभावत: उद्‌गमित होती है। अवांछित विचारों से मुक्ति ही निर्विचार है। स्थापित मूल्य स्वयं में सीमा नहीं है। जागृति पूर्वक मानव माध्यम से ही असीम की अनुभूति होती है। मूल्यानुभूति की सीमा में अर्थात् किसी प्रतीक के माध्यम से स्वयं के जागृति पूर्वक अनुभव होने का भी विगत के वाङ्मय में आश्वासन है। सीमित क्रिया का निरीक्षण, परीक्षण एवं सर्वेक्षण पूर्वक प्रमाणित होने का एवं सीमा विहीन स्थिति पूर्ण सत्ता में अनुभव होना प्रसिद्ध है। दीक्षा ही चिन्तनाभ्यास में आरूढ़ कराने का एकमात्र उपाय है जो प्रतीक विहीन अनुभूति के लिए प्रेरणादायी सशक्त स्त्रोत है। चिन्तनाभ्यास की सफलता ही आचरण पूर्णता है। जीवन का लक्ष्य ही क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता है, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप ही सजगता है। आचरण ही मानव को व्यक्त करता है। दया, कृपा, करूणा से परिपूर्ण होना ही चिन्तनाभ्यास का प्रयत्क्ष प्रमाण है। यही दीक्षा का देय है। धीरता, वीरता, उदारता ही सामाजिकता की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है जो शिक्षा का देय है। दया, कृपा, करूणापूर्ण स्वभाव में अनुगमन होना ही मानव चेतना, देव मानव चेतना एवं दिव्य मानवीयता में संक्रमण है। यह अनुगमन प्रक्रिया ही चिन्तनाभ्यास है। दिव्य मानवीयता में अनुगमन सिद्धि ही प्रत्यावर्तन है। यही मध्यस्थ जीवन है। प्रत्यावर्तित जीवन आत्मानुशासित होता है। आत्मा मध्यस्थ क्रिया है इसलिए मध्यस्थ जीवन स्थापित सुलभ संभावना के रूप में है। मध्यस्थ जीवन ही चरमोत्कृष्ट विकास है। पूर्ण विकास के लिए ही दीक्षा संस्कार एवं योगाभ्यास है। जागृति की क्रमिकता इसी को स्पष्ट करती है। मानव प्रकृति का अभीष्ट सत्ता में अनुभूति है। जागृति में पूर्णता को स्थापित करना ही दीक्षा संस्कार की आद्यान्त उपलब्धि है। पूर्ण जागृत इकाई ही जनजाति में अग्रिम जागृति के लिए गति प्रदायी क्षमता स्थापित करने के लिए समर्थ है साथ ही समुचित शिक्षा प्रणाली, पद्धति एवं नीति को प्रस्थापित करने के लिए अर्ह होती है। इस तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ण जागृत मानव ही लोक के लिए अत्यन्त उपयोगी व उपादेयी सिद्ध होता है। ऐसी इकाईयों की संख्या वृद्धि ही लोक मंगल का आधार है।

''मूल्यानुभूति की आशा 'जीवन' के साथ, आकाँक्षा भ्रांत ज्ञानावस्था के साथ, अनिवार्यता भ्रांताभ्रांत ज्ञानावस्था के साथ अभिव्यक्त होती है।'' जीवन अमरत्व के साथ आशा के रूप में होना ज्ञातव्य है। जीवन शरीर को संचालित करता है। इससे पूर्व भी जीवन का अस्तित्व रहते हुए मानव परंपरा में उसकी अभिव्यक्ति पायी नहीं जाती। जबकि मानव

शरीर द्वारा अभिव्यक्त होने वाली आशा, विचार, इच्छा, संकप एवं अनुभूतियाँ स्पष्ट है। रासायनिक एवं भौतिक सीमा में मानव की पहचान नहीं हुई है। गठनपूर्णता पूर्वक संवेदनशीलता आशा-आकाँक्षा, आवश्यकता-अनिवार्यता के रूप में प्रकट होता है। यह जीवावस्था के अनन्तर ही प्रत्यक्ष हुआ है। चैतन्य जीवन का मूल तत्व संवेदनशीलता और जागृति पूर्वक संज्ञानशीलता है। यही जागृति क्रम में पायी जाने वाली वास्तविकता है। विशेषताएं अपेक्षाकृत गण्य है जो अवस्था चतुष्टय में दृष्टव्य है।

जीवन नित्य और जन्म घटना है। जन्म के साथ मृत्यु स्पष्ट हुई है। प्रत्येक जन्म मृत्यु की ओर गतिमान पाया जाता है। मृत्यु का न होना ही अर्थात् इकाई का संघटित-विघटित न होना ही अमरत्व है। यह होना ही घटना है। जीवन के क्रियाकलाप आशा, विचार, इच्छा अनुभव मूलक होते हैं न कि प्रस्थान एवं विस्थापन मूलक। प्रस्थापन-विस्थापन क्रिया परमाणु में पाये जाने वाले परिणाम की द्योतक है, जबकि आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभवापेक्षित अथवा अनुभवमूलक क्रियाकलाप परिवर्तन एवं परिमार्जन या पूर्णता की निरंतरता की अभिव्यक्ति है। परिणाम अधिक और कम का प्रमाण है जबकि संवेदनशीलता औचित्य-अनौचित्य का प्रमाण है। औचित्य एवं अनौचित्य पूर्णता एवं परिपक्वता के होने या न होने की अपेक्षाकृत अभिव्यक्ति है। गठन पूर्णता से अधिक इकाई में विकास, क्रिया पूर्णता से अधिक अभिव्यक्ति एवं आचरण पूर्णता से अधिक अनुभूति नहीं है। ''सही'' मात्रा में सीमित नहीं है एवं गलती का अस्तित्व नहीं है। ''न्याय'' स्वयं में मात्रा नहीं है। अन्याय की स्वीकृति नहीं है। यही सत्यता चैतन्य क्रिया को क्रिया पूर्णता और आचरण पूर्णता से सम्पन्न होने के लिए बाध्य की है। यह पूर्णतया संवेदनशीलता में होने वाली परिवर्तन एवं परिमार्जन क्रिया है। जीवन के क्रियाकलाप को चैतन्य इकाई धारित करती है जो ''काल त्रय'', ''क्रिया त्रय'' निर्णय एवं ''प्रमाण त्रय'' पूर्वक सिद्ध होता है। फलतः वर्तमान में चरितार्थता, भविष्य की योजना एवं विगत का इतिहास स्पष्ट होता है। इतिहास संस्कृति की अभिव्यक्ति एवं आर्थिक उपलब्धि का संयुक्त घटना क्रम है। वर्तमान चरितार्थता अखण्ड सामाजिकता है, जिसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि अभय एवं समृद्धि है। भविष्य की योजना आर्थिक एवं सांस्कृतिक संतुलन में ही सफल होता है। सांस्कृतिक एवं आर्थिक संतुलन के बिना चैतन्य जीवन अर्थात् संवेदनशील जीवन में गुणात्मक परिवर्तन संभव नहीं है। जागृति पूर्वक उपलब्धियाँ दो ही हैं जो सतर्कता एवं सजगता है। पूर्ण सजगता पर्यन्त शरीर धारण घटना एवं गुणात्मक परिवर्तन का अभाव नहीं है। पूर्ण जागृति ही स्वतंत्रता का द्योतक है। स्वतंत्रता इकाई में होने वाले गुणात्मक परिवर्तन की उपलब्धि है। गुणात्मक परिवर्तन का प्रमाणीकरण चैतन्य इकाई ही किया करती है। प्रमाण स्वयं में अनुभूति है। अनुभूति क्षमता संवेदन शीलतावश चैतन्य क्रिया में होने वाली उपलब्धि है जो मानवीयता पूर्वक प्रमाणित होता है। मानव में न्याय प्रदायी क्षमता

सहज प्रमाण एवं उसकी अक्षुण्णता ही गुणात्मक परिवर्तन है। यही अनुभव क्षमता का भी प्रमाण है। सुसंस्कार पूत होने अर्थात् मानवीयता पूर्ण जीवन की स्थापना में सांस्कृतिक पराभव का अभाव होता है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन पूर्वक की गई कालपेक्ष प्रक्रिया से आर्थिक पराभव दूर होता है। आर्थिक पराभव तब तक भावी है जब तक अपव्यय एवं असुरक्षात्मक स्थिति बनी रहती है। इसी सुस्पष्ट कारणवश विजय को पाने के लिए पुन: प्रयासोदय होता ही रहता है जो "नियति क्रम" है। नियति क्रमानुषंगी न हो ऐसा कोई अस्तित्व प्रकृति की सीमा में नहीं है। इसी तथ्य के आनुषंगिक जन्म घटना के लिए चैतन्य क्रिया का बाध्य होना पाया जाता है। शरीर संचालन क्रिया के साथ ही शरीर त्यागने का कारण समाया रहता है। शरीर के माध्यम से जो गुणात्मक परिवर्तन होते हैं वह संवेदनशीलता व संज्ञानशीलता का ही स्वत्व है। उसका स्पष्ट रूप आशा, विचार, इच्छा व संकल्प में परिमार्जन प्रक्रिया है। यही प्रबुद्धता है। यही निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य है। प्रबुद्धता की सीमा इससे अधिक नहीं है। इससे कम में तृप्ति नहीं है। पाण्डित्य ही सजगता एवं सतर्कता को प्रमाणित करता है। इसके पूर्ण होने तक गुणात्मक परिवर्तन के लिए बाध्यता पायी जाती है। यह क्रम अवश्यम्भावी है। शरीर त्यागने के समय में जो सेवाएं आवश्यक हैं उसे स्वयं से सम्पन्न करने में असमर्थता पायी जाती है इसका तात्पर्य चैतन्य इकाई में किसी असमर्थता से नहीं यह केवल शरीर चालन योग्य न होने से है। ऐसे समय में अपनत्व सहित अपनों की सेवा आकांक्षित एवं वांछित होती है। यही आकाँक्षा एवं वाँछा की पूर्णता मरणोत्तर जीवन के लिए उपहार है, तात्पर्य शरीर त्यागने के अनन्तर स्वभाव गति के लिए ये सेवाएं सहायक तत्व हैं क्योंकि मानव जीवन में प्रधानत: मानव मानव के आचरण, सेवा एवं व्यवहार से आवेशित होते हुए तथा आवेश से मुक्त होकर स्वभावगति में अवस्थित होते हुए देखा जाता है। इस सत्यता से यह स्पष्ट हो जाता है कि अजागृति में मानव ही मानव की आवेशित गति एवं स्वभाव गति का प्रमुख कारण है। यही सत्यता स्थापित मूल्य की अनुभूति, शिष्ट मूल्य की अभिव्यक्ति के लिए बाध्यता है। यही उदय है। मानव ही अपनत्व, तादात्म्य एवं तन्मयता पूर्वक अनन्यता पूर्ण शिष्टता को व्यक्त करता है। जब वह काँक्षानुरूप अपनत्व को प्राप्त नहीं कर पाता तब वह उस जन्म घटना के संदर्भ में पराभव को स्वीकारता है या उसके निष्प्रयोजन को स्वीकारता है। शरीर त्यागने के समय में जो अवधारणाएं स्वीकृत होती हैं वही पुन: जन्म लेते तक स्थायीभूत रहती हैं। यही संस्कार एवं संस्कार के लिए स्तुषि है। साधन के बिना इकाई में परिवर्तन या गुणात्मक परिवर्तन सिद्ध नहीं होता है। चैतन्य इकाई के लिए शरीर ही सर्वप्रथम साधन है। यही वरीय साधन भी है। इसी से उपसाधन निर्मित होते है। वह आकाँक्षाद्वय के रूप में स्पष्ट है। इस प्रकार पूर्णता पर्यन्त साधनों से सम्पन्न होना तथा उसके सदुपयोग से सफलता एवं दुरूपयोग से असफलता की स्वीकार्यता का होना स्पष्ट होता है। यही अवधारणा है। यह अवधारणा ही संस्कार के रूप में

प्रभावी होता है। ऐसी संस्कारदायी प्रक्रिया में वातावरण एवं अध्ययन ही साधन समुच्चय है। सेवा, आचरण एवं व्यवहार ही मानव मानव के प्रति वातावरण निर्माण करने का प्रधान उपादेयी तत्व है। उसके लिए उनसे की गयी मंगल-अमंगल, शुभाशुभ तथा उचित-अनुचित कृतियों का बारम्बार स्मरण किया जाना, फलतः स्वयं में सफलता-असफलता का स्वीकार होना साथ ही अन्य के प्रति विश्वास या अविश्वास होना पाया जाता है। विश्वास परंपरा ही सार्स्कृतिक परंपरा का प्राण-त्राण तत्व है। यही मानव में गुणात्मक परिवर्तन के लिए आधारभूत तथ्य है। विश्वास केवल मानव की परस्परता में निर्वाह होने वाला तथ्य है। विश्वास ही जीवन के अमरत्व को स्पष्ट करता है। नवधा स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही जन्म घटना के अनन्तर स्वर्गीयता तथा मृत्यु घटना के अनन्तर सुसंस्कार का स्थापना क्रम है। प्रत्येक मरणासन्न व्यक्ति की जीवन सफलता में विश्वास को स्थापित करना ही मरणोत्तर जीवन के लिए उत्तम संस्कार है। शरीर कष्ट के परिहारार्थ समुचित चिकित्सा एवं सेवा समर्पण, वैचारिक समस्या परिहार योग्य व्यवहार एवं आचरण पूर्ण वातावरण से मरणोत्तर जीवन के लिए उत्तम संस्कार की स्थापना होती है। **जीवन में अमरत्व एवं शरीर के नश्वरत्व, व्यवहार के नियम संबंधी संबोधन, प्रबोधन प्रक्रिया से मरणोत्तर जीवन में उत्तम संस्कार की स्थापना होती है। मरणासन्न व्यक्ति में अपनत्व के प्रति विश्वास को स्थापित करने तथा अनिवार्य सेवाओं से सम्पन्न करने से वेदना विहीन मृत्यु घटना भावी होती है। फलतः मरणोत्तर जीवन में उत्तम संस्कार की स्थापना होती है।** वेदना विहीन मृत्यु घटना में मानवीयतापूर्ण वातावरण अनिवार्य है, जो मरणासन्न व्यक्ति की तृप्ति का कारण होता है। वेदना विहीन मृत्यु घटना के सहायक क्रियाकलाप ही मृत्यु संस्कार में गण्य हैं। शैशवावस्था में जिस प्रकार प्यार और स्नेहपूर्ण सेवा-सुश्रुषा अनिवार्य है इसी प्रकार मरणासन्नावस्था में भी अनिवार्य है। यही मरणोत्तर जीवन में उत्तम संस्कार को स्थापित करता है। शरीर त्यागने के अनन्तर उनके जीवन की चरितार्थता, गौरव एवं सम्मानात्मक घटना, व्यक्तित्व, चारित्रय, स्मरण एवं सद्गुणों का वर्णन किया जाना मरणोत्तर जीवन में सुसंस्कारों का कारण होता है। साथ ही उनके अभ्युदय की कामना भी उनके सुसंस्कारों में सहायक सिद्ध होती है क्योंकि प्रत्येक इकाई द्वारा की गयी शुभकामना का प्रसारण होता है। प्रत्येक प्रसारण ग्रहण के लिए उपलब्धि है। मरणोत्तर स्थिति में भी ग्रहण क्षमता रहती ही है। साधन विहीनतावश भी प्रसारण क्रिया का अभाव होता है।

32.

संस्कार ही संस्कृति को प्रकट करता है।

संस्कृति ही सभ्यता को अभिव्यक्त करती है। आहार, विहार एवं व्यवहार के रूप में सभ्यता स्पष्ट होती है। इनके वरीयता क्रम में व्यवहार, विहार एवं आहार है। व्यवहार में एकात्मकता की प्रतीक्षा है यही न्याय की याचना अथवा प्रत्याशा है। परस्पर व्यवहार में ही न्यायग्राही-प्रदायी वाँछा सफल होती है। इसकी विफलता ही परस्पर विरोध-विद्रोह है। द्रोह का ही विद्रोह होता है। अज्ञान, अत्याशा एवं अभाव ही मानव के अपराध का मूल कारण है। अभाव को भाव में, अत्याशा को सामान्य आकाँक्षा एवं महत्वाकाँक्षा में परिवर्तित कर देना ही सामाजिक व्यवस्था है। व्यवस्था का विरोध नहीं है। अव्यवस्था ही द्रोह है। व्यवस्था मानव जीवन का एक भाग है। व्यवहार व्यवस्था को, विहार अर्थात् आचरण संस्कृति को एवं आहार स्वास्थ्य को प्रकट करता है। व्यवहार में अनन्यता का प्रस्फुटित होना ही न्यायपूर्ण व्यवहार की चरितार्थता है। अनन्यता में अन्याय का होना संभव नहीं है। अन्यत्व में ही अपराध का होना पाया जाता है। अनन्यता ही जीवन में चरितार्थता है। यही अखण्ड सामाजिकता को सिद्ध करती है। अन्यता सामाजिकता या समाज का निर्माण करने में समर्थ नहीं है। अन्यता व्यक्ति, परिवार एवं वर्गीयता से मुक्त नहीं है। ये संघर्ष एवं युद्ध से मुक्त नहीं है। मानव में अनन्यता की प्रचुरता जन्म से ही पायी जाती है क्योंकि प्रत्येक मानव उनके नाम से अनन्यता, तादात्म्य एवं तदरूपता को पाता है। इसी क्रम से माता, पिता, परिवार, बंधु-बांधव, समाज, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्र में अनन्यता को स्थापित करने की संभावना है क्योंकि स्थापित मूल्य सर्वत्र समान है। संबंध विहीन मानव नहीं है। एक मानव संपूर्ण मानव से सम्बद्ध है ही। शिष्ट मूल्य और वस्तु मूल्य भी सर्वत्र समान है। यह सर्वदेशीय, सर्वकालीय मूल्यवत्ता ही अनन्यता का आधार है। स्थापित मूल्य ही मानव जीवन का आधार है क्योंकि मानव जीवन की प्रमाणिकता अनुभव में, से, के लिए है। अनुभव केवल मूल्य में, से, के लिए है। स्थापित मूल्य ही अनुभव, शिष्ट मूल्य ही आचरण एवं व्यवहार, वस्तु मूल्य ही समृद्धि है। यह सर्वत्र समान है। यही सत्यता अनन्यता की संभावना को स्पष्ट करती है।

विहार ही आचरण के रूप में प्रत्यक्ष है। श्रम हरणार्थ की गई प्रक्रिया विहार है। आशा-आकाँक्षा एवं आवश्यकता या अनिवार्यता पूर्वक की गई चरितार्थता ही आचरण है जो इतिहास के अर्थ में चरितार्थ है। ऐतिहासिक अर्थवत्ता नियति क्रमानुषंगिक निष्पन्न होती है। प्रकृति का विकास क्रम ही नियति क्रम है। प्रत्येक मानव की रूचियाँ आचरण में अभिव्यक्त होती है। रूचियाँ संवेगानुरूपीय, संवेग मूल प्रवृत्ति के रूप में, मूल प्रवृत्तियाँ संस्कार मूलक प्रक्रिया के रूप में दृष्टव्य है। संस्कारानुबंध आचरण विशेषत: स्वयं की तृप्ति के लिए

प्रायोजित होता है जबकि व्यवहार प्रधानत: परतृप्ति के संदर्भ में भी सम्पन्न होता है। स्वयं में तृप्ति मानवीयता पूर्ण पद्धति से ''नियम त्रय'' के पालन में सर्वसुलभ होती है। अमानवीयता में वह सुलभ नहीं है। अमानवीय मूल प्रवृत्तियाँ भय से मुक्त नहीं है। भय स्वयं में तृप्ति का साधन नहीं है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मानवीयता पूर्ण पद्धति से किया गया विचार ही विश्राम के लिए एकमात्र शरण है। मानवीयता सहज आचरण पूर्वक भय का अभाव होता है। समाधान एवं समृद्धि का भाव होना पाया जाता है।

आहार शरीर पोषण के लिए चरितार्थ होता है। शरीर विहार, व्यवहार एवं उत्पादन के अर्थ में सार्थक साधन है। अमानवीयता में आहार ही महत्वपूर्ण आकाँक्षा के रूप में ज्ञातव्य है। मानवीयता में व्यवहार एवं अतिमानवीयता में आचरण ही सर्वोच्च महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। आहार, विहार एवं व्यवहार की एकात्मकता ही जीवन में तृप्ति है। इनमें अन्तर्विरोध ही अतृप्ति है। अतृप्ति शिक्षा का विषय नहीं है। तृप्ति ही शिक्षा के लिए विषय वस्तु है। प्रत्येक मानव किसी न किसी अंश में शिक्षक एवं शिक्षार्थी है जो प्रत्यक्ष है। इस पद्धति से यह निष्कर्ष मिलता है कि मानवीयता पूर्ण आचरण एवं व्यवहार निर्वाह करने योग्य अथवा सहायक रूप में ही आहार का सेवन सर्वोचित होगा।

33.

केवल उत्पादन ही मानव के लिए जीवन सर्वस्व नहीं है।

वस्तु मूल्य के आधार पर समाज संरचना संभव नहीं है। उत्पादन मानव जीवन का एक आयाम है। आचरण को प्रस्तुत करने हेतु पायी जाने वाली सीमा ही आयाम है। मानव के आयाम चतुष्टय सम्पन्न होने के कारण, इन्हीं के आधार पर स्वस्थ्य समाज की संरचना होती है। उत्पादन से समृद्धि का होना पाया जाता है। अन्य आयामों के अभाव में वह निर्मूल्य हो जाता है। व्यवहार ही वस्तु मूल्य को समुचित पद्धति से संयत करता है अर्थात् व्यवहार में ही वस्तु मूल्य की प्रयुक्ति हैं, जिसकी सदुपयोगिता मानवीयता पूर्ण व्यवहारिका में सिद्ध होती है। अमानवीयता की सीमा में सम्पूर्ण समृद्धि पूर्वक उभय आकाँक्षा से संबंधित सभी वस्तुओं के उपलब्ध रहते हुए मानव की परस्परता में विश्वास के अभाव में वे सभी साधन समाधान के लिए प्रयुक्त होने में असमर्थ पाये जाने जाते हैं। मानव जीवन में चतुष्टय आयाम वरीयता क्रम से अनुभव, विचार, व्यवहार एवं उत्पादन है। वैचारिक समाधान के बिना उत्पादन-विनिमय उपलब्धियाँ, अनुभूति के बिना अर्थात् सत्य में अनुभूति व मूल्यानुभूति के बिना व्यवहार में अभयता नहीं पायी जाती। व्यवहार में अभयता ही वैचारिक (बौद्धिक) समाधान

का प्रधान कारण है। भय का तब तक रहना स्वाभाविक है जब तक मानवीयता पूर्ण सामाजिक संरचना अर्थात् ''मूल्य त्रय'' (जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य) पर आधारित सामाजिक संरचना न हो। मानवीयता पूर्ण समाज संरचना का अभाव ही है सामाजिक भय। यही व्यक्ति, परिवार एवं वर्ग की सीमा में अधिमूल्यांकन करने की बाध्यता है। वर्ग वाद दूसरे वर्ग के दलन, दमन एवं शोषण के लिए प्रयास करती है। यह परस्पर प्रयास ही संघर्ष है। यही अंततोगत्वा युद्ध में परिणित होता है। इससे मुक्त होने का उपाय केवल मानवीयता पूर्ण संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था ही है। ये चारों मानवीयता में ही ध्रुवीकृत होते हैं अर्थात् अक्षुण्णता को प्राप्त करते हैं। फलत: मानव की परस्परता में विश्वास, उनके इतिहास में गौरव, भविष्य के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम एवं स्पष्ट रूपरेखा सिद्ध होती है जिसमें प्रत्येक मानव नैतिकता पूर्ण आचरण, व्यक्तित्व पूर्ण व्यवहार करने, प्रत्येक परिवार उसके सहयोगी बनने और समाज प्रोत्साहन एवं संवर्धन करने योग्य होता है। यही मानव की वांछित उपलब्धि है। इसी व्यवस्था में मनुष्य के चारों आयामों की एकसूत्रता पायी जाती है परस्पर आयामों में निर्विषमता ही एकसूत्रता का प्रत्यक्ष रूप है। यही स्वभाव गति का तात्पर्य है। ऐसी स्वभाव गति अथवा स्वभाव सिद्धि को पाने के लिए मानव अनवरत तृषित है। मानवीयता पूर्ण जीवन का कार्यक्रम ही जीवन में स्थिरता, न्याय प्रदायी क्षमता और अधिक उत्पादन कम उपभोग योग्य योग्यता का उपार्जन है। अमानवीयता पूर्ण जीवन में न्याय प्रदायी क्षमता का निर्माण होना संभव नहीं है। न्याय प्रदायी क्षमता के बिना समाज संरचना एवं सामाजिकता का निर्वाह सिद्ध नहीं होता। सामाजिकता के बिना मानव सफल नहीं है। इस सत्यता से यह स्पष्ट होता है कि मानव अपने में चारों आयामों की एकसूत्रता पूर्ण जीवन यापन करने के लिए बाध्य, इच्छुक एवं तृषित है। यह केवल मानवीयता पूर्ण शिक्षा अर्थात् व्यवहार एवं व्यवसाय की संतुलित शिक्षा और व्यवस्था पद्धति से ही सफल होता है। यही नित्य मंगल एवं शुभोदय है।

अखण्ड समाज परंपरा में ही प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलन, उदय एवं उसकी अक्षुण्णता रहती है। यही भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान है। यही मध्यस्थ जीवन का प्रत्यक्ष रूप है। मध्यस्थ जीवन का तात्पर्य न्याय प्रदायी क्षमता, सही करने की परिपूर्ण योग्यता सत्य बोध सम्पन्न रहने से है। न्याय ही व्यवहार में तथा नियम ही व्यवसाय में मध्यस्थता को सिद्ध करता है। मूल्य त्रयानुभूति योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता इसका प्रमाण है। यही शिक्षा एवं दश सोपानीय व्यवस्था सहज महिमा है। शिक्षा एवं व्यवस्था ही मूल्यानुभूति एवं मूल्यवहन योग्य क्षमता को प्रदान करती है। यही वर्ग विहीनता का एकमात्र आधार एवं उपलब्धि है। वर्गवादी शिक्षा एवं व्यवस्था सामाजिकता को प्रदान करने में समर्थ नहीं है। फलत: निर्विषमता, निर्भ्रमता, अभयता एवं समृद्धि की उपलब्धि नहीं है। मानव के प्रति मानव का अध्ययन जब तक पूर्ण नहीं होगा तब तक भ्रम है। भ्रम ही अपूर्णता है। अपूर्णता ही प्रकारान्तर से वर्ग भावना

को जन्माती है। अपूर्णता के बिना वर्ग भावना का प्रसव नहीं है। निर्विषमता पूर्वक ही मानव में अखण्डता, सामाजिकता, समाधान एवं समृद्धि का अनुभव होता है। निर्भ्रमता ही निर्विषमता है। यही सार्वभौमिकता है। मूल्य त्रयानुभूति ही निर्भ्रमता का प्रमाण है। मूल्य मात्र सर्वदेशीय एवं सर्वकालीय होने के कारण सार्वभौमिक है। सार्वभौमिकता ही निर्विषमता है। सामाजिक मूल्यों का शिष्ट मूल्यों सहित निर्वाह ही न्यायपूर्ण जीवन है। स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य का योगफल ही सामाजिकता है। वस्तु मूल्य ही समृद्धि है।

नैतिकतापूर्ण जीवन की अपेक्षा मानव की परस्परता में दृष्टव्य है। यही प्रत्येक स्तर एवं स्थिति में भी पाया जाने वाला तथ्य है। धर्मनीति एवं राज्यनीति ही सम्पूर्ण नीति है। अर्थ ही उनका आधार है। इन नीति द्वय का विधिवत् पालन ही नैतिकता है। प्रत्येक मानव नैतिकता से सम्पन्न होना चाहता है। प्रत्येक संस्था प्रत्येक मानव को नैतिकता से परिपूर्ण बनाना चाहता है। धर्म नैतिक एवं राज्य नैतिक संस्थाओं द्वारा मानव को नैतिकता से परिपूर्ण करने का संकल्प किया जाना प्रसिद्ध है। भौतिकवादी ही व्यवस्था पद्धति में संदिग्धता है। शिक्षा में अपूर्णता का तात्पर्य पर्याप्त वस्तु-विषय, समुचित नीति, पद्धति तथा उसकी सर्वसुलभता न होने से है। शिक्षा प्रणाली पद्धति का पूर्ण होना अनिवार्य है। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के पूर्ण विश्लेषण संपन्न वस्तु-विषय का समावेश हुए बिना शिक्षा प्रणाली में पूर्णता संभव नहीं है। प्रधानत: सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व और चैतन्य प्रकृति के अध्ययन की अपूर्णता ही मानव को सभ्रम बनाने का कारण है। भ्रमता सामाजिकता नहीं है। मानव का अति महत्वपूर्ण रूप चैतन्य क्रिया ही है। चैतन्यता का तात्पर्य आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति सहज प्रमाण से है। यह परमाणु में गठनपूर्णता के अनन्तर गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक प्रकट होने वाली क्रिया एवं तथ्य है। रासायनिक क्रिया की सीमा में आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति का प्रकट न होना पाया जाता है। चैतन्य परमाणु में ही इन तथ्यों का उद्घाटन होना प्रमाणित है। प्रकृति में ही विकास क्रम, ज्ञानावस्था में निर्भ्रम जागृत मानव द्वारा दृष्टव्य है। अधिक विकसित, कम विकसित का दृष्टा है। विकासशीलता प्रकृति का कार्य सीमा है। विकासशीलता के लिए प्रकृति के अतिरिक्त और कोई वस्तु या तत्व नहीं है। सत्तामयता में तरंग या गति सिद्ध नहीं होता है। सत्ता में प्रकृति के अतिरिक्त और कोई अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। इन प्रमाणों से प्रकृति की विकासशीलता के प्रति भ्रम निवारण होना पाया जाता है। सत्ता स्वयं में पूर्ण रहना प्रमाण सिद्ध है। इसी सत्यता से स्पष्ट होता है कि "पूर्ण" (सत्ता) परिणामशील नहीं है और नित्य वर्तमान है।

जबकि स्थितिपूर्ण सत्ता में इस प्रकार का हस्तक्षेप संभव नहीं है। सत्ता तरंग गति एवं सीमा नहीं है। यही पूर्णमय महिमा है। सत्ता रचना विहीन साम्य ऊर्जा रूप में स्थिति है जो प्रभाव

विशेष है। यही नियम, न्याय, धर्म, सत्य एवं आनन्द स्थिति में जागृत मानव परंपरा में प्रमाण है। अपूर्ण का ही पूर्णता के लिए परिणाम रत, परिमार्जन रत होना स्वभाव सिद्ध तथ्य है क्योंकि परिणाम स्वयं की, मैं की अपूर्णता को स्पष्ट करता है। पूर्ण में समाविष्ट रहने के कारण प्रकृति में पूर्णता के लिए तृषा है। यही तृषा क्रम से विकास क्रम में अनेक यथास्थितियाँ सम्पूर्णता के साथ और "पूर्णता त्रय" पर्यन्त विकास व जागृति को स्पष्ट करता है। इसी जागृति क्रम में मानव जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अध्ययन करने योग्य अवसर को प्राप्त किया है। इस अवसर का प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभवपूर्वक प्रमाणित हो जाना ही सफलता है। चैतन्य क्रिया जागृति सहज प्रमाण प्रस्तुत करता है न कि जड़ क्रिया। अनुभवपूर्ण जीवन ही सफल जीवन है। मानव में अनुभव का अभाव नहीं है। स्थापित मूल्यानुभूति पर्यन्त मानव भ्रम से मुक्त नहीं है। मूल्य त्रयानुभूति की सर्वसुलभता ही शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है। मौलिक शिक्षा अर्थात् मानवीय शिक्षा अर्थात् चेतना विकास मूल्य शिक्षा सहज सर्वसुलभता पर्यन्त सामाजिकता एक कल्पना ही है। उसकी सहकारिता शिक्षा की पूर्णता एवं उसकी सर्वसुलभता पर निर्भर करता है। यही वह समय है जिसमें मानव मौलिक शिक्षा की सर्वसुलभता के लिए बाध्य हो गया है। राज्यनैतिक एवं धर्मनैतिक संस्थाएं सामाजिकता को प्रस्थापित करने के लिए दृढ़ संकल्पि हो रहे हैं। सामाजिकता में परस्पर सबका संबंध संपर्क सबसे ही है। यही लक्षण सामाजिकता एवं अखण्ड समाजोदय की संभावना को स्पष्ट करता है।

मानव जीवन का विधिवत् कार्यक्रम धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक रूप में स्पष्ट है। मानव का ऐसा कोई विधिवत् कार्यक्रम नहीं है जो इन तीनों से संबद्ध न हो। नीति, पद्धति एवं प्रणाली का संयुक्त रूप ही व्यवस्था है। विश्वसन एवं आश्वसन को स्थायीभूत करने के लिए की गई प्रक्रिया ही व्यवस्था का प्रत्यक्ष रूप है। व्यवस्था विहीन जीवन वांछित को पाने में असमर्थ रहेगा। व्यवस्था विहीनता अथवा व्यवस्था में अपूर्णता जीवन की पूर्णता के अर्थ में प्रयोजित नहीं होती है। यही प्रत्येक जीवन में अपूर्णता है। जीवन में अपूर्णता ही जीवन के कार्यक्रम में अपूर्णता है। जीवन के कार्यक्रम में अपूर्णता ही भ्रम एवं समस्या है। भ्रम एवं समस्या ही व्यवस्था में अपूर्णता है। व्यवस्था को मानव ही अनुभव एवं व्यवहारपूर्वक प्रमाणित करता है। फलत: उसे सर्वसुलभ बनाने के लिए प्रस्थापना, स्थापना एवं संचालन करता है जो चरितार्थता का स्पष्ट रूप है। प्रत्येक मानव नियति क्रम व्यवस्था का अनुभव करने के लिए अवसर रहते हुए योग्यता, पात्रता न होने के कारण शिक्षा एवं व्यवस्था में समर्पित होता है या ऐसे अधिकार सम्पन्न अधिकारी होने के लिए समर्पित होते है। हर मानव संतान शिक्षा-संस्कार पूर्वक ही प्रबुद्ध होने की व्यवस्था है। यह नियति है। क्योंकि मानव ज्ञानावस्था की इकाई है। ज्ञान परंपरा से ही सर्वसुलभ होता है। किसी मानव को ज्ञान की तृषा हो वह तृषा परंपरा में सुलभ न हो, ऐसे स्थिति में कोई मानव संतान ही उसकी भरपाई करता हुआ घटना

विधि से स्पष्ट हुआ है। इसी क्रम में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन बनाम मध्यस्थ दर्शन (सहअस्तित्ववाद) मानवीय शिक्षा-दीक्षा व्यवस्था परंपरा में समावेश होने अर्पित है। शिक्षा एवं व्यवस्था केवल प्रबुद्धता की प्रबोधन एवं संरक्षण प्रक्रिया है। यह विभूति मूलतः किसी मानव की ही अनुभूति है। अनुभूति ही वरीय प्रमाण है। ऐसी शिक्षा एवं व्यवस्था संहिता मानव के समग्र जीवन के प्रति अनुभव पूत होते तक उनमें परिवर्तन, परिमार्जन के लिए समुचित प्रक्रिया है। साथ ही वह दायी एवं उत्तरदायी भी है। ऐसी पूर्णता का प्रमाण अखण्ड समाज है जिसके लिए धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक एकरूपता पूर्वक दश सोपनीय व्यवस्था में एकात्मकता को प्रदान करने योग्य सक्षम दर्शन संहिता ही आधार है। यही प्रत्येक मानव में मन-तन-धनात्मक अर्थ की सर्ववांछित सुरक्षा एवं सदुपयोगात्मक क्षमता को प्रादुर्भावित करता है। साथ ही सर्वसुलभता भी करता है। फलतः अखण्ड समाज की सिद्धि होती है।

मानव में ज्ञान शक्ति की अर्थात् आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभव प्रमाण शक्ति ही धीरता, वीरता एवं उदारता तथा दया, कृपा एवं करुणा है। विषम जीवन जीव चेतनावश पराभवित, सम जीवन (जागृत मानव) समाधानित एवं मध्यस्थ जीवन सफलता से परिपूर्ण सिद्ध होता है। मानव मध्यस्थ जीवन के लिए ही प्रमाण होना जागृति है। असफलता मानव की वांछित घटना या उपलब्धि नहीं है। सफलता ही मानव की चिर तृषा, वाँछा, आकाँक्षा, इच्छा एवं संकल्प है। सफलता के बिना मानव जीवन अपूर्णता को स्पष्ट करता है। अपूर्णता ही पूर्णता के लिए बाध्यता है। अंतरंग अर्थात् आशा, विचार, इच्छा एवं संकल्प तथा चतुरायाम की परस्परता में और बहिरंग अर्थात् पाँचों स्थितियों की परस्परता में विषमता ही अंतर्बहिर्विरोध है। यही असामाजिकता, अमानवीयता, वर्ग एवं संकीर्ण सीमान्तवर्ती संगठन का, समता ही सामाजिकता अर्थात् वर्ग विहीनता का एवं मध्यस्थ में स्वतंत्रता का अनुभव प्रमाण सिद्ध है। दिव्य मानव में ही धार्मिक, आर्थिक एवं राज्य नीतियाँ स्वतंत्रता पूर्वक चरितार्थ होती हैं। वे देव मानव में संयमता पूर्वक सफल होती हैं। मानवीयतापूर्ण मानव में समाधान पूर्वक सफल एवं चरितार्थ होती है। यह मानवीयतापूर्ण शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति से सर्वसुलभ एवं चरितार्थ होती है अन्यथा असफल होती है।

अन्तर्विरोध विहीनता ही मध्यस्थता है। यही संतुलन, समाधान, प्रत्यावर्तन, सतर्कता, सजगता एवं स्वतंत्रता है। अंतर्विरोध परस्पर मन-वृत्ति-चित्त-बुद्धि, चतुरायाम में तथा दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था में विश्लेषित है। यही गुणात्मक परिवर्तन के लिए बाध्यता है। मानव के अंतर्विरोध से मुक्त होने का आद्यान्त लक्षण उपाय एवं उपलब्धि ही है। साथ ही मानव अंतर्विरोध में, से, के लिए प्रयासी नहीं है। संपूर्ण प्रयास विरोध मुक्ति के अर्थ में ही

है। अंतर्विरोध की अस्वीकृति प्रत्येक व्यक्ति में दृष्टव्य है। यही सत्यता विरोध का दमन करती है। विरोध, विजय, सफलता एवं चरितार्थता जागृति क्रम में गण्य है। जागृति क्रम में अवरोधता ही विरोध, जागृति की ओर गतिशीलता ही विजय, क्रिया पूर्णता ही सफलता तथा आचरण पूर्णता ही जीवन चरितार्थता है। जागृति क्रम शाश्वत है। विकास में बाधा ही द्रोह भ्रमवश उसके निराकरण हेतु की गई प्रक्रिया ही विद्रोह है। द्रोह का विद्रोह भावी है। प्रिय-हित-लाभ सीमान्तवर्ती दृष्टि से किया गया निर्णय एवं क्रियाकलाप अंतर्विरोध से मुक्त नहीं है। इन सबका न्याय सम्मत होना ही अंतर्विरोध से मुक्ति है। न्याय सम्मति तब तक संभव नहीं है जब तक स्थापित मूल्यानुभूति एवं उसका निर्वहन न हो जाय। न्याय ही व्यवहार में मध्यस्थता है। मध्यस्थता ही सम और विषम अर्थात् समातिरेक और विषमातिरेक को संतुलित एवं आत्मसात् करता है। सम-विषम दोनों मध्यस्थता में आश्रित एवं संरक्षित हैं। यही सत्यता मध्यस्थता एवं मध्यस्थ जीवन की प्रतिष्ठा, महत्ता एवं अपरिहार्यता को स्पष्ट करती है। आचरण एवं व्यवहार में मध्यस्थता ही बहिर्विरोध अर्थात् पाँचों स्थितियों में विरोध का शमन करता है। विचार में मध्यस्थता चारों आयामों के अंतर्विरोध का उन्मूलन करती है। अनुभव में मध्यस्थता परमानन्द को उद्गमित करती है। चैतन्य प्रकृति में मानवीयतापूर्ण मानव एवं जागृत मानव ही अतंर्विरोध से मुक्त होता है। यही जागृति क्रम की उपलब्धि एवं गरिमा है। विरोध विहीनता ही मानव का अभीष्ट है। विरोध विहीन क्षमता ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान एवं स्नेह जैसे स्थापित मूल्यों का अनुभव करती हैं। फलत: सौम्यता, सरलता, पूज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, उदारता, सौहार्द्रता एवं निष्ठा जैसे मूल्यों को मानव अभिव्यक्त करता है। यही विश्वास का परिचय है। ऐसे विश्वास को सर्वसुलभ बनाना ही शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है।

34.

मानव के संपूर्ण संबंध गुणात्मक परिवर्तन के लिए सहायक हैं।

प्रत्येक मानव, मानव से न्याय की याचना करता ही है। यही गुणात्मक परिवर्तन की तृषा एवं उसका द्योतक है। गुणात्मक परिवर्तन ही जागृति है। जागृति स्वयं में संतुलन, समाधान एवं नियंत्रण है, जो जीवन का अभीष्ट है। जागृति क्रम में प्रत्येक मानव सुख सहज अपेक्षा करता है। इसके मूल में सत्यता यही है कि प्रत्येक मानव अधिकाधिक विकास की ओर प्रगतित होना चाहता है। यह साम्य आकाँक्षा भी है। साथ ही मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए बाध्य है। व्यवहार विहीन स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन की संभावना नहीं है।

मानव में स्थापित मूल्यानुभूति पूर्वक ही गुणात्मक परिवर्तन होता है। इससे यह स्पष्ट हो पाता है कि प्रत्येक संबंध में निहित मूल्य निर्वाह ही जागृति का तथा उसकी उपेक्षा ही ह्रास का प्रधान कारण है। प्रत्येक संबंध में परस्पर न्याय सहज उपलब्धि ही गुणात्मक परिवर्तन का आधार, प्रक्रिया एवं गति है। न्याय का अभाव ही द्रोह, शोषण, वंचना, प्रवंचना के रूप में अभिव्यक्त होता है। यही कालांतर में असहनीय होकर विद्रोह एवं विरोध के रूप में प्रकट होता है। यही संघर्ष है। संघर्ष जनाकाँक्षा एवं उपलब्धि के मध्य में पायी जाने वाली रिक्तता ही है। इस रिक्तता को भली प्रकार से अरिक्तता में परिवर्तित करने का उपाय केवल मानवीयतापूर्ण शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति है। सार्थक चरितार्थ वर्तमान होता है। ऐसी व्यवस्था से ही प्रत्येक संबंध में न्याय प्रदायी एवं ग्राही क्षमता का प्रमाण होता है। फलत: सर्वमंगल एवं नित्य शुभोदय होता है।

''**प्राकृतिक एवं वैकृतिक वातावरण, अध्ययन एवं संस्कारों के योगफल से प्रवृत्ति, वृत्ति एवं निवृत्ति का उत्कर्ष होता है।**'' उत्थान की ओर गतिशीलता ही उत्कर्ष है। उत्थान मात्र जागृति है। उत्थान की ओर बाध्यता एवं अनिवार्यता, पतन की ओर भ्रम एवं विवशता होती है। भ्रम अजागृति का द्योतक है। इसके विपरीत अधिक जागृत मानव ही कम जागृत के विकास में सहायक हो जाना ही सामाजिकता एवं सौजन्यता है। समाधान एवं अनुभूति क्षमता ही कम जागृत के जागृति में सहायक होने का धैर्य, साहस, विवेक एवं उदारतापूर्ण व्यवहार है। ऐसी परिमार्जित क्षमता के अभाव में उसका कम विकसित के विकास में सहायक होना संभव नहीं है। जागृत जीवन सहज कार्यक्रम के विधिवत् क्रियान्वयन होने की स्थिति में दूसरों को दृढ़ता प्रदान करना सहज है। जब मानव मानवीयता से परिपूर्ण, समृद्ध एवं समाधानित होता है तभी अन्य मानवों में ऐसे गुणों को विकास करने के लिए वह सहायक होता है। अमानवीयता पूर्ण मानव कितना भी रूपवान, बलवान, धनवान एवं पदवान हो जाय, वह अजागृत के जागृति के लिए सहयोगी नहीं हो पाता है। इसके विपरीत में मानवीयता एवं अतिमानवीयता पूर्ण मानव कितना भी न्यूनतम रूप, बल, धन एवं पद से सम्पन्न क्यों न हो उनका अजागृत के जागृति में सहायक होना पाया जाता है। जैसे अत्यन्त कुरूप मानव भी जब व्यक्तित्व एवं प्रतिभा से सम्पन्न होता है तब उनसे अधिकाधिक रूपवान, बलवान, धनवान एवं पदवान को शिक्षा एवं उपदेश मिलता है। उसे वे ग्रहण करते हुए देखे जाते हैं। इस प्रमाण से यह सिद्ध हो जाता है कि बुद्धि अन्य चारों अर्थात् रूप, बल, धन एवं पद से वरीय है। व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का मूल रूप बौद्धिक क्षमता अर्थात् प्रबुद्धता ही है। बौद्धिक क्षमता में ही गुणात्मक परिवर्तन होता है न कि रूप, बल, धन व पद में। फलत: व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन स्थापित होता है। व्यक्तित्व विहार, व्यवहार एवं आहार में प्रकट होता है। प्रतिभा ज्ञान-विवेक-विज्ञान पूर्वक व्यवस्था एवं उत्पादन अर्थात् निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य में

प्रत्यक्ष होती है। इन दोनों का संतुलन ही सहअस्तित्व का रूप है। निर्विरोधिता ही जीवन का अभीष्ट है। यही अभ्युदय एवं निरन्तर शुभोदय का उदय है।

35.

कुशलता, निपुणता एवं पाण्डित्य ही ज्ञानावस्था की मूल पूंजी है।

निपुणता व कुशलता का प्राकृतिक ऐश्वर्य पर नियोजन बराबर उपयोगिता एवं कला मूल्य की स्थापना है। कुशलता एवं पाण्डित्य का व्यवहार में नियोजन बराबर शिष्ट मूल्य का प्रकटन एवं निर्वाह है। पाण्डित्य का अनुभव मूलक विधि से नियोजन बराबर मानव मूल्य व स्थापित मूल्यों का निर्वाह है। पाण्डित्य से परिपूर्ण होने से ही धीरता, वीरता एवं उदारता पूर्ण स्वभाव व्यवहृत होता है। निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य से परिपूर्ण होने का अवसर प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान है। जागृत व्यक्ति अजागृत व्यक्ति को कुशलता, निपुणता, पाण्डित्य प्राप्त कराने के लिए दायी है। उसे उससे वंचित रखना सामाजिक द्रोह है अर्थात् अजागृत के विकास में अवरोध है। विकास में अवरोध ही आतंक, भय एवं सशंकता है। यही मानव में अंततोगत्वा प्रताड़ना है। इस प्रताड़ना से परित्रस्त मानव का विकास अर्थात् समाधान एवं समृद्धि के लिए आतुर-कातुर एवं आकुल-व्याकुल होना स्वाभाविक है। आवेश ही षड्विकार के रूप में बहिर्गत होता है जो काम, क्रोध, लोभ मोह, मद एवं मात्सर्य है। ये आवेश मानव के संतुलित रहने में बाधक हैँ इनमें से किसी एक से मानव के संबद्ध होने मात्र से ही क्रम से एक के साथ एक आवेश उदयमान होते हैं, जिनको प्रत्यक्ष में रूप में देखा जाता है। पाण्डित्य संज्ञानीयता पूर्ण संचेतना का अध्ययन है। संचेतनशीलता का तात्पर्य ही पूर्णता को पाने की उत्कंठा है। पूर्णता सतर्कता एवं सजगता के रूप में प्रत्यक्ष होती है। पूर्णता के बिना मानव आश्वस्त व विश्वस्त नहीं है। संचेतना ही दर्शन क्षमता है। दर्शन क्षमता ही वातावरण क्रिया संकेत ग्रहण एवं प्रसारण प्रक्रिया है। यही मानव को स्वयं की विवेचना के लिए बाध्य करती है। वातावरणस्थ इकाईयों के विश्लेषण की श्रृखंला में स्वयं के विश्लेषण के लिए बाध्यता होती है, जिसे प्रत्येक स्तर में प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता है। मानव जीवन का अतिमहत्वपूर्ण पक्ष संज्ञानशीलता से नियंत्रित संवेदनशीलता ही है। संचेतनावश ही दूरादूर, कालाकाल, उचितानुचित, विहिताविहित, नित्यानित्य, सत्यासत्य, न्यायान्याय, धर्माधर्म की दर्शन एवं अनुभव क्षमता है। संचेतना का सर्वोच्च प्रयोजन अनुभव क्षमता है। अनुभव क्षमता ही जागृति है। अनुभव से अधिक आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता से अधिक के लिए प्रयास नहीं है, यही अक्षुण्ण परंपरा है, जो प्रसिद्ध है। संवेदनशीलता व संज्ञानशीलता ही चैतन्य क्रिया की विशेषता है

जिसमें आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति क्रिया संपन्न होती है। अस्तित्वपूर्णता की अनुभूति होती है। यही स्थिति सत्य में अनुभूति है। स्थितिशीलता में ही विकास क्रम दृष्टव्य है। स्थितिशील प्रकृति का सत्ता में संपृक्त रहना ही सहअस्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है। व्यवसाय में नियम, व्यवहार में न्याय, विचार में धर्म एवं अनुभूति में सत्य है। वस्तु स्थिति एवं वस्तुगत सत्य का दर्शन होता है। यह दर्शन करने वाली एवं अनुभव करने वाली क्रिया चैतन्य ही है। चैतन्य प्रकृति ही ज्ञानावस्था में जागृति पूर्वक पूर्णता को प्रकट करता है। इसी क्षमता में सजगता एवं सतर्कता का प्रमाण होना प्रसिद्ध है।

''पाण्डित्य अनुभूति का, कुशलता शिष्टता एवं कला पक्ष का, निपुणता उपयोगिता एवं यांत्रिकता का अध्ययन व प्रमाण है।'' यह अध्ययन समुच्चय है। यही क्रम से समृद्धि, समाधान एवं अभयता है। यही मानव का आद्यान्त अभीष्ट है। निपुणता एवं कुशलता ही व्यक्तित्व तथा पाण्डित्य ही प्रतिभा है। व्यक्तित्व विहीन प्रतिभा सामाजिक सिद्ध नहीं होती है। प्रतिभा विहीन व्यक्तित्व समृद्ध नहीं होता है। व्यक्तित्व और प्रतिभा की संतुलित उपलब्धि के बिना जीवन सफल नहीं है। निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य क्रमश: संवेदनशीलता एवं संज्ञानशीलता की ही अभिव्यक्ति एवं उपलब्धि है। यह तत्वत: अनुभव मूलक गति की गरिमा है। जीवावस्था में संवेदनशीलता का प्रकाशन है। पदार्थावस्था एवं प्राणावस्था में कम्पनात्मक गति रहती है। निपुणता का प्रकाशन जीवावस्था व जीवावस्था के पूर्व स्वेदज प्रकृति से आंरभ होता है। प्रत्येक जीव किसी एक क्रिया में निपुण होता है। जैसे – चींटी, दीमक, मधुमक्खी संग्रह एवं आवास रचना में, व्याघ्र हिंसा कार्य में, पक्षी उड़ान भरने में, मेंढक ॠतु को पहचानने में विशेष निपुणता को प्रकट करते है। साथ ही व्याघ्र, चींटी या पक्षी का कार्य करने में असमर्थ सिद्ध हुआ है। इस सत्यता से यह स्पष्ट हो जाता है कि आवश्यकता के आधार पर जीवन ही आवश्यकता को उपलब्ध करने का प्रयास जीवावस्था से ही आरम्भ हुआ है। निपुणता का प्रारूप इसी अवस्था में प्रत्यक्ष हुआ है। इस प्रकार प्रत्येक जीव किसी न किसी क्रिया में निपुणता को प्रकट करता रहा है जबकि मानव अनेक क्रियाओं में निपुण होने का अधिकारी है और होता है। मानव में निपुणता की अभिव्यक्ति उपयोगिता मूल्य को स्थापित करने में स्पष्ट हुई है। यह क्रम से प्रकृति के विकास एवं जागृति क्रम में पायी जाने वाली उपलब्धि है। **परंपरा ही इतिहास को स्पष्ट करती है।** परंपरा रूपी इतिहास में विश्वास होना स्वाभाविक है जैसे यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता सहज उद्घाटन जागृति को जागृति के रूप में पहचाना जाता है। पीढ़ी से पीढ़ी में स्वीकार होता है। दूसरा हर पीढ़ी में जागृति स्वीकृत होता है। इस वर्तमान में परंपरा में न होते हुए भी यह अपेक्षा के रूप में सर्वाधिक मानव में होना पाया जाता है।

अनावश्यक घटनाओं के इतिहास विगत होते जाते हैं, वर्तमान में रहते हैं। विवशतावश युद्ध की तैयारी भी की जाती है, दोहराना भी पाया जाता है। यही स्पष्ट घटनाएं मानव को प्रेरित करता है कि इससे मुक्ति कैसे हो। इसलिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद की प्रस्तुति हुई।

पदार्थावस्था में रूप प्रधान परंपरा, प्राणावस्था में गुण प्रधान परंपरा, जीवावस्था में स्वभाव प्रधान परंपरा एवं ज्ञानावस्था में धर्म प्रधान परंपरा प्रसिद्ध है। ये चारों परंपराएं क्रमशः इन चारों अवस्थाओं के लिए आधार है। जबकि प्रत्येक अवस्था की प्रत्येक इकाई में रूप-गुण-स्वभाव-धर्म अविभाज्य रूप में समाये रहते हैं। यही अवस्था विशेष का इतिहास है। अभिव्यक्ति ही परंपरा है। विकास के क्रम में अवस्थाएं दृष्टव्य हैं। अवस्थानुरूप ही संप्रेषणा, प्रकाशन व अभिव्यक्ति के लिए प्रवृत्ति हैं। इन प्रवृत्तियों का प्रकटन सहअस्तित्व सहज वातावरण है। अवस्थानुरूपीय प्रकाशन इकाई में स्वीकृत होता है। फलतः प्रकाशन होती है। इसी क्रम में परंपरा एवं इतिहास की श्रृंखला होती है। मनुष्येत्तर तीनों अवस्था की सृष्टि में पारंपरिक वैविध्यता नहीं है। जबकि मानव का अनेक परंपरा में होना उसकी वैविध्यता को स्पष्ट करता है। प्रकृति की इस ऐतिहासिक स्थिति से ज्ञात होता है कि मनुष्येत्तर सभी सृष्टि अपनी परंपरा से विचलित नहीं है। साथ ही मानव का भ्रमवश विचलित होना पाया जा रहा है। इसका साक्ष्य अनेक परंपरा, वर्ग, संघर्ष एवं युद्ध है या युद्ध में तत्परता है। मानव की विशुद्ध परंपरा जागृति मूलक धर्म पर आधारित है। ज्ञानावस्था का धर्म केवल सुख है। इसी की चार स्थितियाँ सुख, शांति, संतोष, आनंद के रूप में वर्णित हैं। ''मानव धर्म एक, समाधान अनेक।'' प्रत्येक समाधान का तर्क और ऊहा पर आधारित होना आवश्यक है। ऊहा का तात्पर्य कल्पना से है। तर्क का प्रतितर्क, ऊहा की प्रत्यूहा मानव में पाये जाने वाले प्रसव एवं तदर्थ प्राप्तोदय (फल-परिणाम) का योगफल है। अनुभव से अधिक उदय तथा उदयानुषंगी विचार प्रसव मानव में प्रसिद्ध है। संपूर्ण उदय विस्तार अनुमान क्रिया है। इसी विस्तार की पृष्ठभूमि पर और आशा, विचार, इच्छा एवं कल्पना, आकाँक्षा का प्रसवित होना पाया जाता है। यही प्रत्यूहा एवं प्रतितर्क की प्रक्रिया है। यह प्रत्येक मानव के लिए प्राप्तभावी है। यही मानव के लिए विशाल अवसर है। मानव परम्परा शुद्धतः समाधान रूपी धर्म पर आधारित होने से ही उसकी ऐतिहासिक परम्परा सिद्ध होती है। मानव में धर्म साम्यता मानवीयता सहज वैभव में स्पष्ट है। अस्तु, मानवीयता पूर्ण संस्कृति, सभ्यता एवं विधि, व्यवस्था की प्रस्थापना, स्थापना, निर्वाह, आचरण, व्यवहार एवं उत्पादन से सम्पन्न होना ही जागृत मानव परंपरा का प्रत्यक्ष रूप है। यही गुणात्मक परिवर्तन के लिए प्रेरणादायी इतिहास को स्थापित करता है। ऐतिहासिकता प्रत्येक मानव का अभीष्ट दायित्व सम्पन्नता से सफल है। मानव के लिए यही यश कीर्ति है। मानव जीवन की सफलता इसी में सिद्ध होती है। मानव का समुदाय में वैविध्यता ही विषमता का द्योतक है। परस्पर मानव में विषमता शुभोदय का कारण नहीं है।

सर्वमंगल एवं शुभोदय इतिहास जागृति संबद्ध होता है, यही संबद्धता परंपरा है। इसी परंपरा में जागृति सिद्ध अवस्था अनुरूप प्रकटन का होना ही स्वस्थ परंपरा का लक्षण है। मानव में मानवीयता का प्रकटन होना ही स्वस्थ परंपरा है। विशुद्ध जागृत मानव परंपरा वास्तविकताओं का अनुसरण, अनुगमन एवं अनुसंधान है। गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक गति में द्रोह और विद्रोह का अत्याभाव है। यही सत्यता स्वस्थ परंपरा का साक्ष्य है। ऐसी स्वस्थ परंपरा में ही निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य की संयुक्त चरितार्थता होती है। निपुणता एवं कुशलता के संयुक्त योगफल में उपयोगिता एवं कला मूल्य सिद्ध होते हैं। निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य की संयुक्त चरितार्थता में भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान सर्वसुलभ है। यही मानव इतिहास की स्थापना एवं अक्षुण्णता है। निपुणता एवं कुशलता ही तकनीकी शिक्षा के रूप में उपलब्ध है। संपूर्ण तकनीकी शिक्षा मानव के आकाँक्षाद्वय संबंधी उपयोगिता को प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन स्थापित करने के लिए सहज-सुलभ उपाय, क्रिया, प्रक्रिया, पद्धति एवं प्रणाली है जिसे मानव करतलगत करता है। इसकी आद्यांत उपलब्धि अर्थात् तकनीकी शिक्षा की उपलब्धि उपयोगिता एवं कला ही है। मानव शुद्धत: संवेदनशील होते हुए भी यांत्रिक साधनों से सम्पन्न होना चाहता है। संवेदनशीलता में गुणात्मक परिवर्तन की क्रम श्रृखंला में यांत्रिक तत्व साधन सिद्ध होते हैं। इसी सत्यतावश संवेदनशीलता एवं यांत्रिकता के संदर्भ में मानव अध्ययन करने के लिए बाध्य है। अध्ययन पूर्वक शोध तब तक भावी है जब तक अज्ञात एवं अप्राप्ति स्थिति रहती है। यांत्रिकता का अध्ययन निपुणता एवं कुशलता की सीमा में सीमित है जबकि संवेदनशीलता सहित संज्ञानशीयता के अर्थ में अध्ययन पाण्डित्य, कुशलता एवं निपुणता समुच्चय में, से, के लिये है। संज्ञानीयतापूर्ण संवेनदशीलता का उद्गमन अनुभव में, से, के लिये है। सुख मानव धर्म में, से, के लिये है। मूल्य सुख में, से, के लिये है। मानव धर्म मानवीय परंपरा में, से, के लिए है। मानवीय परंपरा क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता में, से, के लिए है। पूर्णता, पूर्णता की निरंतरता में, से, के लिए है। ''पूर्णता त्रय'' की निरंतरता ही जागृति का वैभव है। सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति का वैभव सहअस्तित्व का प्रत्यक्ष रूप में स्पष्ट होता है।

प्रकृति का वैभव संवेदनशीलता के उत्कर्ष, परमोत्कर्ष सम्पन्नता से पूर्ण होता है। संवेदनशीलता का गुणात्मक परिवर्तन ही उसका उत्कर्ष है। संचेतनशीलता की चरमोत्कृष्ट उपलब्धि अनुभूति है या उसका प्रयोजन केवल अनुभवमयता है। अनुभवमयता ही तन्मयता है। उसकी विशालता यही है। यही सतर्कता एवं सजगता से संपन्न होती है। पूर्णानुभूति ही पूर्ण विशालता है। यही परमानन्द है, जिसके लिए ज्ञानावस्था की प्रत्येक इकाई प्यासी है। यही जीवन की अक्षुण्णता है। ऐसे जीवन के लिए अनादि काल से प्रयास हुआ है। इसकी सफलता मानव की मानवीयता से परिपूर्ण होने से है। इसका साक्ष्य व्यवहार में व्यक्तित्व एवं प्रतिभा

के संतुलित उदय से है। यह उदय शिक्षा एवं व्यवस्था से संपन्न होता है।

36.

समाधान, समृद्धि, अभय एवं सहअस्तित्व में अनुभव मानव धर्म की चरितार्थता है।

ये चारों मानव धर्म परंपरा के अविभाज्य तथ्य हैं। विचार शक्ति का प्रसारण ही चैतन्य क्रिया की स्वाभाविक प्रक्रिया है। विवेचना के अर्थ में विचार चरितार्थ होता है। किसी के भी प्रति पूर्ण विवेचना हो जाना ही समाधान है। विवेचना उसी की होती है जिसमें एक से अधिक तत्व, गुण एवं स्वभाव सम्मिलित हों या अपेक्षाकृत हों। विश्लेषण सत्ता में संपृक्त प्रकृति की स्थिति से संबद्ध है। सत्ता गति एवं तरंग विहीन होने के कारण, अमूर्त होने के कारण अथवा प्रकृति का आधार होने के कारण इसका विश्लेषण व्यापक पारगामी, पारदर्शी ही है। इसमें ज्ञान और अनुभूति ही प्रमाणित होता है। मानव चैतन्य प्रकृति ही जागृति पूर्वक सत्ता में अनुभूत प्रमाण को प्राप्त करता है। चैतन्य प्रकृति के मानव में अनुभव संभावना सन्निहित है। यह क्रम से जीवावस्था से भ्रांत पशु मानव एवं राक्षस मानव में, भ्रांताभ्रांत मानव में, निर्भ्रांत देव मानव एवं दिव्य मानव में प्रमाण रूप में दृष्टव्य है। मानव ने ही इन पाँचों स्थितियों में जागृति क्रम जागृति सहज व्यवस्थात्मक सत्यता को अभिव्यक्त किया है। मानव परंपरा का स्वधर्मीयता के अतिरिक्त ऐतिहासिक होना संभव नहीं है। इतिहास ही अक्षुण्णता का साक्षी है और उसके आनुषंगिक कार्यक्रम ही विश्वास है। जागृति सहज इतिहास संबद्ध कार्यक्रम के बिना चरितार्थता एवं योजना के प्रति अथवा कार्यक्रम के प्रति विश्वास स्थापना संभव नहीं है। विश्वास के अभाव में निष्ठा का होना नहीं पाया जाता है। निष्ठा होने के लिए विश्वास का होना अनिवार्य है। विश्वास ही साम्य मूल्य है। विश्वास विहीन धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक कार्यक्रम सफल नहीं होता। **असफलता इतिहास नहीं है। वह एक अवांछित व अस्वीकृत घटना है। सफलता की परंपरा होती है। असफलता की परंपरा नहीं होती है। सफलता के क्रम में ही गुणात्मक परिवर्तन संभव है। असफलता का कोई क्रम नहीं होता, अपितु व्यतिक्रम होता है।** व्यतिक्रम ही भ्रम है। इस तथ्य से सिद्ध हो जाता है कि असफलता गुणात्मक परिवर्तन नहीं है। इसके स्थान पर वह प्रतिक्रान्ति है। ह्रास अपेक्षाकृत व्यतिक्रम ही है। क्रम एवं व्यतिक्रम दोनों ही नियम से संरक्षित हैं।

मानव में ही समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में अनुभव प्रमाण पर अधिकार, व्यवहार में संयमता, विचार में स्वतंत्रता एवं अनुभव ''पूर्ण'' स्वत्व है। यही मानव धर्मीयता के प्रसारण का प्रत्यक्ष साक्ष्य है। मानव संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकात्मता

एवं मानव की पाँचों स्थितियों की एकरूपता में ही मानव धर्म की अक्षुण्णता होती है।

37.

व्यक्ति का व्यक्तित्व न्याय प्रदायी क्षमता से प्रदर्शित है।

प्रत्येक व्यक्ति मानवीय धर्म को प्रसारित एवं प्रमाणित करने के लिए इच्छुक है। धर्मीयता विहीन इकाई नहीं है। हर जागृत मानव का आचरण ही मानव परंपरा में आचरण के लिए शिक्षा है। प्रत्येक मानव का आचरण दूसरे के ज्ञातव्य में आता है। प्रत्येक मानव वातावरणस्थ क्रियाओं के संकेत को किसी न किसी अंश में ग्रहण करने योग्य क्षमता से सम्पन्न है। शिक्षा परंपरा ही प्रधानत: संस्कृति का प्रथम सोपान है। यही न्यायपूर्ण व्यवहार, संयत आचरण एवं नियम पूर्ण उत्पादन के लिए समुचित प्रोत्साहन, प्रेरणा, मार्गदर्शन, सहयोग एवं सहानुभूति पूर्ण कार्यक्रम को वहन पूर्वक अर्थात् निर्वाह पूर्वक स्पष्ट करती है। यही संस्कृति पूर्ण सभ्यता का अर्थ है। इसी से धीरता, वीरता एवं उदारता पूर्ण व्यवहार का प्रसव होता है। यही सामाजिक अभयता एवं अखण्डता का द्योतक है। यही सभ्यता है। सभ्यता के संरक्षण के लिए ही विधि व व्यवस्था का प्रभावशीलन है। यही ऐतिहासिक परंपरा सहज सूत्र है। यही जागृत जीवन परंपरा है। ऐसी ऐतिहासिक जीवन परंपरा में अपूर्णता की पूर्णता भावी है। यही ऐतिहासिकता की गरिमा है।

सफलता क्रम अथवा परंपरा ही पूर्णता को प्रदान करती है। ''पूर्णता त्रय'' स्पष्ट है ही। मानव में पूर्णता का प्रत्यक्ष रूप ही अखण्डता, सार्वभौमता, अभयता एवं समृद्धि है। यही जीवन तृप्ति एवं तृप्ति योग्य कार्यक्रम के लिए प्रेरणा स्रोत है। सामाजिक अखण्डता में ही अभयता सर्वसुलभ होती है। जीवन में तृप्ति ही स्वधर्मीयता पूर्ण प्रसारण का प्रधान लक्षण है। मानव संस्कृति ही सामाजिक अखण्डता, अभयता एवं समृद्धि को सिद्ध करती है।

''पाण्डित्य ही जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य की अनुभूति एवं शिष्ट मूल्य की अभिव्यक्ति है।'' प्रत्येक जागृत मानव जीवन सफलता सहज कामना से ओत-प्रोत है। प्रधानतया सफलता अनुभूति एवं शिष्टता ही है। यह अनुभव एवं व्यवहार सिद्ध प्रमाण है। अनुभूति विहीनता पूर्वक शिष्टता सहित जीवन सफलता का प्रमाण नहीं है। अनुभवशील या अनुभव पूर्ण हो, शिष्ट न हो इसका भी प्रमाण नहीं है। शिष्ट न होने में अनुभव का न होना ही है। साथ ही अनुभव का न होना ही शिष्ट न होना है। इसका निराकरण मानव धर्म से परिपूर्ण होना ही है जो अनुभव पूर्वक है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। मानव धर्म के अतिरिक्त सामाजिक अखण्डता का प्रमाण नहीं है। इसे स्थापित एवं संरक्षित करना ही शिक्षा

की गरिमा, प्रबुद्धता की महिमा, व्यवस्था में पारंगतता, जीवन में सार्थकता, भौमिक स्वर्गीयता, मानव में दैवीयता एवं दिव्यता, नित्य मंगलमयता एवं धर्ममय सफलता है। यही मानवीयता पूर्ण ''नीति त्रय'' का विस्तार है। यही प्रत्येक मानव में धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा एवं करुणात्मक वैभव को उद्‌गमित करता है साथ ही संरक्षण एवं संवर्धन करता है। यही मानव धर्म एवं संस्कृति की साम्य उपलब्धि है। वैभवता का प्रकटन मानवीयता में ही होता है। विभवता ही वैभव है। विवेकपूर्ण हो जाना ही वैभव है। विभव ही सफलता की परंपरा है। परंपरा ही संस्कृति है। परंपरा के बिना इतिहास नहीं है। इतिहास से संबद्ध हुए बिना वर्तमान में निष्ठा, भविष्य में विश्वास नहीं है। फलत: ऐसा वर्तमान पुन: इतिहास नहीं है। अस्तु, मानव का इतिहास मानवीयता से आरम्भ होता है एवं उसका निर्वाह होता है। साथ ही मानवीय परंपरा में उसकी अक्षुण्णता सिद्ध होती है। जागृति सहज वैभव ही जीवन में स्वर्ग है। यही समाधान, समृद्धि, अभयता एवं सहअस्तित्व है। यह प्राप्त अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा का प्रत्यक्ष परिणाम है। यही धर्मनीति एवं राज्यनीति का आधार एवं जीवन सहज चरितार्थता है। साथ ही न्यायान्याय, सत्यासत्य, धर्माधर्म दृष्टि की क्रियाशीलता है। ''ऐषणा त्रय'' एवं भ्रम मुक्ति जागृत मानव परंपरा है। जागृत मानव परंपरा ही अक्षुण्णता है जो प्रसिद्ध है। अमानवीयता की अक्षुण्णता संभव नहीं है। अमानवीय जीवन किसी मानव के वांछित, प्रत्याशित, आशित एवं सुयोजित आचरण की उपलब्धि नहीं है। प्रत्येक मानव मानवीयता पूर्ण जीवन में संक्रमित होना चाहता है। प्रत्येक मानव मानवीयता से परिपूर्ण होना चाहता है। प्रत्येक मानव मानवीयता की अक्षुण्णता चाहता है। ये सभी साक्ष्य यह निष्कर्षात्मक निर्णय प्रदान करते हैं कि मानव की पाँचों स्थितियाँ मानवीयता पूर्ण जीवन में, से, के लिए संक्रमित हो जायें। इस प्रेरणा के साधार एवं प्रमाणित होने के कारण संभावना एक अनिवार्यता के रूप में एवं अनिवार्यता व्यवहारान्वयन के रूप में समीचीन हुई है। अक्षुण्णता केवल समाधान, समृद्धि एवं अनुभूति परंपरा है। यही संस्कृति एवं सभ्यता की परंपरा है। यही इतिहासकारी है। अमानवीयतावादी आचरण, व्यवहार व संस्कृति इतिहासकारी नहीं है। **इतिहास वास्तविकता पर आधारित विकास जागृति सहज परंपरा है** अथवा पूर्णता की निरंतरता है। वास्तविकता समाधान में परिभाषित है न कि समस्या में। अमानवीयता में समस्या से अधिक उपलब्धि नहीं है। मानवीयता पूर्ण समाधान सहज प्रमाण ही उपलब्धि है। इस सत्यता से यह सिद्ध होता है कि राज्यनैतिक एवं धर्मनैतिक सभी संस्थाओं, व्यवस्था संहिताओं, प्रचार, शिक्षा, प्रदर्शन, प्रकाशन, कला, उत्पादन, उपभोग, वितरण, व्यवहार एवं आचरण की प्रक्रिया को मानवीयता पूर्ण सार्वभौम तथ्य में संबद्ध कर लेना ही अखण्ड सामाजिकता का एकमात्र उपाय या शरण है। इसकी अक्षुण्णता ही दृढ़ता है। यही इतिहास है। इतिहास ही गौरव है। गौरव ही स्वसम्मान व अन्य में विश्वास है। गौरव एवं विश्वास स्थापित मूल्यानुभूति है। मूल्यवत्ता के बिना गौरव संभव नहीं है। गौरव विहीन स्थिति

में क्रिया, व्यवहार, आचरण एवं दिशा में गुणात्मक परिवर्तन स्पष्ट नहीं होता है। फलत: स्थापित मूल्यानुभूति एवं सामाजिकता सिद्ध नहीं होती है। गौरवानुभूति के मूल में सहअस्तित्व सहज यथार्थता एवं वास्तविकता सहज ज्ञान परंपरा अर्थात् अनुभव परंपरा का होना आवश्यक है। यथार्थता एवं वास्तविकता अनुभूति ही है अथवा अनुभव सिद्ध प्रमाण है। अनुभव में, से, के लिए ही मानव सर्वथा, सर्वकाल देश में समर्पित होने के लिए बाध्य है अर्थात् शिक्षा पूर्वक आचरण करने के लिए तृषित है। इसी कारणवश मानव अनुभव परंपरा का गौरव करने के लिए अर्थात् पूर्णतया स्वीकृति पूर्वक अनुगमन एवं अनुसरण करने के लिए तत्पर है। इसके प्रमाण में उसके लिए उनमें प्रयास का अभाव नहीं है। **''यह इंगित कराता है कि इतिहास को गौरवमय बनाना, बनाए रखना, बनाते ही जाना मौलिक उपलब्धि की परंपरा है।''** यह उपलब्धि मानवीयता पूर्वक ही करतलगत एवं चरितार्थ होती है अन्यथा अमानवीयता पूर्वक चरितार्थ होने का प्रमाण नहीं है। प्रमाण विहीनता इतिहास नहीं है। अमानवीयता में जितने भी धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक घटनाएं हुई हैं, वे व्यक्ति का आचरण एवं परिवार का सहयोग उपलब्ध होते हुए भी ऐसे गौरवमय इतिहास को स्थापित करने में समर्थ नहीं हुई हैं, जिससे प्रमाण पूर्ण परंपरा सिद्ध हो सके। जैसे एक व्यक्ति जिसने अन्याय सहित अर्थात् अमानवीयता सहित व्यवहार किया हो, चाहे एक या अनेक परिवार उनमें दीनता, हीनता एवं क्रूरता को प्रोत्साहित क्यों न किए हों, चाहे एक या अनेक वर्ग प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ सीमावर्ती दृष्टि से शिक्षा एवं व्यवस्था को क्यों न प्रदान किये हों, फिर भी ये सब सफलता का प्रमाण स्थापित करने में असमर्थ रहे हैं। प्रमाण विहीनता सार्थक परम्परा नहीं है।

घटनाएं मानव के लिये प्रमाणित एवं प्रामाणिक होने के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। प्रामाणिकता अनुभव है। प्रमाण शिक्षा है। प्रत्येक दुर्घटना में भी एक सद्घटना की कल्पना, कामना, आकाँक्षा एवं आवश्यकता का मानव में प्रादुर्भाव होना पाया जाता है। यही ऐतिहासिकता के लिए भी प्रेरणा है। यह स्पष्ट है कि इतिहास का गौरव मानवीयता में ही संभव है। मानवीयता में इतिहास सहज सुलभ परंपरा है। सही एवं न्याय, निरोग एवं अनुकूल वातावरण, सामान्य गति एवं स्वभाव गति, महत्वाकाँक्षा एवं सामान्यकाँक्षा, अभयता एवं स्वतंत्रता, भाव एवं ज्ञान, सम्मान एवं आदर, सहअस्तित्व एवं समृद्धि, सत्य एवं धर्म तथा निर्भ्रान्ति एवं समाधान इन्हीं का इतिहास, प्रमाण एवं परंपरा प्रसिद्ध है। ये सब मानव में व्यक्तित्व एवं प्रतिभा में पाये जाने वाले अविभाज्य तथ्य हैं। इस प्रकार शुद्धत: व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का ही इतिहास होता है न कि व्यक्तित्व हीनता एवं प्रतिभा विहीनता का। इतिहास के प्रति गौरव, इतिहास विहीनता के प्रति घृणा एवं उपेक्षा का होना मानव में पाया जाता है।

38.

संपूर्ण अध्ययन अनुभूति, समाधान, सहअस्तित्व एवं समृद्धि के लिए ही है।

अनुभूति एवं समाधान विहीन अध्ययन, पठन-पाठन प्रकाशन, प्रदर्शन, कार्य, व्यवहार एवं आचरण मानवीयता को अभिव्यक्त करने तथा उसका संरक्षण करने में असमर्थ है। ये सब समस्याओं का निर्माण करने के लिए प्रक्रियायें हैं। समस्या का प्रचार समाधान नहीं है। हीनता-दीनता एवं क्रूरता का प्रचार समाधान नहीं है। नीचता, निष्ठुरता एवं शठता का प्रचार समाधान नहीं है। जो समाधान नहीं है वह इतिहास नहीं है। जो इतिहास नहीं है वह गौरव नहीं है। जो गौरव नहीं है वह जीवन का आधार नहीं है उससे कार्यक्रम सिद्धि नहीं है। जो कार्यक्रम सिद्धि नहीं है वह जीवन में गुणात्मक परिवर्तन का सहायक नहीं है। फलत: दिशा हीनता, भ्रम-भटकाव, अनिश्चयता-मोह, आलस्य-प्रमाद, निष्ठुरता-हठ, रोष-आक्रोश, अकर्मण्यता-अशिष्टता, भय-सशंकता एवं संदिग्धता पूर्वक तन-मन-धनात्मक अर्थ का अपव्यय होता हुआ देखा जाता है। अनुभव एवं समाधान का न होना ही व्यवहारिक एवं उत्पादक न होना है। फलत: सहअस्तित्व एवं समृद्धि का भी न होना है। समाधान समृद्धि, अनुभव एवं व्यवहार के अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा पर आधारित है। अनुभव एवं समाधान पूर्ण होना ही शिक्षा एवं व्यवस्था संहिता है। इन आधारों का अनुभव एवं समाधान ही शिक्षा व व्यवस्था का आद्यान्त लक्ष्य एवं कार्यक्रम के लिए आधार है। ये जब तक परिपूर्ण नहीं होते तब तक इनका सर्वसुलभ होना संभव नहीं है। समाधान एवं अनुभूति की सर्वसुलभता से ही सामाजिकता एवं उसकी अक्षुण्णता सिद्ध होती है। इसके लिए संपूर्ण शिक्षा एवं व्यवस्था संहिता को मानवीयता में परिवर्तित कर लेना ही एकमात्र उपाय है। जब तक व्यवहारिक संरक्षण नहीं, साथ ही शिक्षा भी सर्वसुलभ नहीं होती तब तक व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलन, संस्कृति एवं सभ्यता के संतुलन, विधि एवं व्यवस्था के संतुलन की अपेक्षा एक दुरुहता ही है। "दुरुहता ही रहस्य है।" रहस्य एक अनिश्चयता, सशंकता या भ्रम है। दुरुहता की स्थिति मानव के लिए गति एवं दिशा निर्देशन पूर्वक गुणात्मक परिवर्तन के लिए उपकारी सिद्ध नहीं हुई है। जबकि मानव जीवन में गुणात्मक परिवर्तन हेतु निश्चित दिशा एवं गति को प्रदान करना ही शिक्षा नीति-पद्धति-प्रणाली का एकमात्र उद्देश्य है, जिसमें ही उत्पादन क्षमता का निर्माण करने वाले समर्थ तत्वों का समाया रहना आवश्यक है। समर्थ शिक्षा ही गन्तव्य के लिए गति एवं विश्राम के लिए दिशा को अध्ययन पूर्वक स्पष्ट करती है। यही शिक्षा की गरिमा है। उसी से मानव में प्रगति एवं जागृति है। यही अभ्युदय का प्रधान लक्षण है। शिक्षा एवं व्यवस्था का संकल्प ही अभ्युदय है। अभ्युदय विहीन जीवन ही समस्या से ग्रस्त होना पाया जाता है। **जीवन के कार्यक्रम का**

आधार ही अध्ययन है। अध्ययन श्रवण, मनन, निदिध्यासन की संयुक्त प्रक्रिया है। निश्चित अवधारणा की स्थापन प्रक्रिया ही निदिध्यासन है। अवधारणा ही अनुमान की पराकाष्ठा एवं अनुभव के लिए उन्मुखता है। अवधारणा के अनन्तर ही अनुभव होता है। अनुभव एवं समाधान दोनों के ही न होने की स्थिति में अध्ययन नहीं है। वह केवल निराधार कल्पना है। जो अध्ययन नहीं है वह सब मानवीयता को प्रकट करने में समर्थ नहीं है। इसी सत्यतावश मानव समाधान एवं अनुभूति योग्य अध्ययन से परिपूर्ण होने के लिए बाध्य हुआ है। यह बाध्यता मानवीयता पूर्ण पद्धति से सफल अन्यथा असफल है।

''अनुभव एवं समाधान ही संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था में चरितार्थ होता है।'' यही जीवन में सफलता एवं स्वर्ग है। ऐसी स्थिति को पाने के लिए, पाने के उद्देश्य से अथवा पाने की आकाँक्षा से ही अनादिकाल से मानव प्रयासरत है। रत का गन्तव्य रति है। रति केवल अनुभवात्मक एवं सान्निध्यात्मक प्रमाणित होती है। अनुभूति केवल सत्ता में ''मूल्य त्रय'' की ही होती है। इसके अतिरिक्त अनुभूति के लिये और कोई तथ्य नहीं है। सान्निध्यात्मक रति जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति की परस्परता में होती है। इसके अतिरिक्त सान्निध्यात्मक रति के लिए और कोई वस्तु नहीं है। मानव के चारों आयामों एवं दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था की एकसूत्रता एवं एकात्मता समाधान एवं अनुभूति में, से, के लिए है। धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक की अन्योन्याश्रयता भी अनुभूति एवं समाधान ही है। धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक की अन्योन्याश्रयता भी अनुभूति एवं समाधान ही है। समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद एवं अनुभवात्मक अध्यात्मवाद भी अनुभूति एवं समाधान ही है। समाधान एवं अनुभूति के अभाव में मानव जीवन पराभवित, कुण्ठित एवं प्रतिक्रान्तित पाया जाता है। अर्थ समुच्चय का सदुपयोग एवं सुरक्षा क्रिया-प्रक्रिया भी अनुभव एवं समाधान में, से, के लिए है। मानव जीवन की आद्यान्त उपलब्धि अनुभव एवं समाधान ही है। तन-मन-धन की चरितार्थता अनुभव एवं समाधान में, से, के लिए है। प्रत्यक्ष रूप में अर्थ की विपुलता समाधान एवं सामाजिक व्यवहारीयता ही अनुभूति है। समाधान एवं अनुभूति के अभाव में वे दोनों उपलब्धियाँ प्राप्त नहीं होती है। अनुभव एवं समाधान का योगफल ही जीवन चरितार्थता है। यही दृढ़ता एवं अभयता है। अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा मानव का अभीष्ट है। यही इसकी सार्वभौमिकता का प्रमाण है। वास्तविकताएं सार्वभौमिक हैं। अर्थ का सदुपयोग शिष्टता की सीमा में प्रमाणित होता है। शिष्टताएं अनुभव में प्रमाणित होती हैं। प्रमाण विहीन जीवन के सफल होने की संभावना नहीं है। प्रमाण विहीन जीवन स्वयं में क्षोभ, खेद, तृष्णा एवं पिपासा है। यही वास्तविकता की ओर संक्रमित होने के लिए बाध्यता है। सफलता की संभावनाएं वास्तविकता पर आधारित प्रक्रिया, पद्धति एवं नीति हैं। वास्तविकताएं विकास क्रम में निःसृत सृष्टि है। विकास क्रम का अभाव पूर्णता पर्यन्त नहीं हैं। **विकास एवं जागृति की**

श्रृंखला में ही मानव मानवीयता एवं समाज सामाजिकता एक वास्तविकता हैं, जिसके सुदृढ़ आधार पर ही राज्य में एकात्मकता एवं समाज की अखण्डता सिद्ध होती है। उसे पा लेना ही सामाजिक चरमोपलब्धि है। उसके लिए यह सर्वोत्तम समय है। भौतिक विज्ञान की उत्कर्षता ने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधेन्द्रियों की जो स्वभाव गति मानव में पायी जाती है उसकी बहुगण संख्या में वृद्धि कर दी है। फलत: आकाँक्षा द्वय संबंधी वस्तुओं के निर्माण में विपुल गति प्राप्त हुई है। इसकी अक्षुण्णता की वाँछा भी मानव में है। यह अक्षुण्णता युद्ध, आतंक, द्रोह एवं विद्रोह में संभव नहीं है। ये सब अपव्यवता के द्योतक हैं। अपव्ययता से अनिष्ट घटना अवश्यंभावी है। अस्तु, व्यवहार विज्ञान को पूर्णतया शिक्षा में समाविष्ट करना उसके संरक्षण एवं संवर्धन योग्य व्यवस्था प्रदान करना ही अनिष्ट को इष्ट में परिवर्तित करने का एकमात्र उपाय है।

''**विधि पालन कामना मानव में पायी जाती है।**'' कामना को इच्छा में, इच्छा को तीव्र इच्छा में, तीव्र इच्छा को संकल्प में, संकल्प को संभावना में, संभावना को सुगमता में, सुगमता को उपलब्धि में, उपलब्धि को अधिकार में, अधिकार को स्वतंत्रता में, स्वतंत्रता को स्वत्व में, स्वत्व को व्यवहार एवं उत्पादन में चरितार्थ करना ही शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम एवं उपलब्धि है। यही विधि पालन क्षमता को स्थापित करने का प्रधान लक्षण कार्य प्रमाण है। व्यक्ति में जागृति सहज स्वतंत्रता ही विधि पालन क्षमता का द्योतक है। विधि पालन के बिना व्यक्ति में संयमता सिद्ध नहीं होती है। विधि पालन के बिना जागृति प्रमाणित नहीं है। जागृति के बिना स्वतंत्रता का अर्थ नहीं है। स्वतंत्रता की निरर्थकता ही मूल्यानुभूति योग्यता में न्यूनता है। यह न्यूनता ही भय एवं अज्ञान है। अज्ञान एवं भ्रम ही दिशा विहीनता है। ये सब केवल जागृति में अपूर्णता के द्योतक हैं। अज्ञान एवं भ्रम ही दिशा विहीनता है। ये सब केवल जागृति में अपूर्णता के द्योतक हैं। अपूर्णतावश ही गलती एवं अपराध का होना पाया जाता है। इससे मुक्त होने के लिए ही प्रत्येक मानव संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था में समर्पित होता है। उसका सम्मिलित रूप ही शिक्षा है। ऐसी उपलब्धि ही शिक्षा में पूर्णता का प्रमाण है। शिक्षा में पूर्णता ही मानव में आवश्यकीय जागृति के लिए प्रेरणा एवं दिशादायी तत्व है। ऐसी उपलब्धि के लिए मानव अनवरत तृषित है। शुभ कामनाओं को चरितार्थ करने के लिए शिक्षा, दीक्षा एवं वातावरण ही प्रधानत: आधार एवं दायी है। इन्हीं से मानव में गुणात्मक परिवर्तन होना वांछित उपलब्धि है। यही जीवन दर्शनकारी कार्यक्रम है। शिक्षा-दीक्षा एवं कृत्रिम वातावरण भी संस्कारदायी है। कृत्रिम वातारण एवं शिक्षा ही मानव के उत्थान एवं पतन का प्रधान सहायक तत्व हैं। प्रत्येक व्यक्ति व्यवस्था से संबद्ध है ही। व्यवस्था विहीन जीवन नहीं है। कृत्रिम वातावरण आकाँक्षा द्वय संबंधी साधनों सहित सकारात्मक प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन के रूप में दृष्टव्य है। आशित, अनिवार्यता, उपयोगिता एवं सुन्दरता का प्रत्यक्षीकरण पूर्वक

जनजाति में बोधगम्य हृदयंगम सहित प्रोत्साहित करना ही कृत्रिम वातावरण का कार्यक्रम है। यह मानव से ही नियति के अनुसार निर्मित होता है। कृतिपूर्वक मूल्य त्रयानुभूति में निष्ठा का निर्माण करना ही कृत्रिमता की चरितार्थता है, जिसमें आकाँक्षा द्वय सीमानुवर्ती उत्पादन योग्य योग्यता को, मानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं आचरण योग्य क्षमता को स्थापित करने में कृत्रिम वातावरण सफल अन्यथा असफल सिद्ध हुआ है। उत्पादन में अप्रवृत्ति एवं व्यवहार में दायित्व वहन में विमुखता एवं अतिभोग में तीव्र इच्छा ही लोक वंचना, प्रवंचना एवं द्रोह का प्रधान कारण है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव में साम्यतः पायी जाने वाली इच्छाओं को चरितार्थ करने के लिए मानवीयता पूर्ण संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था ही एकमात्र उपाय है।

''विधि विहित जीवन ही पाँचों स्थितियों एवं दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था में सफल है।'' शिष्ट मूल्य और मूल्यवत्ता का संयुक्त स्वरूप ही विधि है। मानव में अनुभव एवं समाधान का संयुक्त स्वरूप ही मूल्य व शिष्ट मूल्यवत्ता है। अनुभव एवं समाधान और न्याय का परावर्तन ही व्यवहार, व्यवस्था एवं उत्पादन का प्रमाण है। मानवीयता ''नियम त्रय'' पूर्वक ''कार्यक्रम त्रय'' सहित नवधा स्थापित मूल्य, नवधा शिष्ट मूल्य एवं द्विधा वस्तु मूल्य में किया गया विनियोग ही विधि है। विनियोग का तात्पर्य ही प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव सुलभ हो जाने से है। यह ''सुलभ त्रय'' शिक्षा एवं व्यवस्था से होता है। यही विशिष्टता है। विशिष्टता ही शिक्षा एवं दीक्षा द्वारा प्रभावशील होता है। यही अनुभव परंपरा को स्थापित करता है। यही अनुभव प्रमाण को सिद्ध करता है। ऐसी प्रभावशीलन प्रक्रिया ही अभ्युदय है। जागृति, समाधान, अनुभव, अभय, अखण्डता, समाज, राज्य, असंदिग्धता, सुरक्षा, सदुपयोग एवं समृद्धि क्षमता ही प्रबुद्धता का प्रत्यक्ष रूप है। प्रबुद्धता, प्रतिभा और व्यक्तित्व का समग्र रूप है। जीवन में इसका प्रकट हो जाना ही सफलता है। यही भौमिक स्वर्ग है, जिसके लिए ही मानव चिर प्रतीक्षु है। इसकी सफलता, प्रबुद्धता को सर्वसुलभ बनाने वाली शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति से होता है। प्रबुद्धता मानवीयता पूर्ण व्यवहार रूप में स्पष्ट होती है। इसकी चरितार्थता अर्थात् सर्वसुलभता ही सर्वमंगल नित्य शुभ है।

''विधि विहित जीवन यापनाधिकार ही प्रत्येक मानव का मौलिक अधिकार है।'' मौलिकता से परिपूर्णता ही मौलिक अधिकार है। मानव में मानवीयता पूर्ण क्षमता ही मौलिकता है। मौलिकता विहीन मानव अर्थ विहीन है। अर्थ विहीनता ही अपूर्णता है। अपूर्णता ही उसके क्रियाकलाप एवं व्यवहार में न्यूनता है। जो लोप और दोष के रूप में परिलक्षित हैं। कार्यकलाप एवं व्यवहार में न्यूनता ही अजागृति का द्योतक है। अजागृति, जागृति के लिए बाध्य है ही। प्रत्येक अजागृत इकाई जागृति के अर्थ में ही अपने को समर्पित करने के लिए

बाध्य है। यही उनमें गुणात्मक परिवर्तन की संभावना है। मानव में अर्थवत्ता की स्थापना, प्रबोधन पूर्वक प्रकटन क्षमता को प्रदान करना ही शिक्षा प्रणाली पद्धति एवं नीति में पूर्णता का प्रत्यक्षीकरण है। प्रत्येक मानव प्रबुद्ध होने में, से, के लिए अजस्र प्रयासी है। मानव के मौलिक अधिकार का प्रयोग व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार, परिवार के सहयोग एवं सहकार, समाज के प्रबोधन एवं प्रोत्साहन, राष्ट्र के संरक्षण एवं संवर्धन तथा अंतर्राष्ट्र में उसके अनुकूल स्थिति परिस्थिति के लिए किया गया कार्यक्रम है। संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकात्मता ही अंतर्राष्ट्र में अनुकूल स्थिति परिस्थिति है। मानवीयता को संरक्षण एवं संवर्धनदायी विधि व्यवस्था उसके व्यवहारान्वयन योग्य व्यवस्था पद्धति एवं नीति ही अखण्ड सामाजिकता का संरक्षण एवं संवर्धनकारी तत्व है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति सभ्यता का प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन, गोष्ठी, संगोष्ठी, आख्यान, स्पष्टीकरण एवं समीक्षात्मक कार्यकलाप ही समाज का प्रबोधन एवं प्रोत्साहन सर्वस्व है। परिवार में चारित्रिक एवं नैतिक कार्यक्रम में दृढ़ता, विश्वास एवं अवगाहन क्षमता ही व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार में सहयोगिता एवं सहकारिता है, जो स्पष्ट है। यही मानव जीवन चरितार्थता का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूप है। यही जीवन चरितार्थता भी है। यही मानव के मौलिक अधिकार तथा उसकी उपयोगिता, उपादेयता एवं उपलब्धि है। मौलिक अधिकार का अनुष्ठान ही स्वतंत्रता का लक्षण है। इसका पालन, अनुसरण एवं अनुशीलन ही स्वतंत्रता का द्योतक है। इसी मौलिक अधिकार में स्वत्व सिद्धि होती है। यही राष्ट्र में अखण्डता एवं प्रभुसत्ता, समाज में सहअस्तित्व, परिवार में सहकारिता एवं व्यक्ति में मौलिक अधिकार का आचरण है।

39.

मानव का संपूर्ण कार्यक्रम धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनीति में, से, के लिए है।

यही उत्पादन, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति पूर्णता को प्रदान करने में चरितार्थ होता है। इन पूर्णता प्रदायी क्षमता में असमर्थ ''नीति त्रय'' स्वयं में परिपूर्ण नहीं है। अर्थात् जीवन चरितार्थता योग्य कार्यक्रम प्रदायी उपकार सिद्ध नहीं होती। नीति एवं व्यवस्था का मूल उद्देश्य पूर्णता से संपन्न होना और पूर्णता को प्रस्थापित, स्थापित एवं संरक्षित करना ही है। तृप्ति ही पूर्णता का द्योतक है। आयाम चतुष्टय में ही तृप्ति की चरितार्थता है। यह समृद्धि, अभय, समाधान एवं सत्य है। इनसे संपन्न होना ही जीवन तृप्ति विकास, सतर्कता, सजगता एवं भ्रम मुक्ति सिद्धि होती है। कार्यक्रम तृप्ति की अपेक्षा के अर्थ में है। उन्हें पाने के लिए ही सर्व प्रयास है। व्यवस्था, विधि, सभ्यता, संस्कृति प्रत्यक्ष रूप में प्रयास है। इसकी सफलता शिक्षा प्रणाली

एवं व्यवस्था संहिता पर निर्भर है जो मानव की ही प्रबुद्धतापूर्ण क्षमता के अनुरूप-प्रतिरूप होती है। पुन: यही शिक्षा व्यवस्था पूर्वक प्रबुद्ध जनजाति का निर्माण करने का आधार होती है। इस प्रकार प्रबुद्ध व्यक्ति के द्वारा शिक्षा एवं व्यवस्था संहिता का उद्‌गमन होना, उसके व्यवहारान्वयन से प्रबुद्ध जनजाति का निर्माण होना उदितोदित क्रम से अर्थात् पुन: परिष्करण, परिमार्जन तथा अनुसंधान पूर्वक संपन्न होना पाया गया है। इस क्रम में गुणात्मक परिवर्तन ही अभीष्ट रहा है। मौलिक अधिकार का प्रयोग एवं व्यवहार सुलभ होना ही ''नीति त्रय'' की उदात्तता है। ''नीति त्रय'' संहिता के उद्‌गमन का मूल उद्देश्य है। इसकी सार्थकता व्यवहार में ही सिद्ध होता है। यही अखण्डता है। प्रत्येक स्तर में मौलिक अधिकार का व्यवहारान्वयन होना ही स्वतंत्रता है। यही अभयता है। जीवन मौलिकता से भिन्न नहीं है। यही सत्यता मानव को जीवन संचेतनानुक्रमानुंषगी व्यवहार करने के लिए बाध्यता है। यही ''कार्यक्रम त्रय'' के उद्‌गमन का मूल कारण है। जीवन कार्यक्रम विहीन नहीं है। काँक्षा सहित नियति क्रमानुषंगी प्रक्रिया ही कार्यक्रम है। क्रम केवल नियति सहज है। नियति स्वयं में विकास एवं जागृति परंपरा है। नियंत्रित गति ही नियति है। विकास के क्रम में पायी जाने वाली क्रम प्रणाली अथवा सघन प्रणाली ही नियति क्रम है। क्रम विकास व जागृति के अतिरिक्त प्रमाणित नहीं है। प्रामाणिकता ही विकास व जागृति की गरिमा है। यह मानव के द्वारा प्रकट होने वाली उपलब्धि है। यह केवल अनुभव, व्यवहार एवं प्रयोग ही है। कार्यक्रम ही संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था का पालनकारी है। संपूर्ण कार्यक्रम का लक्ष्य मूल्योद्‌घाटन एवं मूल्य वहन है। यही मानव में पायी जाने वाली मौलिकता, मूल्याँकन योग्य योग्यता एवं मूल्यानुभूति योग्य क्षमता है। इसी के निर्वाह में प्रयोग एवं व्यवहार की पाँचों स्थितियों में दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था के रूप में चरितार्थता है। संपूर्ण कार्यक्रम गुणात्मक परिवर्तन में, से, के लिए है। गुणात्मकता गुरु मूल्यन प्रक्रिया है। ऐसी गुरु मूल्यनीयता मानव जीवन में क्रियापूर्णता एवं आचरण पूर्णता पर्यन्त भावी है। मानव में गुणात्मक परिवर्तन का परिचय उनके परस्पर व्यवहार में होता है। उत्पादन कार्य, व्यवहार कार्य से संबद्ध है ही। व्यवहार अनुभूति के बिना सफल होना होता नहीं है। अर्थात् व्यवहार मानसिकता, व्यवस्था मानसिकता अनुभव मूलक विधि से जागृति पूर्ण स्थिति है अथवा जागृत मानव सहज मानसिकता है। अनुभूति प्रधानत: ''मूल्य त्रय'' में, से, के लिए है। यही अनुभूति व्यवहारीयता में शिष्टता को उद्‌गमित करता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सभी स्तरों के प्रयोगित एवं व्यवहृत मौलिक अधिकार मानव में गुणात्मक परिवर्तन के देयी हैं। अर्थ की सदुपयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक क्षमता ही गुणात्मक परिवर्तन का लक्षण है अन्यथा में ह्रास अवश्यम्भावी है। मानव के विकास का देय सामाजिकता है न कि केवल विशाल उत्पादन-विनिमय। सामाजिकता के बिना मानव आश्वस्त एवं विश्वस्त नहीं है। आश्वासन एवं विश्वसन प्रदान करना ही ''कार्यक्रम त्रय'' का उद्देश्य है। इसकी

पराभवता संस्कृति एवं सभ्यता को स्थापन-प्रस्थापन एवं संरक्षण-संवर्धन करने में असमर्थता के रूप में स्पष्ट होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मानव का सर्वोच्च आयाम जो अनुभव है प्रधानत: उसी से प्रमाणित ''कार्यक्रम त्रय'' को सर्वसुलभ बनाने पर ही मानव जनजाति को अनुभव के लिए अनुगमन कराने में समर्थ होता है। प्रमाण सिद्ध कार्यक्रम ही मानव को प्रमाणित बनाने में समर्थ होता है। प्रमाण अनुभव, व्यवहार एवं प्रयोग से अधिक नहीं है। **आर्थिक कार्यक्रम** को प्रयोग प्रमाण, सुरक्षात्मक कार्यक्रम को व्यवहार प्रमाण तथा सदुपयोगात्मक कार्यक्रम को अनुभव प्रमाण प्रधानत: सिद्ध करता है जबकि मूलत: ये तीनों कार्यक्रम मूल्यों पर ही आधारित है। आर्थिक कार्यक्रम शुद्धत: उत्पादन पर आधारित है। उत्पादन का प्रयोग सिद्ध होना अनिवार्य है। प्रयोग सिद्ध पद्धति के बिना उत्पादन-विनिमय सफल नहीं होता जो प्रसिद्ध है। **राज्यनैतिक कार्यक्रम** शुद्धत: अर्थ की सुरक्षा पर आधारित है। यही उसका लक्ष्य एवं कार्यक्रम भी है। अर्थ की जो व्यवहार एवं व्यवहारिकता है उसी का संरक्षण होना है। परस्पर मूल्यों का आदान-प्रदान होना सर्व देशकाल एवं जनजाति में दृष्टव्य है। यही व्यवहार है। इसी में मानव, प्रत्येक मानव अपनी व्यवहार क्षमता पूर्वक त्रिमूल्यों का आदान-प्रदान करने में सीमित है। इससे अधिक व्यवहार सीमा नहीं है। इन्हीं ''मूल्य त्रय'' का शोषण, वंचना, प्रवंचना, द्रोह एवं विद्रोह न होने के लिए राज्यनैतिक कार्यक्रम है। इसे चरितार्थ करना ही उसकी सफलता है। सफलता के लिए ही कार्यक्रम को प्रभावशील किया जाना प्रसिद्ध है। तन-मन-धन से अधिक अर्थ मानव में नहीं है। ये क्रम से शिष्ट मूल्य, स्थापित मूल्य एवं वस्तु मूल्य ही है। मानव ही मूल्यों को धारित एवं उद्घाटित करता है। यही सत्यता उसकी सुरक्षा की अनिवार्यता है जो अपरिहार्य है। **धर्मनैतिक कार्यक्रम** पूर्णतया अर्थ के सदुपयोग पर आधारित है। अर्थ की सदुपयोग परंपरा स्वयं में धर्मनीति है। यह प्रधानत: अर्थ के उपयोग, सदुपयोग एवं वितरण की प्रक्रिया सें संबद्ध है। वस्तु मूल्य का आदान-प्रदान वस्तु व सेवा के रूप में, शिष्ट मूल्य का आदान-प्रदान मुद्रा, भंगिमा व अंगहार पूर्वक वस्तु के अर्पण एवं सेवा के रूप में तथा स्थापित मूल्य का आदान-प्रदान शिष्ट मूल्य सहित व्यंजनीयता के रूप में है। प्रत्येक मूल्य व्यंजनीयता से संबद्ध है ही। व्यंजनीयता ही मानव में तादात्म्य प्रक्रियानुषंगिक शिष्टता को प्रकट करती है। शिष्टता में वस्तु मूल्य समर्पित है ही। इस विश्लेषण से यह निर्णय स्पष्ट होता है कि स्थापित मूल्यों के आनुषंगिक शिष्ट मूल्य एवं शिष्ट मूल्यों के आनुषंगिक वस्तु मूल्य का प्रत्येक संबंधों में व्यवहृत किया जाना धर्मनैतिक कार्यक्रम है। यही विशुद्ध रूप से मानव में वांछित सुख परिपाकात्मक मूल प्रवृत्तियों से संपन्न होता है जिसके लिए ही मानव कुल तृषित है। अस्तु, प्रत्येक धर्मनैतिक कार्यक्रम अर्थ की सदुपयोगात्मक नीति से संबद्ध होना ही तत्संबंधी रहस्यता एवं दिखावा कार्यक्रम का निराकरण है। फलत: तदर्थ किए जाने वाले वाद-विवाद मतभेद का पूर्ण परिहार है। कार्यक्रम का अनुभव मूलक होना ही कार्यक्रम की

गरिमा है, यही उसका प्रभाव है। यही अनुभव में अनुगमन करने के लिए समर्थ प्रेरणा है। प्रेरणा पूर्वक ही अध्ययन, शिक्षा प्रदान की जाती है। प्रेरित होना व्यंजना है। प्रेरित करना ही व्यंजनीयता है। प्रेरित होना, प्रेरित करना मानव की परस्परता में प्रसिद्ध है। यही तादात्मय सिद्धि का निर्माण करता है। मानव नाम, रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म में तादात्म होने के लिए प्रवृत्त होता है। तादात्मयता प्रयोजन सहित पूर्ण स्वीकृति है। यही प्रतिबद्धता है। यह विधि विहित चरितार्थ होती है। विधि विहित न होने पर चरितार्थ नहीं होती। वास्तविकता पर आधारित स्वीकृतियाँ प्रतिबद्धता में तादात्मयता पूर्वक प्रस्थापित होती है। व्यवहार में वास्तविकता का आधार प्रकृति के विकासानुक्रम में पायी जाने वाली अवस्था एवं स्थितियाँ हैं। अवस्था एवं स्थितियाँ स्वयं में प्रकटन हैं। यही वास्तविकताएं हैं। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर कार्यक्रम सफल होता है।

40.

पाण्डित्य ही मनुष्य में विशिष्टता हैं।

अनुभव योग्य क्षमता ही पाण्डित्य का प्रधान लक्षण है। यही मूल्यों सहित विशिष्टता को प्रकट करती है। ऐसी क्षमता जागृति सहज परंपरा में विधिवत् निःसृत वास्तविकता है। प्रबुद्धता ही प्रमाण को प्रस्तुत करती है या प्रमाण प्रबुद्धता की निष्पत्ति है। संपूर्ण मूल्य अनुभव से प्रमाणित होते हैं। प्रत्येक मूल्यवत्ता स्वयं में स्वभाव है। यही स्थिति या स्थितिवत्ता है। स्थिति ही प्रकटन है। प्रकटन ही दृश्य है। दर्शन क्षमता के अनुसार दृश्य का दर्शन होना प्रसिद्ध है। यही मूल्याँकन प्रक्रिया है। दर्शन क्षमता ही मूल्याँकन प्रक्रिया का मूल तत्व है। यही स्थितिवत्ता की व्याख्या एवं विश्लेषण, प्रयोजन की अपेक्षा में होता है। मानव के लिए अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष से अधिक प्रयोजन नहीं है। इन प्रयोजनों का वरीयता क्रम मोक्ष, धर्म, अर्थ एवं काम है। इसी क्रम से सिद्धि, प्रतिबद्धता, प्रतीति एवं भास है। सिद्धि केवल सुख है, जिसकी चार स्थितियाँ प्रसिद्ध हैं जो सुख, शांति, संतोष एवं आनंद है। इन्हीं के प्रति प्रतिबद्धता, प्रतीति एवं भास होना मानव में प्रसिद्ध है। अनुभूति ही धर्म सिद्धि है। यही मोक्ष है। यह अतिमानवीयता पूर्ण जीवन में चरितार्थ होता है। मानवीयता पूर्ण जीवन में धर्म के प्रति प्रतिबद्धता होती है। यही समाज गठन का मूल तत्व है। यही स्वधर्मीयता का अनुभव करने एवं प्रसारण करने के लिए बाध्यता है। यही बाध्यता आचरण एवं व्यवहार पूर्वक संस्कृति व सभ्यता को व्यक्त करती है। प्रतिबद्धता पूर्वक ही मूल्यानुभूति होना पाया जाता है। स्थितिवत्ता का पूर्ण विश्लेषण ही मूल्यानुभूति है। मूल्यानुभूति ही निर्वाह क्षमता है। यह क्षमता ही प्रेरणा है। यही प्रेरणा व्यंजनोत्पादी प्रक्रिया है। इसके फलस्वरूप कार्यक्रम निष्पन्न होता है। ''नीति त्रय'' से अधिक कार्यक्रम नहीं है। इसका विधिवत् ज्ञान ही मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए तत्पर

होता है। साथ ही व्यवहार गति में आवश्यकीय एवं अनिवार्य साधनों से संपन्न होने के लिए बाध्य होता है। फलत: शिष्ट मूल्य का प्रयोजन व वस्तु मूल्य का उपयोग सिद्ध होता है। यही समग्र कार्यक्रम का मूल कारण है। अनुभव में क्रम का विश्लेषण होता है। कारण-गुण-गणित से निर्णय होता है। उपलब्धि से ही क्रम एवं कार्यक्रम की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। क्रम ही विश्लेषण एवं उपलब्धि ही अनुभूति है। ''मूल्य त्रय'' से अधिक उपलब्धि नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव में विशिष्टता केवल अनुभव योग्य क्षमता ही है। यही गुणात्मक परिवर्तन का लक्ष्य एवं उपलब्धि है। लक्ष्य एवं उपलब्धि के मध्य में कार्यक्रम समाया है। प्रत्येक उपलब्धि कार्यक्रम पूर्वक ही उपलब्ध होती है। यह गुरू मूल्यन अर्थात् गुणात्मक परिवर्तन प्रक्रिया से सिद्ध होता है। यही प्रत्येक मानव का अभीष्ट है। प्रबुद्धता पर्यन्त विचार, व्यवहार, उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग एवं प्रयोजनशीलता प्रक्रिया में गुणात्मक परिवर्तन भावी है। इसी कारणवश संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन एवं परंपरा अवश्यंभावी है। इन सभी का गुणात्मक परिवर्तन ही पाँचों स्थितियों में गुणात्मक परिवर्तन है। इन सबकी गुरू मूल्यनीयता का अंततोगत्वा अनुभव योग्य क्षमता में समाहित रहता है। यही सभी स्तर पर प्रामाणिक जीवन का आधार है। इसी आधार पर सार्वभौमिकता सिद्ध होती है। प्रमाण का विरोध स्वीकार्य नहीं है। प्रमाण विफल नहीं होता है।

''विधि ही विधान; विधान ही विज्ञान व विवेक; विज्ञान व विवेक ही निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य; निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य ही विचार, इच्छा एवं संकल्प; विचार, इच्छा एवं संकल्प ही समाधान एवं अनुभूति; समाधान एवं अनुभूति ही उत्पादन, व्यवहार व व्यवस्था; उत्पादन, व्यवहार व व्यवस्था ही समृद्धि एवं सहअस्तित्व; समृद्धि एवं सहअस्तित्व ही सामाजिकता; सामाजिकता ही अभय; अभय ही अनुभूति; अनुभूति ही प्रमाण; प्रमाण ही प्रबुद्धता; प्रबुद्धता ही विधि है।'' विचार गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक ही प्रबुद्धता को प्रकट करता है। वास्तविकताओं के दर्शन पूर्वक पूर्णतया स्वीकृति पर्यन्त विचार में गुणात्मक परिवर्तन भावी है। अध्ययन प्रदर्शन, प्रकाशन में निहित तत्व के अनुरूप अवधारणा एवं प्रतिबद्धता स्थापित होती है। यही अवबोधन प्रक्रिया का प्रत्यक्ष रूप है। अवबोधन क्षमता से विचार परिवर्तन प्रक्रिया सम्पन्न होती है। मानव में होने वाले संपूर्ण विचार ''तात्रय'' रूप में ही अभिव्यक्त होते हैं। उनमें से अमानवीयता की सीमा में किये गये वैयक्तिक, सामूहिक एवं समग्र जनजाति की कार्यक्रम विफलता, पराभव एवं निष्फलता में परिणत होते हैं। मानवीयता एवं अतिमानवीयता पूर्ण पद्धति से प्रत्येक मानव में गुणात्मक परिवर्तन होना प्रसिद्ध है। प्रबुद्धता ही व्यवस्था को स्थापित करती है या व्यवस्था की स्थापना प्रबुद्धता से ही होती है। व्यवस्था उत्पादन एवं विनिमय के अर्थ में भी चरितार्थ होती है। भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान प्रसिद्ध है। बौद्धिक समाधान का तात्पर्य विचार में गुणात्मक परिवर्तन अर्थात् अनुभव

योग्य क्षमता निर्माण करने के लिए शिक्षा अर्थात मूल्यग्राही एवं प्रदायी कार्य में पारंगतता से है। इसका प्रत्यक्ष रूप स्थापित मूल्यों की शिष्ट मूल्य सहित एवं वस्तु मूल्य समेत अभिव्यक्ति है। वस्तु उत्पादन का विपुलीकरण करने के लिए साधन एवं प्रतिभा का समुचित संयोजन किया जाना भी व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण कार्य है। प्रत्येक उत्पादित भौतिक वस्तुओं की आवश्यकीय वस्तु एवं सेवा में परिणत करने के लिए सहज सुलभ विनिमय व्यवस्था की स्थापना भी सामाजिक व्यवस्था का एक प्रमुख भाग है। शिष्ट मूल्य एवं व्यवसाय मूल्य का संरक्षण एवं संवर्धन कार्यकलाप ही विधि व व्यवस्था की चरितार्थता है।

41.

समाज संरचना का आधार ''मूल्य त्रय'' ही है।

''मूल्य त्रय'' की एकसूत्रता अखण्ड सामाजिकता के लिए अनिवार्य है। व्यवहार एवं उत्पादन के मध्य में रिक्तता नहीं है। इन दोनों की संयुक्त स्थिति मानव जीवन में दृष्टव्य है। व्यवहार, उत्पादन के लिए प्रेरणा है। व्यवसाय उत्पादन के लिए साधन है। व्यवहार एवं उत्पादन में आश्वस्त एवं विश्वस्त होना तथा उसकी अक्षुण्णता या परंपरा का सुदृढ़ होना ही समाज एवं सामाजिकता की उपलब्धि है। व्यवहार एवं उत्पादन की सफलता क्रम से अनुभूति एवं समाधान का प्रकटन है। मानव में प्रत्येक असफलता को सफलता में परिणत करने की कामना पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में, से, के लिए सामाजिक संरचना में भागीदारी करने का अवसर समान है। उसके योग्य क्षमता में वैविध्यता ही शिक्षा एवं व्यवस्था से परिमार्जित एवं नियंत्रित होने के लिए प्रस्तुत होता है। समाज संरचना का प्रत्यक्ष रूप व्यवहार एवं उत्पादन ही है। उत्पादन विनिमय अभीप्सा, व्यवहारिक अभीष्ट मानव मात्र में समान है। अवसर एवं साधन की विषमता ही उनमें वैविध्यता है। उनमें जो वैविध्यता है, वही प्रकटन में वैविध्यता है। यही परस्परता में वैविध्यता है। मानव में मूलत: अभीप्सा एवं अभीष्ट साम्य होने के कारण समाज संरचना के आधार में स्थिरता पायी जाती है। यही सत्यता आशा, आकाँक्षा एवं संकल्प को उद्‌गमित कराती है, जिससे समुचित एवं संतुलित समाज संरचना सिद्ध हो सके। यही चिंतन परंपरा का आधार एवं स्रोत है। संतुलित समाज संरचना का प्रत्यक्ष रूप व्यवहार एवं उत्पादन की अविभाज्यता है। उत्पादन शिक्षा एवं उसका संरक्षण जितना महत्वपूर्ण है उससे अत्यधिक व्यवहार शिक्षा एवं उसका संरक्षण महत्वपूर्ण है। **''व्यवहार, उत्पादन के लिए प्रेरणा है। उत्पादन, व्यवहार के लिए साधन हैं।''** यही वास्तविकता है। व्यवहार शिक्षा में अपूर्णता ही उत्पादन-विनिमय उपलब्धियों की अपव्ययता है। मानव का अपव्ययता पूर्वक सामाजिक

सिद्ध होना संभव नहीं है। इन वास्तविकताओं के अतिरिक्त वस्तु मूल्य से शिष्ट मूल्य एवं शिष्ट मूल्य से स्थापित मूल्य वरीय है ही। स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य व वस्तु मूल्य समर्पित होता है न कि वस्तु व शिष्ट मूल्य में स्थापित मूल्य। इसका कारण केवल ''गुरू मूल्य में लघु मूल्य का समाना ही है।'' व्यवहार शिक्षा की प्रधान उपलब्धि स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य का एवं शिष्ट मूल्य में वस्तु मूल्य का नियोजन होना ही है। ऐसी योग्यता की सर्वसुलभता ही शिक्षा है। मानव की परस्परता में स्थापित मूल्य के निर्वहन, शिष्ट मूल्य के व्यवहारान्वयन एवं वस्तु मूल्य के क्रियान्वयन योग्य योग्यता की स्थापना ही समाज संरचना का अभीष्ट है, जिससे ही प्रत्येक मानव आश्वस्त एवं विश्वस्त होता है। ऐसी उपलब्धि पाँचों स्थितियों के संयुक्त प्रयास का योगफल है जिससे दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था की एकात्मकता एवं एकसूत्रता ही समाज संरचना है। उत्पादन-विनिमय व्यवस्था से अधिक उत्पादन व व्यवहारिक विश्वास से समृद्धि भाव सिद्ध होता है। यही समृद्ध परंपरा एवं प्रमाण है। समृद्ध परंपरा उत्तरोत्तर समृद्धि एवं समृद्धि में विपुलता को प्रमाणित करता है। यही लोक वाँछा है। मानव का सामाजिकता में ही संयत होना प्रमाणित है। औचित्यता में दृढ़ता ही संयमता है। गुणात्मक परिवर्तन, सदुपयोग एवं सुरक्षा के लिए प्रेरणा ही औचित्यता है जो मानवीयता में स्पष्ट एवं व्यवहार सुलभ होता है। उत्पादन व्यवहार में, व्यवहार विचार में, विचार अनुभूति में संयत होता है। ये चारों आयाम प्रत्येक मानव में समाहित हैं। संयमता में अतिवाद एवं रहस्यता का अत्याभाव होता है। अतिवाद एवं रहस्यता की पारस्परिकता है। यह अविद्या का द्योतक है। मानवीय अधिकार योग्य विकास का अभाव ही अविद्या है। अर्थात् मानवीयतापूर्ण जीवन के लिए अक्षमता, अयोग्यता एवं अपात्रता ही अजागृति है। समाधान पूर्ण व्यवहार व आवश्यकता से अधिक उत्पादन सीमान्तवर्ती शिक्षा एवं व्यवस्था मानव जीवन समग्र के लिए पर्याप्त सिद्ध होती है। **''जो जैसा है उसको उससे अधिक या कम या न समझना ही अविद्या है। जो जैसा है उसे वैसा ही समझ लेना विद्या है। जिसको जो समझना है उसका पूर्ण विश्लेषण हो जाना ही समझना है।''** मानव में ही विश्लेषण क्षमता का उत्कर्ष होना पाया जाता है। विद्या से परिपूर्ण मानव मानवाधिकार सम्पन्न होता है। तभी वह स्वभावत: सामाजिक होता है। अविद्या पूर्वक सामाजिक होना संभव नहीं है। विद्या एवं अविद्या का प्रकटन चैतन्य इकाई में होता है। यही उसके जागृति का परिचय है। चैतन्य क्रिया में ही गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक विद्या की अभिव्यक्ति होती है। इसी सत्यतावश गुणात्मक परिवर्तन के लिए व्यष्टि एवं समष्टि में प्रयास होता है। गुणात्मक परिवर्तन क्रम ही समाधान एवं अनुभूति को प्रकट करता है। ऐसा गुणात्मक परिवर्तन चैतन्य इकाई में ही होता है। इसे पाने के लिए ही अर्थात् इसे सर्वसुलभ बनाने के लिए ही समाज संरचना का कार्यक्रम, नीति, पद्धति, प्रणाली को प्रमाण पूर्वक स्थापित किया जाता है। पूर्णता के लिए अथवा सम्यकता के लिए की गई रचना ही संरचना है। रचना

का तात्पर्य लक्ष्य के अर्थ में उपलब्ध वस्तु, स्वत्व एवं शक्तियों का संयोजन करने से है। पूर्णता चैतन्य प्रकृति में ही प्रकट होती है। ज्ञानावस्था की इकाई पूर्णता के लिए निकटवर्ती, अतिनिकटवर्ती या तटवर्ती के रूप में दृष्टव्य है। चैतन्य क्रिया में क्रियापूर्णता एवं आचरणपूर्णता होना पाया जाता है। ऐसी पूर्णता को पाने के लिए ही समाज संरचना का होना उसकी चरितार्थता का द्योतक है।

''आवश्यकता, अनिवार्यता, अपरिहार्यता ही मानव में मूल्यग्राही एवं मूल्यप्रदायी क्षमता को उत्पन्न करती है।'' मूल्यग्राही क्षमता का आरंभ जड़ प्रकृति में भी दृष्टव्य है। मूल्यप्रदायी क्षमता केवल चैतन्य प्रकृति में ही स्पष्ट होता है। जीव प्रकृति में ममता की अभिव्यक्ति विशेषकर मातृपक्ष से हुई है। प्रत्येक जीव अपनी संतान को किसी आयु सीमा तक संरक्षण एवं पुष्टि प्रदान करता हुआ देखा जाता है। यही ममत्व की मौलिकता है। प्राणावस्था एवं पदार्थावस्था में मूल्य प्रदायी क्रिया अदृष्ट है। चैतन्य प्रकृति में विशेषकर मानव में मूल्यग्राही एवं मूल्य प्रदायी क्षमता का प्रकटन हुआ है। अपेक्षाकृत अधिक मूल्य ग्रहण एवं कम मूल्य प्रदान करने की सीमा तक मानव मानवीयता से संपन्न नहीं है। यह लक्षण अमानवीयता में दृष्टव्य है। मानवीयता में मूल्य ग्रहण एवं मूल्य प्रदान का संतुलन अथवा मूल्य प्रदान की अधिकता पायी जाती है। अतिमानवीयतापूर्ण जीवन में अपेक्षाकृत कम मूल्य ग्रहण एवं अधिक मूल्य का प्रदान स्वभाविक होता है। यह जागृति सहज परंपरा में पायी जाने वाली निष्पत्ति है। इस विश्लेषण से भी यह स्पष्ट होता है कि मानव मानवीयता में मूल्य ग्राही एवं मूल्य प्रदायी कार्यक्रम को समाधानपूर्वक सम्पन्न करने का अधिकारी है। इस अधिकार का पाँचों स्थितियों दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था के रूप में चरितार्थ होना ही उपलब्धि है। यह उपलब्धि स्वयं में अखण्डता है। अखण्डता स्वयं में सामाजिकता एवं अभय है। यह समष्टि प्रयास का योगफल है। समष्टि एक इष्ट में है ही। उसके योग्य कार्यक्रम संपन्न हो जाना ही उपलब्धि है। यही व्यवहारिक विश्वसन का प्रत्यक्ष रूप है। उत्पादन विनिमय आश्वासन, उसके योग्य समुचित शिक्षण, साधन एवं विनिमय सुलभता का योगफल है। मानव, मानव प्रकृति के साथ स्थापित मूल्यों का निर्वाह शिष्ट मूल्यों सहित मानवीयता पूर्ण जीवन में करता है। यह प्रमाण सर्वदा दृष्टव्य है। आवश्यकता पूर्वक ही कला मूल्य एवं उपयोगिता मूल्य की स्थापना होती है। साथ ही उपयोग, वितरण और सेवा, समर्पण तथा ग्रहण क्रिया में वे प्रयोजित होते हैं। आवश्यकता का मानवीयता में संयत होना पाया जाता है। इसी में अपव्यय का अभाव होता है। अपव्यय ही मानव जीवन में परम घातक प्रक्रिया है। अपव्ययता से अपव्ययी का अनिष्ट होना भावी है। व्यक्ति में जागृति परिवार के लिए इष्टकारी, परिवार का विकास एवं जागृति समाज के लिए इष्टकारी, समाज का विकास एवं जागृति राष्ट्र के लिए इष्टकारी तथा राष्ट्र का विकास एवं जागृति अंतर्राष्ट्र के लिए इष्टकारी एवं स्वीकार्य है। इसके साक्ष्य में यह देखा

जाता है कि एक व्यक्ति द्वारा किया गया अविष्कार अनेक से स्वीकार्य होता है, जबकि अनेक से किया गया अपराध एक को भी स्वीकार कराने में समर्थ नहीं रहा। वे स्वयं उसको अस्वीकार किए रहते हैं। अपव्यय एवं अपराध मानव की वांछित उपलब्धि नहीं है। यही सत्यता बाध्य करती है कि मानव मानवीयता पूर्ण जीवन यापन करें। मानवीयता पूर्ण जीवन में ही औचित्यता चरितार्थ होती है। गुणात्मक परिवर्तन के लिए औचित्यता का निर्णय एवं उसके अनुसार आचरण अनिवार्य है। सम्पूर्ण प्रकार के अपव्यय मानवीयतापूर्ण जीवन में समाप्त हो जाते हैं। फलत: भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान है। अपव्यय एवं अज्ञान के बिना मर्ध्यता एवं समस्या नहीं है। मर्ध्यता का तात्पर्य असमृद्धि एवं अभावता से है। वर्तमान में मानव के लिए आवश्यकीय वस्तुओं की निर्माण क्षमता उनमें पर्याप्तता के निकटवर्ती है। केवल व्यवहारिक आकाँक्षा का पूर्ण होना ही समाज वैभव सिद्धि है। सामाजिक वैभवता बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि ही है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही भौतिक समृद्धि का प्रत्यक्ष रूप है। यही समाधानात्मक भौतिकवाद का आधार है। स्थापित संबंधों का विधिवत् निर्वाह ही व्यवहार आकाँक्षा का आशय है। यही व्यवहारात्मक जनवाद का सूत्र है। स्थापित मूल्यों की अनुभूति योग्य क्षमता सम्पन्नता ही या सम्पन्न कार्यक्रम ही अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का सूत्र है। अनुभव, समाधान, व्यवहार एवं समृद्धि मानव जीवन के अविभाज्य भाग हैं। इनमें से किसी एक का अभाव होने पर जीवन गति कुण्ठित होना अथवा इनकी परस्परता में असंतुलन होना पाया जाता है।

''**आवश्यकताएं परिवार मूलक हैं।**'' परिवार के अभाव में आवश्यकता का उद्गम प्रमाणित नहीं है। एकाकी मानव जीवन का इतिहास एवं चरितार्थता नहीं है। मानव जीवन के इतिहास एवं चरितार्थता का समाज एवं सामाजिकता की अपेक्षा में अध्ययन होता है। एक से अधिक होने की स्थिति में परस्पर अपेक्षा का उद्गमन संभव होता है। संपूर्ण अपेक्षाएं परस्परता में, से, के लिए ही ज्ञातव्य एवं दृष्टव्य हैं। व्यवहार का अभाव उसी भूमि पर होगा जहाँ मानव का अभाव है। विकास के क्रम में इस धरती पर भी मानव का अभाव रहा ही होगा। साथ ही यह कल्पना भी होती है कि जब कभी भी इस पृथ्वी पर मानव का अवतरण हुआ, एक से अधिक हुआ है। यह वास्तविकता स्पष्ट है कि एक से अधिक एकत्रित हुए बिना मानव परंपरा सिद्ध नहीं होती। इस श्रृंखला में यह निश्चय होता है कि मानव जीवन में आवश्यकताएं उनके संबंध एवं संपर्क की विशालता के अनुरूप पायी गई हैं। उसी की पूर्ति हेतु समस्त योजना-परियोजना दृष्टव्य है। ऐसी आवश्यकताएं व्यवहारिक एवं वस्तु मूल्यों से लक्षित हैं, जिनमें से किसी एक का अपूर्ण होना दूसरे के सदुपयोग व सुरक्षा में हस्तक्षेप होना है। व्यवहारिक प्रमाणों में अंतर्विरोध नहीं है। प्रमाण ही परस्पर विरोध पर विजय पाता है। इसी सत्यता के आनुषंगिक व्यवहारिक अनुसंधान एवं उत्पादन संबंधी अविष्कार होते गए हैं। प्रमाण विहीन स्थिति में ही

मानव की परस्परता में विरोध होना पाया जाता है, भले ही वह व्यवहारिक या उत्पादन संबंधी क्यों न हो। विरोध पर विजय ही गुणात्मक परिवर्तन का प्रधान लक्षण है। जीवन समग्र का प्रमाणित हो जाना ही संपूर्ण विरोध का निराकरण है। प्रमाण विहीन ऐच्छिकताएं काल्पनिक सुविधाओं पर आधारित होनी स्वभाविक है। यही वैचारिक वैविध्यता का कारण है और मानव में परस्पर मतभेद है। यह क्रम से वर्ग संघर्ष एवं युद्ध है जो स्पष्ट है। इस तथ्य के आधार पर यह निष्कर्ष मिलता है कि जीवन समग्र का अध्ययन ही ऐसी समस्याओं का समाधान है। मानव जीवन समग्रता, आयाम चतुष्टय की एकात्मकता में तथा पाँचों स्थितियों में दश सोपानीय व्यवस्था की एकरूपता में प्रमाणित है। यही मानव जीवन परंपरा का प्रत्यक्ष रूप है। यही क्रम से संस्कृति एवं सभ्यता है। इसी सीमा में संपूर्ण परस्परताएं विश्लेषित हैं। इन सभी संबंधों एवं संपर्कों का निर्वाह ही मानव परंपरा की ख्याति है। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट होता है कि मूल्यों से अधिक अनुभव करने के लिए वस्तु नहीं है तथा मूल्यों से अधिक विशालता नहीं है। सत्तामयता से अधिक व्यापकता नहीं है। सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति से अधिक विकास एवं जागृति के लिए वस्तु नहीं है। विश्लेषण प्रकृति की सीमा में हुआ है। यह उसकी उपयोगिता एवं उपादेयता को स्पष्ट किया है। गुरु मूल्य के बिना लघु मूल्य का नियंत्रण नहीं है। इसे सत्ता में संपृक्त प्रकृति ने प्रमाणित किया है। इसी तारतम्य में शिष्ट मूल्य का वस्तु मूल्य से गुरु मूल्य होना एवं शिष्ट मूल्य से स्थापित मूल्य का गुरुमूल्य होना प्रमाणित है। आवश्यकताओं के नियंत्रण, संयमन एवं संरक्षण की अपेक्षा में संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकरूपता का होना आवश्यक, अनिवार्य एवं अपरिहार्य है। इसके बिना सर्वमंगल, नित्यशुभ, जीवन सफल एवं भौमिक स्वर्ग संभव नहीं है।

42.

भोगों में संयमता से अभयता पूर्ण जीवन प्रत्यक्ष होता है।

मानव में भोगवादी प्रवृत्तियों को न्यायवादी प्रवृत्ति में परिवर्तन के बिना अखण्ड सामाजिकता एवं अभयता सर्वसुलभ नहीं है। मानवीयता पूर्ण जीवन के लिए समुचित कार्यक्रम का पाँचों स्थितियों में दश सोपानीय व्यवस्था में क्रियान्वयन होना ही अखण्ड सामाजिकता है, यही मानव का वैभव है। वैभव ही त्राण, प्राण एवं प्रेरणा है। यही परंपरा, प्रमाण एवं इतिहास है। वर्तमान में वैभव आगत के लिए योजना भी है। यही परंपरा की तारतम्यता है। मानव में निहित अमानवीयता का भय ही अखण्डता के लिये घातक है। जीवन परम्परा वास्तविकता के आधार पर गुणात्मक परिवर्तन एवं उसकी निरंतरता को सिद्ध करती

है। जीवन समग्र के लिए ही कार्यक्रम है। यही धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनीति को उद्‌गमित एवं प्रमाणित करता है। समाधान एवं अनुभूति के लिए शिक्षा प्रणाली, पद्धति एवं नीति का निर्धारण चेतना विकास मूल्य शिक्षा से ही है। व्यवहार एवं व्यवसाय के लिए विधि एवं व्यवस्था की स्थापना है। शिक्षा में अनुभव एवं समाधान प्रदान करने योग्य वस्तु की न्यूनता ही कार्यक्रम की समग्रता में अपूर्णता है। यही अपूर्णता व्यक्तिगत निर्णय लेने के लिए स्थली है। यही संस्कृति एवं सभ्यता में उत्पन्न विविधता है। मानव की परस्परता में विपरीतता संघर्ष का कारण होती है। संघर्ष अखण्डता का द्योतक नहीं है। अखण्डता केवल निर्णय, निश्चय, प्रमाण एवं इनकी परंपरा है। मानवीयता पूर्ण आचरण एवं व्यवहार का अध्ययन ही अनुभव एवं समाधान है। अनुभव एवं समाधान से ही व्यवहार एवं व्यवसाय का संपन्न होना प्रसिद्ध है। इस तथ्य से यह निर्णय होता है कि समाज एवं सामाजिकता के बिना स्थापित संबंध, स्थापित संबंध के बिना स्थापित मूल्यानुभूति, स्थापित मूल्यानुभूति के बिना शिष्ट मूल्य का प्रकटन, शिष्ट मूल्य प्रकटन के बिना वस्तु मूल्य का नियंत्रण, वस्तु मूल्य के नियंत्रण के बिना सामाजिक लक्ष्य एवं कार्यक्रम सिद्धि, सामाजिक लक्ष्य एवं कार्यक्रम सिद्धि के बिना मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता, मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता के बिना प्रबुद्धता, प्रबुद्धता के बिना विधि व्यवस्था, विधि व्यवस्था के बिना अभयता, अभयता के बिना अखण्डता, अखण्डता के बिना स्थापित संबंधों में अक्षुण्णता, स्थापित संबंधों में अक्षुण्णता के बिना अखण्ड सामाजिकता सिद्ध नहीं होती है। अस्तु, मानवीयता पूर्ण जीवन पद्धति, प्रणाली, नीति, आचरण एवं व्यवहार से ही सर्वमंगल, नित्य शुभ एवं जीवन सफल होता है।

''भोगों में संयमता के लिए पुरूषों में यतित्व एवं स्त्रियों में सतीत्व अनिवार्य है।'' यतित्व का तात्पर्य यत्नपूर्वक तरने से तथा सतीत्व का तात्पर्य सत्वपूर्वक तरने से हैं। जागृति की ओर श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक यत्न-प्रयत्नशील होना ही यतित्व का लक्षण है। विकास एवं जागृति में निष्ठा एवं विश्वास सम्पन्न होना ही सतीत्व का प्रधान लक्षण है। विकास एवं जागृति ही जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अभीष्ट है। नियति क्रमानुषंगिक ही यतित्व एवं सतीत्व की अनिवार्यता, उपादेयता, उपयोगिता एवं अपरिहार्यता स्पष्ट होती है। विकास में व्यतिरेक अर्थात् प्रतिक्रांति अर्थात् ह्रास जो जीवन शक्तियों का अपव्यय होने से होता है जो अज्ञान, अत्याशा, आलस्य, अभिमान, भय, संग्रह, द्वेष और काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य के रूप में प्रत्यक्ष होता है। इसके स्थान पर जागृति के क्रम में मानवीयता निर्विरोध, सद्‌व्यय, ज्ञान, विवेक, संयत आशा, उत्साह, सरलता, अभय, असंग्रह, स्नेह निष्पन्न होता है। फलतः षड्‌विकार का शमन होता है। परिणामतः जीवन जागृति में निरंतरता होती है। इसी से विकास में श्रद्धा एवं विश्वास दृढ़ होता है। अमानवीय जीवन में गुणात्मक परिवर्तन में विश्वास नहीं हो पाता। गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता

की उपलब्धि जीवन चरितार्थता है। यही श्रेय, नि:श्रेय एवं यतित्व तथा सतीत्व की उपलब्धि है। प्रत्येक मानव में यतित्व एवं सतीत्व के प्रति वांछनीय एवं आवश्यकीय निष्ठा का होना ही अभ्युदय का लक्षण है। यह शिक्षा एवं दीक्षा संस्कार पूर्वक सफल होता है। यह जागृति की ओर तीव्र निष्ठा का प्रतीक है, जिसका प्रत्यक्ष रूप गुणात्मक परिवर्तन है। मानवीयता के अनन्तर गुणात्मक परिवर्तन देव मानवीयता एवं दिव्य मानवीयता के रूप में प्रकट होता है। मानवीयता में अपव्यता की संभावना नहीं है यही तथ्य मानवीयता पूर्ण जीवन के अनन्तर गुणात्मक परिवर्तन की सुदृढ़ संभावना को स्पष्ट करता है। वैचारिक विकृतियों के बिना अर्थ के अपव्यय की संभावना नहीं है। मूल प्रवृत्तियों का परिष्कार ही चैतन्य क्रिया में गुणात्मक परिवर्तन है। परिष्कृत मूल प्रवृत्ति मानवीयत एवं अतिमानवीयता को प्रकट करती है। यह पूर्णतया संस्कारों पर आधारित प्रक्रिया है। संस्कार संस्कृति का देय है। संस्कृति शुद्धत: मानवीयता सहज रूप में स्पष्ट होती है। अमानवीय जीवन में संस्कृति स्थापित होना संभव नहीं है। अतिमानवीयता पूर्ण जीवन भी मानवीयता पूर्वक ही संस्कृति को अभिव्यक्त करता है। संस्कृति ही सामाजिकता है। मानव संस्कृति यतित्व एवं सतीत्व का लक्षण है। सतीत्व एवं यतित्व मानव संस्कृति के लक्षण है। यतित्व एवं सतीत्व पूर्ण जीवन में तन-मन-धन रूपी अर्थ के अपव्यय का अत्याभाव होता है। सदुपयोगिता ही जीवन का प्रधान कार्यक्रम है। अपव्यय एवं सद्व्यय के मूल में विचार का होना पाया जाता है। मानवीयता की अपेक्षा में सद्व्ययता एवं अपव्ययता का निर्णय होता है। सदुपयोग मानव सहज अपेक्षा है। मानवीयता में ही यह चरितार्थ होता है। यही मानवीय परंपरा में अक्षुण्णता को स्थापित करता है। मानवीयता पूर्ण परंपरा का पराभव नहीं है। अमानवीयता पराभव से मुक्त नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यतित्व एवं सतीत्व के मूल में शुद्धत: तन-मन-धनात्मक अर्थ के सदुपयोग में निष्ठा एवं विश्वास ही है। यही सत्यता मानवता के वैभव को कीर्तिमान सिद्ध करता है। इसका सर्वसुलभ हो जाना ही अखण्डता है, जिसमें ही भूमि स्वर्ग, मानव देवता, धर्म सफल एवं नित्य मंगल होता है।

''भोगों में संयमता के बिना धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक संतुलन संभव नहीं है।'' भोगों में संयमता ही प्रत्यक्ष रूप में अर्थ का सुदपयोग एवं सुरक्षा है। अर्थ की सुरक्षा एवं सदुपयोग ही धार्मिक, आर्थिक, राज्यनीति की अन्योन्याश्रयता है। सदुपयोग के बिना सुरक्षा एवं सुरक्षा के बिना सदुपयोग सिद्ध नहीं होता है। मानव का होना, समाज का होना; समाज का होना, अर्थ का होना; सुरक्षा का एवं सदुपयोग का होना है। यही मानव का विस्तार है। मानव में कार्यक्रम समाया हुआ है। इससे अधिक मानव नहीं है, इससे कम में भी मानव नहीं है। ये सब स्वयं में प्रमाण है। अर्थ का विद्रोह होना भावी है। द्रोह, विद्रोह क्रियाकलाप में सदुपयोग का क्षरण होना पाया जाता है। इस प्रकार सदुपयोग के साथ सुरक्षा नहीं होने से

सदुपयोग की अक्षुण्णता सिद्ध नहीं हुई। सुरक्षा हो, सदुपयोग न हो यह अराजकता है। अराजकता व्यक्तिगत निर्णय का द्योतक है। अराजकता स्वयं में असामाजिक है ही। इसके दमन हेतु बल का प्रयोग होता है जिससे विकास का क्षरण होता है। इससे स्पष्ट होता है कि सुरक्षा एवं सदुपयोग में से किसी एक का अभाव होने मात्र से दूसरे की स्थिति शुद्ध रूप में रहनी संभव नहीं है। दलन-दमनात्मक उपाय सदुपयोग या सुरक्षा को स्थापित करने में समर्थ नहीं होता है। विगत की घटनाएं इसकी साक्षी है। सुरक्षा को सदुपयोग में परिवर्तित करने के लिए शिक्षा, प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन, उद्‌बोधन, परिचर्चा एवं सद्‌व्ययता का मूल्यांकन करने योग्य व्यवस्था ही प्रधान उपाय है। बल प्रयोगात्मक दण्ड एवं वध विध्वंसात्मक दण्ड से अपव्ययता को सद्‌व्ययता में परिवर्तित करने का प्रमाण सिद्ध नहीं हुआ। ताड़न, प्रताड़न, वध एवं विध्वंस जैसे क्रूर दण्ड किसी सीमा तक आतंक का निर्माण करते हैं। आतंक स्तंभित करने का एक उपाय है न कि गुणात्मक परिवर्तन का। सदुपयोग में परिवर्तित करना मूलत: संस्कार में गुणात्मक परिवर्तन होता है। गुणात्मक परिवर्तन ''नियम त्रय'' संबद्ध वस्तु विषयात्मक तथ्य को बोधगम्य एवं हृदयंगम कराने से होता है। यही अपव्ययता को सद्‌व्ययता में परिवर्तित करने का प्रमाण है। सदुपयोग होते हुए उसकी सुरक्षा न होने का मूल कारण व्यवस्था पद्धति, प्रणाली एवं नीति में अपूर्णता का द्योतक है। इनकी अपूर्णता को पूर्णता में परिवर्तित करने के लिए किसी एक इकाई द्वारा विशेष प्रयास पूर्वक मानवीयता में पाये जाने वाले वास्तविक तथ्यों का उनमें समावेश करना ही उपाय है। प्रत्येक मानवीय व्यवस्था अर्थ का संरक्षण प्रदान करने के लिए संकल्पित है। साथ ही संवर्धन करने की आकाँक्षा भी समायी रहती है। व्यवस्था के कार्य सीमान्तर्गत जो जनजाति है उनमें अर्थ के सदुपयोग को अपने व्यवहार पूर्वक सिद्ध करने योग्य क्षमता को स्थापित करने की प्रक्रिया ही सदुपयोग में प्रवर्तन है। इस प्रवर्तन प्रक्रिया को अत्यधिक गतिशील करना ही ऐसी क्षमता का विपुल होना है। यही शिक्षा की प्रधान उपलब्धि है। अर्थ की सदुपयोगात्मक क्षमता से संपूर्ण जनजाति संपन्न होने तक व्यवस्था पद्धति में क्रूर दण्ड विधान का होना समाहित है क्योंकि यह आतंक पूर्वक अपराध गति को स्तंभित करता है। इस स्तंभन प्रक्रिया की उपादेयता तब तक रहेगी जब तक संपूर्ण जनजाति मानवीयता पूर्ण जीवन में संक्रमित न हो जाय। ऐसी संक्रमण प्रक्रिया के लिए मानवीयता को प्रस्थापित करने योग्य समृद्ध शिक्षा प्रणाली, पद्धति एवं नीति है। इसी लोकोपकारी व्यवस्था से ही न्याय प्रदायी क्षमता की स्थापना होती है। उसका संरक्षण होना ही न्याय व्यवस्था एवं शिक्षा की उपलब्धि है। इसके सर्वसुलभ होने के अनन्तर क्रूर दण्ड व्यवस्था की निरर्थकता सिद्ध होती है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था एवं मानवीयता से परिपूर्ण जनजाति का होना ही मानव की पाँचों स्थितियों में सफलता है। यही मानवीयता की चरितार्थता है। यही नित्य मंगल एवं शुभ है।

''**मानव स्वधर्म प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होने के लिए बाध्य है।**'' यह बाध्यता जागृति

क्रम में पायी जाने वाली वास्तविकता है। वर्तमान में व्यक्ति, परिवार या किसी वर्ग का अपनी विशेषता के साथ अथवा मानवीयता के साथ सुरक्षित रहना संभव नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति परिवार एवं वर्ग मानव सीमानुवर्ती संपर्क या संबंध से संबद्ध हुआ है क्योंकि प्रत्येक वर्ग एवं परिवार अपने में स्वतंत्र नहीं है या समग्र से संपर्क रहने तक उसका अपने में सीमित होना संभव नहीं है। इस संपर्क का मूल तत्व व्यवहार एवं उत्पादन ही है जो अनुभूति एवं समाधान का प्रकटन है। भ्रमवश परस्पर संपर्क एवं संबंध के लिए व्यापार ही प्रधान तत्व सिद्ध हुआ है। भ्रमित मानव में व्यवहार गौण है जबकि व्यवहार संबंध मानव जीवन में प्रधान है। यह वास्तविकता इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि व्यवसाय संबंध पूर्वक मानव का अपने में एकात्मकता, एकसूत्रता एवं तारतम्यता सहित निर्विषमता को पाना संभव नहीं है। लघु मूल्य गुरु मूल्य को नियंत्रित नहीं करता है। यह वास्तविकता है। मानव अनुभव से विचार का, विचार से व्यवहार का एवं व्यवहार से उत्पादन का नियंत्रण करता है। इसका प्रमाण ही है कि स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य एवं शिष्ट मूल्य में व्यवसाय मूल्य समर्पित है। यह वास्तविकता है। व्यापार संबंध लाभ-हानि की सीमा में अपने को स्पष्ट करता है। लाभालाभ, हिताहित एवं प्रियाप्रिय दृष्टि से तथा लाभ, हित एवं प्रिय सीमावर्ती प्रवृत्ति पूर्वक सामाजिकता का होना प्रमाण सिद्ध नहीं है। मानव चेतना सहज सामाजिकता ही समाज को गठित करती है। सामाजिकता ही न्यायान्याय, धर्माधर्म एवं सत्यासत्य पूर्ण दृष्टि से न्याय, धर्म, सत्य पूर्ण व्यवहार, विचार एवं अनुभूति है। प्रिय, हित, लाभ प्रवृत्तियों का न्याय सम्मत होना ही संयमता है। प्रिय, हित एवं लाभ की सीमा में वैविध्यता का अभाव नहीं है। यही तथ्य जीवन में अंतर्विरोध एवं परस्पर विरोध का मूल कारण है। इस पर आधारित उत्पादन एवं उत्पादित वस्तु से उत्पन्न उपयोगिता मूल्य एवं सुंदरता मूल्य द्वारा शिष्ट मूल्य एवं स्थापित मूल्य का निष्पन्न होना एवं नियंत्रित होना संभव नहीं है। यही तथ्य है। संभावना और असंभावना विश्लेषण सिद्ध तथ्य है। यही कारण ज्ञान का आधार है। कारण, गुण, गणित से ही वास्तविकता का निर्णय होता है। वर्तमान स्थिति में इस पृथ्वी के सीमान्तवर्ती जो संपर्क स्थापित हुआ है उसके विच्छेद में मंगल नहीं है। मानव के अथक प्रयास एवं शुभ कामना पूर्वक ही यह विशाल संपर्क एवं संपर्क सुलभ स्थिति निर्मित हुई है। यह ऐतिहासिक है। इसकी निरंतरता के लिए उत्पादन संबंध पर्याप्त नहीं है। व्यवहार संबंध को स्थापित कर लेना ही उसकी पर्याप्तता है। व्यवहार संबंध में ही एकात्मकता सिद्ध होती है। उत्पादन संबंध में एकात्मकता को पाना प्रमाण सिद्ध नहीं है। व्यवहार एवं समाधान के लिए धनतंत्र पर्याप्त नहीं है। धन, व्यवहार का केवल साधन है। भ्रमवश धन तंत्रण व्यवहार में प्रलोभन का कारण है। प्रलोभन स्वयं में मूल्य नहीं है। कल्पित प्रभाव में लुब्धायमान होना ही प्रलोभन है। प्रभव या प्रभाव अर्थात् स्थिति में जिसका लोप हो वही प्रलोभन है। प्रलोभन मानव के गुणात्मक परिवर्तन का सहायक नहीं है। अस्तित्व

विहीनता के आधार पर अस्तित्व की सिद्धि नहीं है। अस्तित्व के आधार पर ही अस्तित्व की सिद्धि है। इसकी मूल वास्तविकता सत्ता में संपृक्त प्रकृति की अविभाज्यता है। प्रत्येक स्थिति में आधार का गुरु होना एवं आश्रय का लघु होना प्रमाणित है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति इसी तारतम्य में स्वयं को स्पष्ट करती है। इससे स्पष्ट होता है कि शिष्ट मूल्य जो गुरु मूल्य है का आधार वस्तु मूल्य जो लघु मूल्य है का होना संभव नहीं है। उसके लिए प्रयास करना ही भ्रम है। अर्थात् वास्तविकता से परे एक कल्पना है। भ्रमपूर्ण कल्पनाएं जीवन में चरितार्थ नहीं होती हैं। इसके साथ ही अनिष्ट घटनाओं को सम्मुख होने के लिए बाध्य करती हैं। यही भ्रम एवं अज्ञान की परिणति है। अज्ञान और भ्रम के बिना मानव द्वारा अनिष्ट घटनाओं का निर्माण संभव नहीं है। मानव के साथ द्रोह, विद्रोह, वध, विध्वंस एवं युद्ध जैसी घटनाओं को निर्मित करने में भ्रम एवं अज्ञान का होना आवश्यक है। इसके बिना अर्थात् निर्भ्रमता एवं ज्ञान पूर्वक परस्पर मानव के लिए अनिष्ट घटनाओं को निर्मित करना संभव नहीं है। प्रिय, हित एवं लाभ सीमान्तवर्ती व्यवसाय संबंध द्रोह, विद्रोह, छल, कपट, दम्भ एवं पाखंड से मुक्त नहीं है। परिणामत: वध, विध्वंस एवं युद्ध है। अस्तु, मानव के विशाल संपर्क एवं संबंध की निरंतरता के लिए मानवीयता पूर्ण व्यवहार संबंध का समृद्ध होना अपरिहार्य है। इसकी अवहेलना में प्राप्त संबंध की विशालता का विच्छेद होना अवश्यम्भावी है। वध, विध्वंस एवं युद्ध पूर्वक मानव किसी भी स्थिति में संबंधों को चिरस्थायी रखने में समर्थ नहीं है। संबंध एवं संपर्क में ही मूल्यों का प्रयोजन सिद्ध होता है। यही चिरतार्थता का प्रधान लक्षण है जो वास्तविकता है। मानव में गुणात्मक परिवर्तन की संभावना है ही। यही वास्तविकता मानव को उत्प्रेरित करती है कि व्यवसाय संबंध का व्यवहार संबंध संबद्ध होना ऐतिहासिक स्थापना है। यह संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकात्मकता ही है। मानवीयता पूर्वक इसका विश्लेषण सकारात्मक होता है, निर्णय होता है एवं प्रमाणीकरण होता है। प्रत्येक धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक संस्था अपनी-अपनी मूल संहिता में मानवीयता पूर्ण संस्कृति एवं सभ्यता के उपलक्ष्य में विधि एवं व्यवस्था का समावेश कर लें यही सार्वभौम समाधान है। यही सर्वमंगल एवं भौमिक स्वर्ग का प्रादुर्भाव है।

43.

समस्त प्रकार के वर्ग की एकमात्र समाधान स्थली मानवीयता ही है।

मानवीयता के अतिरिक्त परंपरा पूर्वक प्रतिष्ठा को प्रकट करने के लिए और कोई आधार नहीं है। मानव का आधार मानवीयता ही है। मानव एवं मानवीयता का अविभाज्य संबंध है। मानव के बिना मानवीयता की अभिव्यक्ति तथा मानवीयता के बिना मानव में वैभव सिद्ध नहीं होता जो वास्तविकता है। मानवीयता में ही मानव की प्रतिष्ठा है अर्थात् परंपरा है। यही मानव धर्म प्रतिष्ठा को स्पष्ट एवं चरितार्थ करती है। अर्थ को आचरित होना ही चरितार्थता है। तन, मन, धन ही मानव में आद्यान्त अर्थ है। धन का आचरण उपयोगिता एवं सुदंरता में, तन का आचरण नवधा शिष्ट मूल्य में एवं मन का आचरण नवधा स्थापित मूल्य में प्रतिष्ठा पाता है। निश्चित लक्ष्य हेतु स्व स्थिति को पाना ही प्रतिष्ठा पाता है। **निश्चित लक्ष्य हेतु स्व स्थिति को पाना ही प्रतिष्ठा है।** प्रतिष्ठा विहीन स्थिति में लक्ष्य को पाना या लक्ष्य पूर्ण होना प्रमाणित नहीं है। प्रत्येक पूर्णता के अनन्तर पूर्णता का निरंतरता होना प्रमाणित है। पूर्णता केवल तीन ही है। प्रकृति में ''पूर्णता त्रय'' से अधिक आवश्यकता, अनिवार्यता सिद्ध नहीं होती। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का लक्ष्य ''पूर्णता त्रय'' है। गठन पूर्णता के अनंतर उसकी निरंतरता, क्रिया पूर्णता के अनंतर उसकी निरंतरता, आचरण पूर्णता के अनंतर उसकी निरंतरता प्रसिद्ध है। गठन पूर्णता के लिए जड़ प्रकृति श्रमरत हैं। चैतन्य प्रकृति गठन पूर्णता की निरंतरता सहित क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता के लिए आशा, विचार, इच्छा एवं संकल्परत है जो मावन जीवन में प्रमाणित है। प्रत्येक मानव मानवीयता से परिपूर्ण होना चाहता है। यह क्रिया पूर्णता पूर्वक चरितार्थ होता है जो वास्तविकता है। प्रत्येक मानव दया, कृपा, करूणामय होना चाहता है। यह आचरण पूर्णता में चरितार्थ होता है। यही वास्तविकता है। यह सत्यता स्वयं प्रमाण है कि पूर्णता के अनन्तर पूर्णता की निरंतरता होती है। यह प्रकृति के विकास क्रम, जागृति क्रम में प्रकट तथ्य है। मानव द्वारा अपूर्ण के योगफल से क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता को पाना संभव नहीं है। स्थापित मूल्यों के योगफल से ही क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता सिद्ध होती है। स्थापित मूल्यों का क्षरण प्रमाणित नहीं है। मूल्यांकन में अधिकार का होना या अधिकार का न होना प्रमाणित है। इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि स्थापित मूल्यों की क्षरण विहीनता उसकी पूर्णता का द्योतक है। संपूर्ण स्थापित मूल्य प्रेम जैसे पूर्ण मूल्य की ही परावर्तित नामकरण की स्थितियाँ है अर्थात् प्रेममयता की व्यवहार में निर्देश करने हेतु अनेक संज्ञा है। वस्तु स्थिति के प्रसारण हेतु संज्ञा व भाषा का माध्यम अपरिहार्य है। संबंधों की विविधता स्थापित मूल्यों में एकता को प्राप्त करती है। यही एकात्मयता का तात्पर्य है। जिस एक में ही सब का आश्रय हो तथा जो सब के लिए प्रश्रय हो साथ ही जो सब की

तृप्ति एवं पूर्णता हो वही अनेक में एकात्मयता है। जैसे प्रकृति का प्रश्रय सत्ता है, प्रकृति सत्ता में ही संपृक्त, क्रियाशील एवं पूर्ण होती है। व्यवहार में सत्तामयता ही प्रेममयता की संज्ञा से निर्देशित है। इस प्रकार जड़-चैतन्यात्मक संपूर्ण क्रियाकलाप का प्रश्रय सत्ता ही है। सत्ता में अनुभूति योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता से संपन्न होते तक वह जागृति के लिए बाध्य है। यही जागृति क्रम एवं उसके विस्तार का मूल कारण है। सत्तामयता ही प्रेममयता है। इसी तथ्यवश स्थापित मूल्य को अध्यात्म मूल्य की संज्ञा से निर्देशित किया गया है। परस्पर प्रकृति का आधार सापेक्ष रूप में दृष्टव्य है। सत्ता में प्रकृति की संपृक्तता, निरपेक्षता के रूप में ज्ञातव्य है। स्थापित मूल्यों के अनुभव, अनुसरण एवं अनुशासन की परंपरा ही मानवता की गरिमा है। मानव में मानव के प्रति निर्विरोधिता पायी जाती है। यह सत्यता अनुभव परंपरा का अनुसरण करने तथा अनुशासित होने की संभावना को स्पष्ट करती है। मानवता के आधारभूत स्थापित मूल्य एवं मूल्यानुभूति के बिना शिष्ट मूल्य एवं वस्तु मूल्य का नियंत्रण होना संभव नहीं है। यही वास्तविकता मानव को मानवीयता में प्रतिष्ठित होने के लिए प्रेरणा है। अखण्डता सहज है। स्थापित मूल्यानुभूति के बिना मानवता प्रमाणित नहीं है। अस्तु, मानव के लिए मानवीयता ही एकमात्र शरण है। यह निर्विवाद तथ्य है। यही लोक मंगल एवं भौमिक स्वर्ग है।

''**प्रत्येक मानव भावाभिभूत है।**'' संबंध विहीन मानव नहीं है। अस्तु, प्रत्येक संबंध भावाभिभूत है। सत्ता से रिक्त मुक्त प्रकृति नहीं है। सत्ता न हो ऐसा कोई स्थान प्रमाणित नहीं है। यह सत्यता सत्तामयता को प्रमाणित करती है। सत्तामयता के अर्थ में ही ''व्यापक'' संज्ञा निर्देशित है। सत्ता में प्रकृति की संपृक्तता भी उसी अर्थ को इंगित करती है। यही संपृक्तता, प्रकृति में अनुभूति की बाध्यता है। इसी के योग्य क्षमता सम्पन्न होने में नियति क्रम श्रृंखला का प्रसव है। इसी श्रृंखला में मानव वरीयतम इकाई है। इनमें वैविध्य ''तात्रय'' की प्रकटन सीमा में दृष्टव्य है। मानवीयता पूर्ण जीवन पर्यन्त इनमें एकात्मकता की सिद्धि नहीं है। मानवीयता पूर्ण जीवन में ही स्थापित मूल्यों की अनुभूति होती है। यही अध्यात्म मूल्य की अनुभूति है। यह पूर्णतया सामाजिक सिद्ध होती है। यही क्षमता अनुभव में चरितार्थ, व्यवहार में प्रायोजित एवं उत्पादन में नियोजित होने में समर्थ होती है। प्रत्येक मानव की क्षमता उसमें होने वाले ऋणात्मक एवं धनात्मक संस्कार परिवर्तन पर आधारित है। चैतन्य प्रकृति में भ्रांति पद चक्र ऋणात्मक एवं देवपद चक्र धनात्मक संस्कार परिवर्तन होता है। जीवावस्था भ्रांत मानव पद पर्यन्त भ्रांति पद चक्र की सीमा में है। जीवों में धनात्मक संस्कार पूर्वक भ्रांत मानव में होना भ्रांति पद से ऋणात्मक संस्कार पूर्वक जीवावस्था में होना एक वास्तविकता है। यही भ्रांति पद चक्र की सीमा है। इस चक्र से संक्रमित होना ही देव पद चक्र में पदस्थ होना है। देव पद चक्र में भ्रान्ताभ्रांत मानव पद से धनात्मक संस्कार परिवर्तन पूर्ण देव पद में अवस्थित होना, देव पद से ऋणात्मक संस्कार पूर्वक भ्रान्ताभ्रांत मानव पद में होना पाया जाता है। यही

देव पद चक्र की सीमा है। साथ ही ऋणात्मक–धनात्मक संस्कार की परिवर्तन की सीमा है। देव पद चक्र से संक्रमित होना ही जीवन मुक्ति है जिसमें ऋणात्मक एवं धनात्मक संस्कार परिवर्तन की कोई संभावना नहीं है। देव पद चक्र में क्रिया पूर्णता होती है और जीवन मुक्ति में आचरण की पूर्णता होती है जो वास्तविकता है। भ्रांति पद चक्र में ही सामाजिकता के अभाव वश अनेकानेक समस्याओं का निर्माण मानव, मानव के लिए करता है।

व्यवहारिक मूल्यों का अवमूल्यन = वस्तु मूल्यों का अधिमूल्यन = असामाजिकता = अमानवीयता। व्यक्ति में वस्तु मूल्य का अवमूल्यन = वर्ग मूल्य का अधिमूल्यन = असामाजिकता = अमानवीयता = मानव में वस्तु मूल्य का अवमूल्यन। प्रत्येक व्यक्ति स्व शक्तियों को नियोजित एवं प्रायोजित करने में समर्थ होता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए निश्चित दायित्व होता है। दायित्व निर्वाह में ही अर्थ का प्रायोजित होना एवं वस्तु मूल्य को निर्मित एवं स्थापित करने में नियोजित होना प्रसिद्ध है। पुनः वस्त मूल्य दायित्व में अथवा दायित्व के लिए प्रायोजित होता है। प्रायोजित होना ही अर्थ की चरितार्थता है। मानव सहज जीवन प्रयोजन सिद्ध करने के लिए अथवा प्रयोजन सिद्ध होने के लिए प्रयासशील है। मानव का प्रयोजन दायित्व वहन में प्रमाणित होता है। दायित्व एवं कर्त्तव्य की अवहेलना की स्थिति में मानव का जीवन निरर्थक सिद्ध होता है। प्रत्येक मानव सार्थक सिद्ध होना चाहता है। संपूर्ण अर्थ संबंधों में ही प्रायोजित होते हैं न कि और किसी स्थिति में। मानव का अर्थ प्रायोजित होने के लिए मानव परस्परता के अतिरिक्त अन्य कोई स्थली नहीं है। परस्परता मानवीयता पूर्वक प्रायोजित होती है तथा अमानवीयता पूर्वक अप्रायोजित होती है। अप्रायोजित होने का मूल तत्व स्थापित मूल्यों की अनुभूति न होना है। स्थापित मूल्यों का अनुभव हो और उसमें प्रायोजित अर्थ का प्रयोजन सिद्ध न हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं है। मानव पराभव को नहीं चाहता है या मानव के लिए पराभव वांछित घटना नहीं है। पराभव से ग्रस्त न होने के लिए मानव अथक प्रयास करता है। **सामाजिक मूल्यों की अपेक्षा में असामाजिकता निष्प्रभावित होती है। असामाजिकता की अपेक्षा में सामाजिकता उपेक्षित होती है।** अज्ञान या अत्याशा के बिना गुरु मूल्य की उपेक्षा नहीं होती है। यह अमानवीय जीवन में पायी जाने वाली घटना है। इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक प्रकार के वर्ग का मानवीयता में समर्पित होना ही उनके अस्तित्व को बनाए रखने का एकमात्र उपाय है, जिससे ही प्रत्येक वर्ग के मूल्य में जो मंगल कामना है उसकी चरितार्थता है, जिसके लिए ही अनवरत प्रयास हुआ है एवं चिर प्रतीक्षा है।

44.

अभयता का प्रत्यक्ष रूप ही वर्तमान में विश्वास है।

अभयता गुणात्मक परिवर्तन पूर्ण संस्कार की परिणति है। गुणात्मक संस्कार जागृति क्रम में ही होता है। यही क्रांति है। क्रांति ही संक्रमण प्रक्रिया है। संक्रमण प्रक्रिया मानव के लिए अमानवीयता से मानवीयता एवं मानवीयता से अतिमानवीयता में ही है। मानव मानवीयतापूर्ण जीवन में ही अभयता को प्राप्त करता है। मानवीयता पूर्ण सामाजिक जीवन में ही मानव में निहित अमानवीयता के भय से मुक्ति है। मानवीयता में अमानवीयता का अत्याभाव होता है। अमानवीयता में मानवीयता का भास, आभास एवं प्रतीति होती है। यही वास्तविकता अमानवीयता से मानवीयता में संक्रमण एवं संभावना को स्पष्ट करती है। मानवीयता में अमानवीयता का अत्याभाव होना ही मानवीयता की क्षरण विहीनता को सिद्ध करता है। क्षरण का तात्पर्य ऋणात्मक परिवर्तन से है। मानवीयता का ऋणात्मक परिवर्तन नहीं है। इसी प्रकार जीवावस्था अर्थात् गठन पूर्णता का ऋणात्मक परिवर्तन नहीं होता है और दिव्य मानवीयता का ऋणात्मक परिवर्तन नहीं होता है। ये ही तीन स्थितियों में तीन पूर्णताएं सिद्ध होती हैं। जीवावस्था अर्थात् चैतन्य पद में प्रतिष्ठित होने में गठनपूर्णता, मानवीयता में पदस्थ होने की क्रिया पूर्णता एवं दिव्य मानव पद में प्रतिष्ठित हाने में आचरण पूर्णता होती है। जड़- चैतन्यात्मक प्रकृति ''पूर्णता त्रय'' में, से, के लिए ही परिणामशील, श्रमशील एवं गतिशील है। प्रकृति की गम्यता अर्थात् विकास एवं जागृति की विशालता ''पूर्णता त्रय'' से अधिक कुछ भी नहीं है। चैतन्य जीवन का आरम्भ गठनपूर्णता से होता है। यही गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक मानव पद को पाता है। मानव पद में ही शेष दो पूर्णता की संभावना स्पष्ट हुई है। इसमें से क्रियापूर्णता के अनन्तर आचरण पूर्णता सिद्ध होती है। क्रिया पूर्णता के बिना मानव आश्वस्त, विश्वस्त नहीं होता है क्योंकि अमानवीयता में परस्पर उसको भय होता ही है क्योंकि हीनता, दीनता एवं क्रूरता पूर्वक मानव का विश्वस्त होना प्रमाणित नहीं है। विश्वास एवं अभयता अन्योन्याश्रित तथ्य हैं। अभयता के बिना विश्वास एवं विश्वास के बिना अभयता सिद्ध नहीं होती है। अमानवीयता का स्वभाव ही भय, प्रलोभन व आस्था है। मानवीयता का स्वभाव ही मानव सहज विश्वास है। ''स्वभाव का अभाव नहीं है।'' स्वभाव ही धर्मीयता को प्रकट करता है। संपूर्ण चैतन्य प्रकृति स्वभाव एवं धर्म को प्रकट करती है। जीवावस्था में स्वभाव का प्रकटन हुआ है। मानव में स्वभाव एवं धर्म का प्रकटन होता है या मानव स्वधर्मीयता को प्रकट करने के लिए बाध्य है। अभयता ही सुख, सुख ही विश्वास, विश्वास ही साम्य मूल्य, साम्य मूल्य ही पूर्ण मूल्यानुसंधान, पूर्ण मूल्यानुसंधान ही पूर्ण मूल्यानुभूति, पूर्ण मूल्यानुभूति ही पूर्ण सामाजिकता एवं पूर्ण सामाजिकता ही अभयता है। मानवीयता पूर्ण जीवन में अभय सिद्धि होती है। अभयता

के बिना मानव की स्वधार्मिक या स्व धर्मात्मिक सुख धर्मीयता का प्रसारण या प्रकटन नहीं होता है। जिसका जो अनुभव करता है उसी का वह प्रकटन करता है। जिसका जो प्रकटन करता है उसी का प्रसारण होता है। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति की प्रत्येक इकाई में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म अविभाज्य रूप में रहते हुए पदार्थावस्था में रूप प्रधान अस्तित्व धर्म का; प्राणावस्था में रूप, गुण प्रधान पुष्टि धर्म का; जीवावस्था में रूप, गुण, स्वभाव प्रधान आशा धर्म का; ज्ञानावस्था के मानवीयता पूर्ण मानव में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म प्रधान सुख धर्म का प्रकटन एवं प्रसारण होना प्रमाणित है। मानव का स्वभाव धर्म मूलक होना ही उसकी गरिमा या उसकी स्वभाव प्रतिष्ठा अथवा स्वधर्म प्रतिष्ठा है। यही अभयता को प्रमाणित करता है। अस्तु, मानव का अभयता से परिपूर्ण होना ही उसकी स्वभाव प्रतिष्ठा है। जीव, वनस्पति एवं खनिज को अपनी प्रतिष्ठा से पतित होते हुए देखा नहीं गया है। मनुष्येत्तर प्रतिष्ठा मानव से अविकसित प्रकृति में जब स्पष्ट है तब मानव का भी अपने स्वभाव प्रतिष्ठा से वंचित रहना ही स्वयं में अन्तर्विरोध परिवार एवं समाज के साथ अन्याय एवं विरोध है। न्याय सम्मत व्यवहार मानवीयता पूर्ण जीवन प्रतिष्ठा में सामान्य होता है। मानव जीवन में अभयता के लिए संपूर्ण कार्यक्रम की स्थापना है। समृद्धि भी अभयता के अर्थ में ही प्रयोजन पूर्वक सिद्ध होती है। मानव में निहित अमानवीयता का भय ही वर्ग और संघर्ष एवं अपराध है जो परधन, परनारी, परपुरुष एवं परपीड़ा के रूप में दृष्टव्य है। यही अमानवीयता के स्वभाव से उत्पन्न कार्य व्यवहार रूप है। प्रत्येक मानव के लिए यह कार्य व्यवहार सर्वथा अस्वीकार्य, अप्रत्याशित एवं अवांछनीय है। यह अजागृति का द्योतक तो है ही साथ ही शिक्षा एवं व्यवस्था की न्यूनता भी है। शिक्षा एवं व्यवस्था की पूर्णता मानव में पूर्णता को स्थापित करती है या किसी एक मानव अथवा अनेक मानव में पूर्णता सम्पन्न हो चुकी हो तब वह शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति में पूर्णता को प्रस्थापित करता है। जनजाति एवं शिक्षा तथा व्यवस्था पद्धति में मानवीय तत्वों का समावेश हो जाना ही अभयता एवं विश्वास का सर्वसुलभ होना है, जिससे ही भूमि स्वर्ग, मानव देवता, धर्म सफल एवं नित्य शुभ होता है।

''**जागृति क्रम, जागृति में मानव के लिए मानवीयता ही वैभव है।**'' वैभव ही विभव है। वैभव क्रम से इतिहास, चरितार्थता एवं कार्यक्रम है। चरितार्थता के आधार पर ही कार्यक्रम का निर्णय होना प्रसिद्ध है। प्रत्येक चरितार्थता इतिहास में परिणत होती है। प्रत्येक वर्तमान भूत में गण्य होता है। वर्तमान अर्थात् चरितार्थता का इतिहास एवं योजना का आधार है। चरितार्थता की परंपरा अक्षुण्ण होना प्रसिद्ध है। चरितार्थता स्वयं में प्रमाण है। जीवन के अर्थ में आचरण ही चरितार्थता है। मानवीयता एवं अतिमानवीयता में ही जीवन चरितार्थ है। चरितार्थता ही वैभव के लिए कार्यक्रम है। कार्यक्रम ही ''प्रमाण त्रय'' को सिद्ध करता है। मानव जीवन में ''प्रमाण त्रय'' की निरंतरता ही वैभव है। यही इतिहास, चरितार्थता एवं

कार्यक्रम में स्पष्ट है। यही अक्षुण्णता का तात्पर्य है। वैभव ही तीनों काल में कीर्तिमान होता है। अमानवीयता की कीर्ति प्रमाण सिद्ध नहीं है। अमानवीय कामना बराबर निषेध, मानवीयता पूर्ण कामना बराबर विधि तथा अतिमानवीयता पूर्ण कामना बराबर आप्त कामना है। मानव में अमानवीयता स्वीकार्य नहीं है इसलिए निषेध है। मानवीयता, मानव में स्वीकार्य है इसलिए विधि है। अतिमानवीयता सर्वोच्च विकास है इसलिए आप्त कामना है। निषेध का उन्मूलन विधि से होता है। आप्त कामना में विधि का प्रकटन होता है। यह आप्त कामना की प्रत्यक्ष गरिमा है। विधि का प्रकटन न होने की स्थिति में वह आप्त कामना नहीं है। विधि का प्रकटन ही जीवन सफलता के लिए मार्गदर्शन है तथा नीति जीवन सफलता के लिए कार्यक्रम है। विधि से नीति की निष्पत्ति नैसर्गिक वास्तविकताओं के आधार पर होती है। विधि में अनुगमन ही गुणात्मक परिवर्तन है जो प्रमाणित है। प्रमाण अपरिर्वतनीय होने के कारण वैभव सिद्ध होता है।

45.

आवेश (लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद) मानव की स्वभाव गति नहीं है।

आवेशित गति एवं स्वभाव गति प्रसिद्ध है। चैतन्य क्रिया में स्वभाव गति पूर्वक ही गुणात्मक परिवर्तन होता है। प्रत्येक घटना अपनी स्थिति को प्रकट करती है। संपूर्ण प्रकटन आवेशित गति एवं स्वभाव गति के रूप में दृष्टव्य है। आवेश के लिए अन्य का आक्रमण होना आवश्यक है। मानव को सफलता के लिए स्वभाव गति में ही रहना अनिवार्य है। इसके लिए व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रक्रिया प्रसिद्ध है। व्यक्ति ने अनावश्यक वातावरण से निष्प्रभावित रहने का प्रयास किया है। ऐसा प्रयास साधारण कठोर एवं कठोरतम पद्धतियों से सम्पन्न किया जाना हुआ है। इन सबका उद्देश्य उनके लक्ष्य के विपरीत प्रभावदायी तत्वों से निष्प्रभावित होना और अभीष्ट को पाना रहा है। फलत: व्यक्तिगत रूप में गुणात्मक परिवर्तन होना रहा है। वह लोक सामान्य नहीं होने के कारण आदर्श में गण्य रहा है। इसी कारणवश मानव में जागृति का प्रमाण चेतना विकास मूल्य शिक्षा व दश सोपानीय व्यवस्था पद्धति में पूर्णता को प्रदान करने में समर्थ नहीं हुआ अथवा उस समय के लिए आवश्यकता नहीं रही। आवश्यकता के बिना उपलब्धि का लक्ष्य एवं उसके लिए विधिवत् प्रयास नहीं है। वर्तमान में वास्तविकता मानवता की सर्वसुलभता के लिए अनिवार्यता को स्पष्ट कर रही है। यही सत्यता मानव को आवेशमय अमानवीयतावादी जीवन से संक्रमित होकर मानवीयता पूर्ण जीवन में सर्वतोमुखी कार्यक्रम को प्रसूत करने के लिए बाध्य की है। आवेश जीवन का लक्ष्य या गुणात्मक परिवर्तन के लिए

सहायक या समाज के लिए उपादेयी सिद्ध नहीं हुआ है। जड़ प्रकृति में आवेशित गति पाँच प्रकार की शक्ति के रूप में गण्य है साथ ही उसकी सामान्य एवं आवेशित गति के योगफल में उसमें धन-ऋणात्मक परिणाम स्पष्ट है। चैतन्य प्रकृति में मूल प्रवृत्तियों का ऋणात्मक-धनात्मक परिवर्तन होना, वृत्तियों का ऋणात्मक-धनात्मक परिमार्जन होना पाया जाता है। गठन पूर्णता तक परिणाम, क्रिया पूर्णता तक गुणात्मक परिवर्तन एवं आचरण पूर्णता तक प्रवृत्तियों में परिमार्जन प्रसिद्ध है। मूल प्रवृत्तियाँ हर्ष एवं क्लेश परिपाकात्मक श्रृंखला में स्पष्ट है। क्लेश परिपाकात्मक मूल प्रवृत्तियाँ हर्ष परिपाकात्मक प्रवृत्तियों में परिवर्तित होती हैं। यह एक वास्तविकता है। मानव में क्लेश स्वीकार्य नहीं है। यह भी वास्तविकता है। इस वास्तविकता वश मानव मूल प्रवृत्तियों के परिमार्जन हेतु संकल्पित है। यही गुणात्मक परिवर्तन का आद्यान्त अर्थ है। हर्ष परिपाकात्मक मूल प्रवृत्तियाँ मानव को मानवीयता में पदस्थ करती है। यही अमानवीयता से मानवीयता में संक्रमित होने का प्रमाण है। मानवीयता में स्थिति पा लेना ही पदस्थ होने का तात्पर्य है। क्लेश परिपाकात्मक मूल प्रवृत्तियाँ छः प्रकार के आवेशों में गण्य है। यही षड्विकारों में मान्य है। कामावेश सम्मोहन पूर्वक, क्रोधावेश विरोध वश, लोभावेश संग्रह वश, मोहावेश रहस्यता वश, मदावेश अभिमान एवं आडम्बर वश, मात्सर्यावेश असहअस्तित्व एवं भय वश - यही छः प्रकार के आवेश अमानवीयता को प्रकट करते है। फलतः क्लेश निष्पत्ति होती है। मानव की विवेचना एवं अनुभव पूर्ण क्षमता ही प्रत्येक प्रकटन की स्पष्टता का अध्ययन करती है। प्रलोभन एवं सम्मोहन पूर्ण जीवन में प्रकटन की सूक्ष्मता को ग्रहण करने तथा विश्लेषण पूर्वक उसे प्रसारित करने की क्षमता नहीं होती है। जड़ प्रकृति का विश्लेषण जीवन का विश्लेषण नहीं है वह केवल भौतिक रासायनिक विश्लेषण है। मानव मूलतः चैतन्य प्रकृति है। वह अनुभव मूलक पद्धति अथवा अनुभव प्रमाण पूर्वक ही विश्लेषित होता है। अमानवीयता वश जीवन में जो क्षमता मानव में पायी जाती है उससे रासायनिक प्रक्रिया का विश्लेषण होता है। चैतन्य प्रकृति जड़ प्रकृति की अपेक्षा गुरु मूल्य है ही अतिमानवीयता पूर्ण प्रवृत्ति से मानवीयता पूर्ण एवं अमानवीय प्रकृति का विश्लेषण होता है। अमानवीय जीवन में षड्विकार अथवा आवेश है। मानवीयता में ही इनका गुणात्मक परिवर्तन होता है। जैसे कामावेश शिष्टता पूर्ण लज्जा में, क्रोधावेश धैर्य पूर्ण साहस में, लोभावेश उदारता पूर्वक दया में, मोहावेश अर्हता पूर्वक अपेक्षा में, मदावेश सम्मानाभिव्यक्ति पूर्वक कृतज्ञता में तथा मात्सर्यावेश सहअस्तित्व पूर्वक अभयता में परिवर्तित होते हैं। शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्यान्त अभीष्ट उक्त गुणात्मक परिवर्तन को प्रदान करना एवं आचरित कराना ही है। जनाकाँक्षा का योगफल ही सामाजिकता है। सामाजिकता ही मानव को या प्रत्येक मानव को स्वभाव गति में प्रतिष्ठित करती है जो क्रम से संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था है। आवेश ही मानव में अस्थिरता; अस्थिरता ही सशंकता; संशकता ही अविश्वास; अविश्वास ही भय

व आतंक; भय व आतंक ही राग अथवा संग्रह प्रवृत्ति; राग अथवा संग्रह प्रवृत्ति ही हीनता, दीनता, क्रूरता; हीनता, दीनता, क्रूरता ही अमानवीयता; अमानवीयता ही असामाजिकता एवं असामाजिकता ही आवेश है। प्रत्येक मानव का आवेश गति रहित एवं स्वभाव गति सहित जीवन ही अभीष्ट है। इसी में, से, के लिए पाँचों स्थितियों में कार्यक्रम सफल होता है अन्यथा में असफल है। अत्याशा, आलस्य, प्रमाद, अज्ञान, शोषण, आक्रमण एवं अपहरण पूर्वक ही मानव परस्पर आतंकित एवं सशंकित होता है। फलत: अभाव ग्रस्त होता है अर्थात् भाव में अभाव प्रतीत होता है। उक्त सभी अनावश्यकीय प्रवृत्ति व क्रियाकलाप अभाव के द्योतक हैं, न कि भाव के। अत्याशा विवेचना योग्य क्षमता के अभाव में; आलस्य वस्तु मूल्यानुभूति योग्य क्षमता के अभाव में; प्रमाद व्यवहार मूल्यानुभूति योग्य क्षमता के अभाव में; अज्ञान शिक्षा एवं व्यवस्था में पूर्ण क्षमता के अभाव में; शोषण जागृति के मूल्यांकन योग्य क्षमता के अभाव में; आक्रमण सहअस्तित्व की मौलिकता का अनुभव करने योग्य क्षमता के अभाव में एवं अपहरण व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलन के अभाव में होता है। इसका निराकरण केवल मानवीयता पूर्ण संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था का पाँचों स्थितियों में सम्पन्न होना ही है। अमानवीयता की सीमा में अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा की संभावना नहीं है। यही आवेश का मूल कारण है। मानवीयता ही इसका पूर्ण समाधान है।

''**भय पूर्वक ही मानव संग्रह में, से, के लिए प्रवृत्त होता है।** संग्रह सुविधा में, सुविधाएं विलासिता में, विलासिता अतिभोग में, अतिभोग शोषण एवं हिंसा में, शोषण एवं हिंसा भय में रूपान्तरित होती है। यही क्रम से अतिभोग में प्रवृत्त होने का कारण है। मानव दबाव एवं तनाव में रहना नहीं चाहता है। उसी के भुलावे के लिए मानव विलासिता में प्रवृत्त होता है। यही अन्ततोगत्वा अतिभोग में परिणत होता है। यह स्वयं में पीड़ा होने के कारण परधन, परनारी/परपुरुष एवं परपीड़ा में प्रवृत्त होता है। फलत: आतंक उत्पन्न होता है जो पीड़ा है। पीड़ा मानव को स्वीकार्य नहीं है। स्वयं में स्वयं की पीड़ा स्वयं की वंचना अथवा अक्षमता है। हीनता एवं क्रूरता वंचना-स्ववंचना पूर्वक पीड़ादायक होती है। दीनता अक्षमता का द्योतक होता है। पीड़ा मानव की वांछित उपलब्धि नहीं है। प्रत्येक मानव पीड़ा से मुक्त होना चाहता है। यह सत्यता जागृति की संभावना को स्पष्ट करती है। मानव में प्रतिभा एवं व्यक्तित्व की विषमता ही पीड़ा है जो स्ववंचना की द्योतक है। अस्वीकृति व्यवहार एवं उत्पादन ही प्रतिभा एवं व्यक्तित्व की विषमता है। यही अंतर्विरोध है। अंतर्विरोध ही पीड़ा है। पीड़ा ही द्रोह, विद्रोह और अपराध का कारण है। जिज्ञासा ही जागृति का कारण है। स्वयं पीड़ित हुए बिना अन्य को पीड़ित करना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त यदि पीड़ा होती है तो वह घटनात्मक होती है, जिसमें अज्ञान का होना आवश्यक है। पीड़ा स्वयं में आवेश है ही। आवेश से मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय मानवीयता पूर्ण जीवन सहज प्रमाण ही है।

46.

प्रत्येक स्थिति में किए गए अभ्यास का प्रत्यक्ष रूप ही व्यवहार एवं व्यवस्था है।

अभ्यास लक्ष्य की अपेक्षा में ही सम्पन्न होता है। मानव जीवन का लक्ष्य सुख, शान्ति, संतोष एवं आनन्द ही है। संपूर्ण वस्तु मूल्य भी इसी में प्रायोजित होते हैं। सुख, शांति, संतोष एवं आनंद मूल्य त्रयानुभूति के प्रमाण हैं। अनुभूति सत्तामयता एवं स्थापित मूल्यमयता में होती है। यही आप्लावन, आह्लाद, उत्साह एवं प्रसन्नता है। स्थापित मूल्यानुभूति ही अंततोगत्वा प्रेममयता की अनुभूति है। अस्तु, अनुभवमयता ही प्रेममयता, प्रेममयता ही जागृति पूर्ण जीवनमयता, जागृति पूर्ण जीवनमयता ही अभ्युदयमयता, अभ्युदयमयता ही सत्यमयता में अनुभवमयता है। यही अभ्यास की चरमोपलब्धि है। संवेदनशीलता का विस्तार अर्थात् गुणात्मक परिवर्तन अनुभव योग्य क्षमता पर्यन्त होता है। ऐसी क्षमता का विकास जीवावस्था से आरम्भ होता है और दिव्य मानवीयता की अवस्था में परिपूर्ण होता है। पूर्णता के प्रति जो पीड़ा है, वही संवेदना है। यही संवेदना सामाजिकता के लिए उत्प्रेरित करती है। यह उत्प्रेरणा बाध्यता में, बाध्यताएं इच्छा में, इच्छाएं तीव्र इच्छा में, तीव्र इच्छाएं संवेग में, संवेग व्यवहार एवं प्रयोग में अभिव्यक्त होते हैं। फलत: यही मानवीयता में स्थापित मूल्यों की अर्हता है। यही अर्हता क्रम से सामाजिकता का निर्वाह में स्पष्ट है और सामाजिक मूल्यों का अनुभव करती है। स्थापित मूल्यों में प्रेम ही श्रेष्ठ मूल्य है। सभी स्थापित मूल्य प्रेम से संबद्ध हैं ही। प्रेम ही विशालतम प्रभावशाली मूल्य है। वह शिष्ट मूल्य पूर्वक श्रद्धा, स्नेह एवं वात्सल्य के माध्यम से अनुभवगम्य होता है जिससे ही सामाजिकता का निर्वाह, शिष्ट मूल्य की अभिव्यक्ति एवं वस्तु मूल्य का सदुपयोग होता है। यही अर्थ का सदुपयोग होने का यथार्थ रूप है। अर्थ का सदुपयोग होना सर्ववांछित तथ्य है। यह स्थापित मूल्यानुभूति पूर्वक ही संपन्न होता है। प्रेमानुभूति ही स्वतंत्रता को स्पष्ट करती है। प्रेमानुभूति के बिना स्वतंत्रता पूर्वक मानवीयता का निर्वाह करना संभव नहीं है। स्वतंत्रता जीवन का लक्ष्य है। ''मानवीयता से परिपूर्ण होना ही स्वतंत्रता की प्रतीति, प्रेमानुभूति का भास एवं उसकी संभावना का आभास होता है।'' ये ही अपनी स्पष्टता पूर्वक अनुभव में प्रमाणित होते हैं। ''प्रेमानुभूति का प्रधान लक्षण अनन्यता है।'' प्रत्येक मानव अपने से विकसित के साथ अनन्यता को स्थापित करने के लिए बाध्य है ही। विकसित इकाई के द्वारा अविकसित के साथ वात्सल्यादि मूल्यानुभूति सहित शिष्ट मूल्यों की अभिव्यक्ति ही उसका स्वभाव है।'' श्रद्धा एवं विश्वास में अनुभूति प्रेमानुभूति योग्य क्षमता को प्रदान करती है।'' मानवीयता पूर्ण जीवन में प्रत्येक मानव में, से, के लिए विश्वास का अनुभव करने योग्य क्षमता स्थापित होती है। मानवीयता पूर्ण जीवन में सर्वप्रथम अनुभव में आने वाला स्थापित मूल्य विश्वास ही है। द्वितीय मूल्य श्रद्धा है। इन दोनों का योगफल ही क्रम

से प्रेमानुभूति पर्यन्त क्षमता को जागृत करता है। ''स्थापित मूल्यानुभूति क्रम में ही प्रेमानुभूति है।'' यह क्रम से ममता, स्नेह, विश्वास, कृतज्ञता, वात्सल्य, सम्मान, गौरव, श्रद्धा एवं प्रेम है। सामाजिकता में परिपूर्णता ही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता है। स्वतंत्रतापूर्वक सामाजिकता का आचरण ही सामाजिकता की परिपक्वता है। स्वतंत्रता ही प्रेमानुभूति का प्रधान लक्षण है। ''प्रेमानुभूति में वैविध्यता नहीं है।'' अन्य सभी स्थापित मूल्य प्रेमानुभूति में, से, के लिए सोपान है। वस्तु मूल्य एवं शिष्ट मूल्य स्थापित मूल्य में समर्पित होने के लिए बाध्य है। अनुभव का तात्पर्य क्रम पूर्वक प्राप्तोत्पत्ति ही है। मानव में क्रमानुभूति केवल ''मूल्य त्रय'' ही है। वस्तु मूल्य से शिष्ट मूल्य वरीय, शिष्ट मूल्य से स्थापित मूल्य अति वरीय है। स्थापित मूल्य में से प्रेम पूर्ण मूल्य है। इसी सत्यता से स्पष्ट परिज्ञान होता है कि प्रेमानुभूति के अनन्तर ही वास्तविकताएं स्पष्ट होती हैं। प्रकृति की सीमा में वास्तविकताएं होती है। ''प्रेममयता की अनुभूति कृतकृत्यता है।'' और कुछ करना शेष न हो, यही कृतकृत्यता है। गुणात्मक परिवर्तन के संदर्भ में, से, के लिए ही दायित्व एवं कर्त्तव्य प्रमाणित होते हैं। अनुभवमय क्षमता से संपन्न होने पर्यन्त दायित्व एवं कर्त्तव्य का अभाव नहीं है। उसके अनन्तर वह स्वभावगत होता है। अमानवीयता से मानवीयता में अनुगमन करने के लिए ''नियम त्रय'' पूर्वक दायित्व एवं कर्त्तव्य प्रमाणित होता है। मानवीयता से अतिमानवीयता में अनुगमन करने के लिए छः स्वभाव कर्त्तव्य एवं दायित्व को प्रमाणित करते हैं। धीरता से परिपूर्ण होना ही वीरता का होना, वीरता से परिपूर्ण होना ही उदारता का होना, उदारता से परिपूर्ण होना ही दया का होना, दया से परिपूर्ण होना ही कृपा का होना तथा कृपा से परिपूर्ण होना ही करूणा का होना प्रमाणित है।

47.

व्यक्तित्व और प्रतिभा की चरमोत्कर्षता में ही प्रेमानुभूति होती है।

श्रृंगार व कामुकता प्रेमानुभव करने का साधन नहीं है अथवा वे इसके लक्षण नहीं हैं। प्रेम आवेश नहीं है। प्रेम अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति एवं अव्याप्ति दोष से मुक्त है। कामुकता प्रच्छन्न रूप में आवेश है अर्थात् सम्मोहनात्मक आवेश है। ''प्रेमानुभूति में तन्मयता एवं अनन्यता स्वभावाभिव्यक्ति है।'' अनन्यता ही अखण्ड सामाजिकता का द्योतक है। सामाजिकता की वास्तविकता ही अखण्डता है। प्रेमानुभूतिमयता में ही जीवन चरितार्थता एवं अभयता सिद्ध होती है। ''मानव ही प्रेमी और प्रेमास्पद होने के लिए अर्ह है।'' **प्रकारान्तर से मानव जैसे ही प्रतीक प्रसिद्ध है।** मानव ही मानव के लिए प्रेमानुभूति का सुलभ उपाय है। प्रेमानुभूति योग्य क्षमता में सामाजिकता का प्रकट होना स्वाभाविक है। स्वभाव ही इसका मूल रूप है।

सामाजिकता स्वभाव में न हो, प्रेमानुभूति हो ऐसा प्रमाण नहीं है। प्रेमानुभूति पूर्ण मानव की स्वतंत्रतापूर्वक सामाजिकता की अभिव्यक्ति ही समाज के लिए उसकी उपादेयता है। प्रेमानुभूतिमयता की अभिव्यक्ति शिष्टता में अर्थात् आचरण में इंगित होती है। इंगित होना ही व्यंजना है। व्यंजना ही क्रम से भास, आभास, प्रतीति, अवधारणा एवं अनुभूति है। प्रेम दृश्य न होते हुए दृश्य पूर्वक व्यंजित होता है। यही अनन्यता की गरिमा है। अनन्यता स्वयं में दृश्य होते हुए अदृश्यात्मक प्रेममयता को व्यंजित कराती है। जैसे- अनुभव अदृश्य होते हुए भी प्रमाण एवं परंपरा है। प्रेममयता ही मानव में अनन्यता के रूप में प्रत्यक्ष होती है। ऐसी प्रेममयता के लिए ही सम्पूर्ण प्रकार के अभ्यास होते हैं। संपूर्ण प्रकार के अभ्यास की चरमोत्कृष्ट उपलब्धि प्रेमानुभूति ही है जो पूर्णतया सामाजिक एवं व्यवहारिक है। सामाजिकता एवं व्यवहारिकता में ही मानव की यथार्थता एवं वास्तविकता स्पष्ट होती है, न कि उत्पादन में।

''**प्रेम ही स्वर्गीयता का आद्यान्त आधार है।**'' स्वर्गीयता का प्रत्यक्ष रूप ही अनन्यता है। परस्पर मानव में अनन्यता ही अखण्डता है। मानव में अखण्डता ही स्वर्ग है। प्रेमानुभूति में ही सर्वोच्च प्रकार की सामाजिकता प्रकट होती है। सामाजिकता में ही स्वर्गानुभूति होती है। उसके अभाव में क्लेश होता है। सामाजिकता स्थापित मूल्यानुभूति एवं उसकी निरन्तरता ही स्वर्ग-स्वर्गीयता, समाधान एवं सफलता है। वस्तु मूल्य अथवा उत्पादन मानव की चरितार्थता के लिए पर्याप्त नहीं है।

''**प्रेममयता की अनुभूति जीवन में पूर्णता है।**'' यही पूर्ण जागृति का द्योतक है। पूर्णता ही जीवन का गन्तव्य है। संज्ञानीयता का यही लक्ष्य है। प्रेमानुभूति में ही अभाव और भाव की विषमताओं का तिरोभाव होता है। तिरोभाव का तात्पर्य भाव के निरन्तरता से है, जो जागृति का सहायक है। विषय चतुष्टय ही भाव के अनन्तर अभाव में एवं अभाव के अनन्तर भाव में परिणत होते हुए देखे जाते हैं।

''प्रेमानुभूति के लिए क्रम केवल मानवीयता पूर्ण जीवन में पूर्णता को पाना ही है।'' शुभकामना का उदय मानवीयता में ही प्रत्यक्ष होता है। यही प्रेमानुभूति के लिए सर्वोत्तम साधना है। शुभकामना क्रम से इच्छा में, इच्छा तीव्र इच्छा एवं संकल्प में तथा भासाभास प्रतीति एवं अवधारणा में स्थापित होता है। फलत: प्रेममयता का अनुभव होता है। मानव शुभ आशा से संपन्न है ही। यही अभ्यास पूर्वक क्रम से कामना, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति सुलभ होता है। मानव में प्रमाणित होने वाले नित्य शुभ मूल्य त्रयानुभूति ही है। चैतन्य इकाई का सर्वोच्च विकास मूल्यानुभूति योग्य क्षमता से सम्पन्न होना ही है। यह बाध्यता सत्ता में संपृक्तता है। प्रेमानुभूति ही व्यवहार में मंगलमयता को प्रकट करती है। व्यवहार में मंगलमयता का प्रत्यक्ष रूप ही अनन्यता है। ऐसी क्षमता का सर्वसुलभ होना ही लोकमंगल है। सामाजिक अखण्डता

ही लोकमंगल का प्रत्यक्ष रूप है। लोक मंगल की संभावना जागृति के क्रम में सर्वसुलभ है। मानव अपने अग्रिम विकास की संभावना को अपने से निर्मित कार्यक्रम से सफल बनाता है। उसकी सफलता केवल प्रेमानुभूति पूर्ण अथवा प्रेमानुभूति योग्य कार्यक्रम में ही है।

''प्रेमानुभूति का आधार केवल स्थापित मूल्यानुभूति ही है।'' यह चैतन्य प्रकृति के जागृति क्रम में उत्पन्न होने वाली क्षमता है। ऐसी क्षमता को पाने के लिए मानवीयता में संक्रमण आवश्यक है। मानवीयता, व्यवहार सुलभ एवं अखण्ड समाज है। व्यवहारानुषंगिक स्थापित मूल्यों का अनुभव होना प्रसिद्ध है। व्यवहार अनुभवगामी या अनुभव मूलक होता है। अनुभव मूल्यों से अधिक होता नहीं है। संपूर्ण मूल्य स्पष्ट है। स्थापित मूल्यानुभूति क्षमता में प्रेमानुभूति होना स्वभाविक है। ऐसी क्षमता सर्वसुलभ होना ही लोकमंगल है।

''सर्वमंगलमयता प्रेमानुभूति में ही है।'' बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि ही सर्वमंगलमयता का प्रत्यक्ष रूप है। प्रेमानुभूति में अपव्ययता की संभावना नहीं है। मानवीयता में संक्रमण ही अपव्यय का तिरोभाव है। मानव जीवन चरितार्थता सर्वमंगलमयता में ही है।

''संपूर्ण योगाभ्यास की चरमोपलब्धि भी प्रेमानुभूति ही है।'' सत्य चिन्तन से भी प्रेमानुभूति होती है। प्रेमानुभूति व्यवहारिक एवं सामाजिक है। प्रेमानुभूति योग्य क्षमता अमानवीयता में व्यवहारिक नहीं है। अमानवीयता सामाजिक नहीं है इसलिए व्यवहारिक नहीं है। साथ ही मानवीयतापूर्ण जीवन में अमानवीयता संभव नहीं है।

''प्रेमानुभूति योग्य क्षमता सम्पन्न होने के लिए शुचिता एवं गुणात्मक परिवर्तन में अनुशीलन अनिवार्य साधना है।'' सम्यकता की ओर गतिशीलता अर्थात् गुणात्मक परिवर्तन हेतु सुनिश्चित आचरण, व्यवहार एवं अर्थ का सदुपयोग ही साधना और अभ्यास है। शारीरिक स्वस्थता एवं शिष्टता का योगफल ही शुचिता है। प्रमाण परंपरा में अनुगमन ही अनुशीलन है। जीवन ही ''प्रमाण त्रय'' का प्रतिपादक है। प्रमाण ही जागृत मानव परंपरा है।

''मानव के चारों आयामों का पूर्ण जागृति ही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता है।'' यही ऐतिहासिक उपलब्धि मानव में प्रतीक्षित है। ऐसी क्षमता से सम्पन्न व्यक्तियों के योग्य कार्यक्रम ही अभ्युदय है। वह धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक कार्यक्रम ही है। ऐसे कार्यक्रम में निपुणता, कुशलता सहित मानव जीवन दर्शन की शिक्षा जो पाण्डित्य है उसका समावेश होना ही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता का सर्वसुलभ होना है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है।

''प्रेमानुभूति सम्पन्न जनमानस को उज्जवल करने के लिए शिक्षा की भूमिका अति महत्वपूर्ण है।'' शिक्षा ही विश्लेषण पूर्वक वास्तविकताओं पर आधारित जीवन के कार्यक्रम को स्पष्ट करती है। यही प्रत्येक मानव में पायी जाने वाली कामना एवं उसकी

आवश्यकता है। यही शिक्षा का दायित्व है, जिसके बिना मानव में अनुभव योग्य क्षमता का जागृत होना संभव नहीं है। शिक्षा व व्यवस्था ही जीवन में गुणात्मक परिवर्तन का स्रोत है। अंततोगत्वा यही अनुभव के लिए प्रेरणा है। वरिष्ठ अनुभूति प्रेमानुभूति ही है। यही पूर्णतया सामाजिक एवं व्यवहारिक है।

''उपदेश, स्मरण, कीर्तन, संकीर्तन की चरितार्थता भी प्रेमानुभूति में ही है।'' पूर्णता से सम्पन्न जीवन की आकाँक्षा मानव में प्रसिद्ध है। उसके योग्य वातावरण निर्माण करना ही सामाजिक कार्यक्रम है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है। यही समाधान, विश्राम एवं स्वर्ग है।

''संपूर्ण प्रकार के संयम, तपस्या व अनुष्ठान की चरितार्थता का सार्थक फलन प्रेमानुभूति और व्यवस्था में सार्वभौमता का प्रमाण है।'' सम्पूर्ण नेतृत्व को प्रेरणा स्रोत के रूप में पहचानना आवश्यक है। स्त्रोत अपने में दश सोपानीय व्यवस्था और सम्पूर्ण मूल्य प्रधानत: प्रेम मूल्य का प्रमाण होना आवश्यक है। अन्यथा जो होना है वह भ्रमित संसार में स्पष्ट हो चुका है। शिक्षा, व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, नित्य-नैमित्तिक कर्म, साहित्य, कला, भक्ति, पूजा, स्तवन, गायन एवं प्रदर्शन समुच्चय की चरितार्थता और सार्थकता को भी प्रेमानुभूति और व्यवस्था में प्रमाणित होने के रूप में ही पहचाना जा सकता है। मानव की प्रत्येक क्रिया, प्रक्रिया एवं कार्यक्रम के मूल लक्ष्य से विचलित होने पर साधन ही लक्ष्य हो जाता है। फलत: दिशाविहीनता घटित होता है। फलत: असामाजिकता एवं अव्यवहारिकता पूर्ण कार्य होता है। परिणामत: संदिग्धता, सशंकता एवं भयपूर्वक वर्ग संघर्ष एवं युद्ध होता है। अस्तु, उक्त सभी प्रकार के अथक प्रयास का प्रेममयता के अर्थ में कार्यक्रम संपन्न होना ही उसकी चरितार्थता है। मानव में चरितार्थता, सफलता एवं उज्जवलता उत्थान की कामना है। सुविधा के तारतम्य में उसकी व्यवहारिकता सिद्ध न होना ही दिशाहीनता है। इसका निराकरण केवल मूल्य त्रयानुभूति ही है। प्रधानत: स्थापित मूल्यानुभूति योग्य कार्यक्रम मानवीयता में चरितार्थ होता है। उसे स्थापित, प्रस्थापित एवं आचरित करना ही समाज एवं सामाजिक संस्थाओं का आद्यान्त कार्यक्रम है। यही मानवीयता में सर्वसामान्य सुलभ उपलब्धि है। मानवीयता के बिना मानव सुखी नहीं है या मानव का सुखी होना संभव नहीं है। इसे सर्वसुलभ करने का कार्यक्रम शिक्षा में पूर्णता को स्थापित करना है। तात्पर्य उत्पादन एवं व्यवहार शिक्षा के संयुक्त अध्ययन होने से है जो विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का, मानव विज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का, दर्शन शास्त्र के साथ क्रिया पक्ष का, साहित्य के साथ तात्विक पक्ष का, समाज शास्त्र के साथ मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता पक्ष का, राज्यनीति शास्त्र के साथ मानवीयता को संरक्षणात्मक नीति का, अर्थशास्त्र के साथ तन-मन-धनात्मक अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षात्मक नीति पक्ष का, भूगोल और इतिहास के साथ मानव तथा मानवीयता का

अध्ययन है। यही व्यवहार एवं व्यवसाय शिक्षा में संतुलन के लिए सर्वसुलभ उपाय है।

48.

उत्पादन एवं व्यवहारिकता अखण्ड समाज में, से, के लिए अपरिहार्य है।

अखण्डता के बिना सामाजिकता नहीं है। अखण्डता के लिए व्यवहारिक विशालता व साधनों की विपुलता अनिवार्य तत्व है। साधनों की विपुलता आकाँक्षाद्वय सीमा में चरितार्थ होती है। व्यवहार की विशालता सामाजिक अखण्डता में चरितार्थ होती है। सामाजिक अखण्डता के लिए व्यवसायिक उत्पादन में विपुलता को पाना तथा उसको अक्षुण्ण बनाये रखना अनिवार्य है। वस्तु उत्पादन एवं उसकी विपुलता को संयत, नियंत्रित, प्रयोजित एवं उसका सदुपयोग करने के लिए समाज में अखण्डता सहज चेतना अपरिहार्य है। इस तथ्य से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि जो देश या वर्ग विपुल उत्पादन में सक्षम हुए हों एवं व्यवहार विशालता से सम्पन्न होना चाहते हों उनका संतुलित, समृद्ध समाधान एवं सर्वाभीष्ट जीवन को चरितार्थ करने में तत्पर होना ही एकमात्र उपाय है। यही युद्ध, आतंक एवं परस्पर मानव के भय से मुक्त हो पाने के लिए पर्याप्त है। ''उत्पादन'' तथा ''संग्रह सुविधा'' के योगफल में मानव का संघर्ष पूर्वक युद्ध में तत्पर होना है, जो असामाजिक सिद्ध होता है। यही सुविधा एवं अतिभोगवादी प्रवृत्ति के उद्‌गमन के लिए कारण एवं प्रयास की गति है अर्थात् अतिभोग प्रवृत्ति वश अधिक उत्पादन का समाजीकरण एवं संकीर्णता वश व्यक्तित्व का समाजीकरण नहीं होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन ही सामाजिक एवं व्यवहारिक है तथा संतुलित व नियंत्रित है। यही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता का साक्ष्य है। साक्ष्य विहीन उपलब्धि एवं उसके लिए प्रेरणा ही रहस्य है। रहस्य से मानव में तृप्ति नहीं है। रहस्यता की प्रेरणा रहस्यता के लिए नहीं, रहस्यता से मुक्ति पाने के लिए है।

''**व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष रूप सद्‌व्यवहार एवं आचरण ही है।**'' ये गुणात्मक परिवर्तन के प्रत्यक्ष लक्षण है। व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलन एवं समृद्धि पर्यन्त अथवा पूर्णता पर्यन्त गुणात्मक परिवर्तन का अभाव नहीं है। व्यक्तित्व + उत्पादन विहीनता बराबर अंतर्विरोध बराबर क्रांति संभावना अर्थात् गुणात्मक परिवर्तन संभावना बराबर प्रतिभा संपन्नता की संभावना बराबर सामाजिकता की संभावना है। विपुल उत्पादन अर्थात् प्रतिभा संपन्नता + व्यक्तित्व विहीनता बराबर अंत:बहिर्विरोध बराबर संघर्ष बराबर प्रतिक्रान्ति बराबर युद्ध संभावना बराबर असामाजिकता की संभावना है। इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलन मानव जीवन में एक अनिवार्य तत्व है। मानवीयता पूर्ण

आचरण ही सद्‌व्यवहार है।

''मूलतः मानव जीवन में विरोध व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का असंतुलन ही है।'' यह अंतर्विरोध एवं बहिर्विरोध है। अंतर्विरोध बहिर्विरोध में प्रकट होता ही है। बहिर्विरोध अंतर्विरोध के कारण होता है। प्रतिभा का परिचय व्यवहार में, उत्पादन का परिचय उपयोग में अर्थात् व्यवसाय में एवं व्यक्तित्व का परिचय व्यवहार में होता है। प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति का अंतर्विरोध व्यक्तित्व विहीनतावश एवं व्यक्तित्व पूर्ण मानव का बहिर्विरोध प्रतिभा के न्यूनतावश होता है। उत्पादन में न्यूनतावश व्यक्तित्व में विशालता नहीं है। उत्पादन क्षमता के साथ व्यक्तित्व की न्यूनता सामाजिक सिद्ध नहीं है। व्यक्तित्व की ख्याति प्रतिभा पूर्वक, प्रतिभा का नियंत्रण व्यक्तित्व पूर्वक होता है।

''प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलित जीवन ही समाज, सामाजिकता एवं अखण्डता है।'' यही संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकात्मकता है।

''सिद्धान्त विहीन पद्धति से संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की सार्वभौमिकता होना संभव नहीं है।'' सार्वभौमिकता सिद्धान्त ही है। सिद्धान्त वास्तविकता है। जो जैसा है वही उसकी वास्तविकता है। प्रत्येक इकाई में रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म से अधिक अभिव्यक्ति नहीं है। इनमें से कोई कम हो, इकाई हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं है। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति श्रम गति परिणामशीलता के रूप में दृष्टव्य है। यही वास्तविकता है। प्रत्येक वास्तविकता सघन क्रम पूर्वक अभिव्यक्ति है। क्रम ही नियति है। नियति ही विकास गति श्रृंखला है। प्रकृति श्रम-गति-परिणाम है। इकाईयों का समूह है। संपूर्ण इकाईयाँ जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के रूप में दृष्टव्य है। प्रत्येक इकाई अपनी वास्तविकता से संपन्न है। वास्तविकताओं का दर्शन मानव ही करता है। मानव में ही दर्शन क्षमता अभिव्यक्ति हुई है। यही दर्शन क्षमता जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का विश्लेषण करती है। फलतः ''प्रमाण त्रय'' स्थापित होता है। प्रमाणों के आधार पर ही सिद्धांतों का प्रतिपादन होता है। सिद्धांतों के आधार पर ही संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था सिद्ध होती है। प्रकृति का मूल सिद्धांत श्रम, गति एवं परिणाम ही है। इसी सिद्धांत के आधार पर ''पूर्णता त्रय'', ''तात्रय'', ''काल त्रय'', ''क्रिया त्रय'', ''अवस्था चतुष्टय'' के विश्लेषण पूर्वक मानव के चतुरायाम एवं पाँचों स्थितियाँ स्पष्ट हुई हैं। फलतः अवस्था चतुष्टय की वास्तविकताओं पर धर्म एवं स्वभाव का स्पष्टीकरण हुआ है। यही सिद्धांत की गरिमा है। सिद्धांत ही वादाविवाद, संशय, विपर्यय, अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति एवं अव्याप्ति दोषों से मुक्त यथार्थता का बोध सुलभ कर देता है। यही शिक्षा संस्कार की गरिमा है। शिक्षा पूर्वक ही मानव में संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था सर्वसुलभ होती है, जिसका विश्लेषण हुआ है। मानवीयता जागृति के क्रम में पायी

जाने वाली एक वास्तविकता है। यह प्रमाण सिद्ध हुआ है। इसी के आधार पर मानव संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था का विश्लेषण हुआ है।

''परिणाम में ही गठन पूर्णता की महत्ता, श्रम में ही विश्राम की आवश्यकता एवं गति में ही गन्तव्य की अनिवार्यता प्रकट है।'' गठन पूर्णता गणित के प्रयोग से सिद्ध होती है। क्रिया पूर्णता व्यवहार पूर्वक सिद्ध होती है। आचरण पूर्णता अनुभव पूर्वक सिद्ध होती है। ये सिद्धियाँ ही प्रमाण है। ''पूर्णता त्रय'' से अधिक मानव जीवन में अध्ययन प्रमाणित नहीं है। इन्हीं में, से, के लिए ही विधिवत् अध्ययन होना ज्ञानावस्था की विशेषता है। ज्ञानावस्था में ही अध्ययन पूर्ण होता है। अध्ययन पूर्णता ही समाधान है। अध्ययन पूर्णता निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य ही है। अध्ययन ही ''प्रमाण त्रय'' को प्रसारित करता है।

''प्रमाण त्रय ही संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकसूत्रता का सूत्र है।'' भोग और व्यापार मूलक क्षमता सार्वभौमिक संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था को प्रकट करने में असमर्थ है। ''प्रमाण त्रय'' पूर्वक ही मानव एवं मानवीयता की वास्तविकता स्पष्ट होती है। मानव के बिना मानवीयता तथा मानवीयता के बिना मानव की वास्तविकता स्पष्ट नहीं है। मानवीयता की अपेक्षा में ही अमानवीयता एवं अतिमानवीयता का अध्ययन होता है। अध्ययन ही वास्तविकता का दर्शन है। वास्तविकता विकास क्रमोपस्थिति है। प्रमाण ही सिद्धांत का प्रत्यक्ष रूप है जो जीवन है। प्रयोग, व्यवहार, समाधान एवं अनुभूति से अधिक जीवन नहीं है।

49.

प्रमाण त्रय ही विश्वास है।

मानव में परिवार से अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में, से, के लिए विश्वास विहीनता ही अपूर्णता है। अपूर्णता अविश्वास का द्योतक है। जीवन में अपूर्णता ही अध्ययन में अपूर्णता, अध्ययन में अपूर्णता ही प्रतिभा व व्यक्तित्व में अपूर्णता, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व में अपूर्णता ही प्रबुद्धता में अपूर्णता, प्रबुद्धता में अपूर्णता ही प्रमाणिकता में अपूर्णता, प्रमाणिकता में अपूर्णता ही सामाजिकता में अपूर्णता, सामाजिकता में ही अपूर्णता ही वर्गीयता, वर्गीयता ही जीवन में अपूर्णता है। यही अपूर्णताएं अविश्वास अथवा विश्वास विहीनता है। इसके स्थान पर जीवन में पूर्णता ही अध्ययन में पूर्णता, अध्ययन में पूर्णता ही प्रतिभा एवं व्यक्तित्व में पूर्णता, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व में पूर्णता ही प्रबुद्धता में पूर्णता, प्रबुद्धता में पूर्णता ही प्रमाणिकता में पूर्णता, प्रमाणिकता में ही पूर्णता ही सामाजिकता में पूर्णता, सामाजिकता में पूर्णता ही वर्ग

विहीनता, वर्ग विहीनता ही अखण्ड समाज चेतना का प्रमाण एवं जीवन में पूर्णता है।

''**प्रमाण व सिद्धान्त ही निर्विवाद है।**'' वास्तविकताओं को इंगित कराना ही प्रमाण का तात्पर्य है। विश्लेषण प्रक्रिया ही सिद्धान्त है। यही सार्वभौमिक सत्य, सत्यता, नीति, नियन्त्रण, स्थिति, परिस्थिति, जड़-चैतन्यात्मक ''पूर्णता त्रय'' प्रकटन प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। फलत: मानव जीवन के चारों आयाम, दिशा व पाँचों स्थिति में विश्लेषित हुई है। यही ''वाद त्रय'' पूर्वक सहअस्तित्ववाद को प्रस्थापित किया है। यही विश्लेषण मानव जीवन की परम गरिमापूर्ण मध्यस्थता को प्रमाणित किया है। मानव जीवन में प्रमाणिकता प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभूति ही है। आवश्यकीय सभी परिप्रेक्ष्यों एवं कोषों में मानव प्रमाणित होना ही प्रमाणिकता है। प्रमाणिकता का प्रसारण मानव जीवन में प्रसिद्ध है। यही जागृत मानव परंपरा को स्पष्ट करती है। मानव परंपरा में निर्विवादिता ही अभयता, अभयता ही विश्वास, विश्वास ही सहअस्तित्व, सहअस्तित्व ही अखण्डता, अखण्डता ही सामाजिकता, सामाजिकता ही मानवीयता, मानवीयता ही मानव के लिए प्रमाण एवं सिद्धान्त, प्रमाण एवं सिद्धान्त ही निर्विवाद है।

''**विश्वास पूर्ण जीवन में प्रगतिशील कार्यक्रम विश्वास विहीनता पर्यन्त प्रतिक्रियावादी कार्यक्रम प्रसिद्ध है।**'' प्रगतिशीलता कार्यक्रम ही सतर्कता का द्योतक है जो समाधान निरंतरता है। प्रगतिशीलता गुणात्मक परिवर्तन के क्रम में होती है। गुणात्मक परिवर्तन जागृति के क्रम में है। **मानव में विश्वास अमानवीयता से मानवीयता एवं मानवीयता से अतिमानवीयता क्रम ही है।** मानवीयता से परिपूर्ण होने के अनन्तर ही प्रगतिशील कार्यक्रम आरम्भ होता है। यही अतिमानवीयता से परिपूर्ण होते तक संबद्ध रहेगा। विश्वास स्थापित मूल्यों में साम्य मूल्य है। विश्वास मूल्य की अनुभूति मानवीयता में ही होती है। विश्वास ही क्रम से पूर्ण मूल्यानुभूति पर्यन्त प्रगतिशीलता के लिए बाध्य करता है। इसी क्रम में मानव में गुणात्मक परिवर्तन होता है। फलत: वह सतर्कता एवं सजगता से परिपूर्ण होता है जो समाधान निरंतरता का आधार है। यही सामाजिकता को प्रकट करता है। साथ ही उसको प्रमाण पूर्वक अक्षुण्ण बनाता है तभी जीवन का चतुर्दिग उदय होता है। यही अभ्युदय है। संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकसूत्रता ही चतुर्दिग उदय है। इनमें विषमता ही वर्ग समुदाय है। अभ्युदय विहीन जीवन सामाजिक सिद्ध नहीं होता है। अभ्युदय का प्रमाण ही स्थापित मूल्यों की अनुभूति है। अभ्युदय अर्थात् सर्वतोमुखी समाधान ही जीवन सफलता है। यही चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों में दश सोपानीय व्यवस्था की एकसूत्रता के लिए प्राणतत्व है अर्थात् मूल तत्व है। विश्वास विहीन प्रत्येक संबंध एवं संपर्क में दायित्व एवं कर्त्तव्य वहन सिद्ध नहीं होता है। दायित्व एवं कर्त्तव्य वहन की उपेक्षा अथवा तिरस्कार पूर्वक समाज संरचना नहीं

होती है और न सामाजिकता ही सिद्ध होती है।

विशेषत: मानव के साथ प्रतिक्रिया अपराध के बिना नहीं होती है। अमानवीयतावादी जीवन में किया गया संघर्ष ही प्रतिक्रियावादी जीवन है। अमानवीयता ही संघर्ष का प्रधान कारण है। अमानवीयता की सीमा में अभ्युदय संभव नहीं है। अभ्युदय विहीन जीवन मानवीयता पूर्ण होना संभव नहीं है। अभ्युदय के लिए मानवीयता (चेतना विकास मूल्य शिक्षा कार्यक्रम ही) एकमात्र आधार है। अपराध एवं प्रतिक्रियात्मक जीवन स्वस्थ्य एवं सफल नहीं है। इसे सफल बनाने के लिए प्रत्येक मानव में वांछा पायी जाती है। इसी तथ्य वश मानव मानवीयता से परिपूर्ण होने के लिए बाध्य है।

50.

मानव में स्थूल, सूक्ष्म व कारण भेद से क्रियाशीलता प्रसिद्ध है।

इन्द्रिय व्यापार एवं उत्पादन स्थूल क्रियाएं हैं। मन, वृत्ति, चित्त एवं बुद्धि की क्रियाशीलता एवं मूल्यानुभूति सूक्ष्म क्रियाएं है। स्थूल क्रियाएं सूक्ष्म क्रिया से अनुप्राणित एवं नियंत्रित है। उत्पादन से समृद्धि, व्यवहार से सहअस्तित्व, विचार में समाधान एवं सत्य में अनुभूति चरितार्थ होना ही कारण क्रिया है। इसी चरितार्थता के लिए ही सम्पूर्ण प्रकार के अभ्यास हैं। चरितार्थता के अतिरिक्त अर्थात् इसके विपरीत जो कुछ भी क्रियाकलाप हैं वे सब अव्यवहारिक, अमानवीयता की सीमा में गण्य है। स्थूल क्रियाओं का नियंत्रण एवं सूक्ष्म क्रियाओं में परिमार्जन एवं पूर्णता प्रसिद्ध है। चैतन्य जीवन में ही सूक्ष्म जीवन गण्य है। मन, वृत्ति एवं चित्त ही सूक्ष्म क्रिया है। बुद्धि एवं आत्मा कारण क्रिया है। चैतन्य जीवन सूक्ष्म एवं कारण क्रिया का सम्मिलित रूप है। अनुभव में पराभव नहीं है। उत्पादन एवं व्यवहार में ही विभव एवं पराभव का परिचय होता है। व्यवहार एवं व्यवसाय में असफलता विचार व अनुभूति पूर्णता का लक्षण नहीं है। विचार पूर्णता केवल निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य ही है। विचार पूर्णता के लिए ही शिक्षा है जिसका स्थूल रूप ही उत्पादन एवं व्यवहार है। सत्य और सत्यता की ही अनुभूति होती है।

''उदय सहित उपलब्धियाँ होती है।'' अनुभव से अधिक उदय होना प्रसिद्ध है। प्रत्येक उदय अनुमान क्रिया के लिए विशालता है। यही उदय जो अनुमानपूर्वक सन्निहित होता है इसके पूर्व में वह आगम क्रिया थी ही। यह क्रम जीवन जागृति पर्यन्त होता है उसके (उदय अनुमान क्रिया) पूर्व अथवा अप्राप्ति एवं अज्ञान रहता है। जीवन संबंधी भ्रम व रहस्य एवं

उत्पादन संबंधी अप्राप्तियाँ मूलत: अज्ञान का ही द्योतक हैं। चैतन्य प्रकृति का अध्ययन जीवन को स्पष्ट करता है। जड़ प्रकृति का अध्ययन आकाँक्षा द्वय संबंधी वस्तु एवं सामग्रियों को उत्पन्न करने की क्षमता प्रदान करता है। यही भौतिकीय अध्ययन की उपलब्धि एवं मूल्य त्रयानुभूति चैतन्य प्रकृति की अध्ययन की गरिमा है। मूल्यानुभूति योग्य क्षमता ही व्यवहार चरितार्थता है। मूल्यानुभूति चैतन्य प्रकृति का विधिवत् अध्ययन है। चैतन्य प्रकृति मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा का संयुक्त रूप है। इसी का विश्लेषण हुआ है। प्रत्येक उदय प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभूति के लिए उत्प्रेरणा है। चैतन्य प्रकृति का परावर्तन ही व्यवहार एवं उत्पादन उसका प्रत्यावर्तन ही अनुभूति है। अध्ययन क्षमता चैतन्य क्रिया में स्पष्ट है। मानव का मूल रूप अध्ययन क्षमता ही है। अध्ययन क्षमता ही व्यवहार पूर्वक व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के रूप में प्रकट होती है। अध्ययन प्रमाणिकता को स्थापित करता है। प्रमाणिकता की परंपरा होती है। यही अध्ययन है। प्रमाण विहीनता प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का सहायक तत्व नहीं है। यह अज्ञान एवं अक्षमता का ही द्योतक है। अक्षमता एवं अज्ञान का निवारण विधिवत् अध्ययन से होता है। उदय ही गुणात्मक परिवर्तन व परिमार्जन के लिए बाध्यता है। शिक्षा एवं व्यवस्था ही उदय के लिए समर्थ प्रेरणा है। सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति ही उदय सर्वस्व है। यह प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम क्रिया के रूप में ज्ञातव्य है। यही आद्यान्त वास्तविकता है। वास्तविकता का ही उदय होता है। उसके प्रति भ्रम होना मानव में अक्षमता का द्योतक है। प्रत्येक मानव की क्षमता परावर्तन, परिवर्तन एवं प्रत्यावर्तन के रूप में स्पष्ट है। प्रत्यावर्तन अनुभव के रूप में, परिवर्तन धन-ऋणात्मक रूप में तथा परावर्तन व्यवहार एवं उत्पादन के रूप में होता है। इससे अधिक मानव का प्रकटन नहीं है। गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक ही मानव क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता से सम्पन्न होता है। यही उदय की आद्यान्त चरितार्थता है।

''अप्रधान रूप में किया गया भोग ही उपभोग है।'' मानवीयता पूर्ण जीवन में संपूर्ण भोग अवरीयता के रूप में, दिव्य मानवीयता में नगण्यता के रूप में तथा अमानवीय जीवन में अतिप्रधान रूप में होना ज्ञातव्य है। यही अमानवीयतावादी जीवन में अपव्ययता का प्रधान कारण है। विषय प्रमत्तता क्रूरता के लिए प्रधान कारण है। विषय प्रमत्तता सम्मोहनात्मक आवेश है। इसमें होने वाले व्यवधान क्रूरता में परिवर्तित होते हैं। इसी कारणवश भ्रमित मानव का सामाजिक होना संभव नहीं हैं। व्यवहार की अपेक्षा में ही भोगों की प्रधानता एवं अप्रधानता सिद्ध होती है। व्यवहारिक शिष्टता एवं मूल्यों का उपेक्षा पूर्वक किया गया भोग ही अपव्यय तथा उसमें भोग प्रवृत्ति ही प्रमत्तता है जो स्पष्ट है। शिष्टता पूर्वक ही संपूर्ण भोग संयत होता है फलत: अप्रधान होता है जो मानवीयता की सीमा में सार्थक होना स्पष्ट है। यही आसक्ति एवं अनासक्ति का तात्पर्य है। विषयों के प्रति आसक्ति एवं अनासक्ति ऐषणाओं के प्रति प्रवृत्ति एवं अप्रवृत्ति तथा अनुभूति के प्रति संकल्प ही प्रसिद्ध है।

''आयोजनात्मक, प्रयोजनात्मक एवं योजनात्मक कार्यक्रम प्रसिद्ध हैं।'' आत्मीयता पूर्ण अर्थात् न्याय सम्मत पद्धति से किया गया सम्मेलनात्मक योजना ही आयोजन है। पूर्णता की अपेक्षा में या पूर्णतया परस्पर मिलन ही सम्मेलन है। आयोजनात्मक कार्यक्रम ही सामाजिक कार्यक्रम है। सामाजिक कार्यक्रम प्रधानत: संवेदनशीलता व संज्ञानीयता की अभिव्यक्ति है, यही प्रयोजन है। संज्ञानीयता ही आयोजन का प्रधान कारण है। संज्ञानीयता के अभाव में आयोजनात्मक कार्यक्रम सफल नहीं है। आयोजनात्मक कार्यक्रम ही सामाजिकता को स्पष्ट करता है। आयोजन मानव के चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों के अर्थ में चरितार्थ होता है। यही प्रमाण मूलक दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था होने से परंपरा है। प्रमाण मूलक न होने से वर्ग की अभिव्यक्ति है। परंपरा में प्रमाण मूलक चिन्तन का होना अनिवार्य है। यही सफलता का द्योतक है। इसके अभाव में आयोजन नहीं है। आयोजन में व्यवहारिकता का निर्धारण होना ही प्रधान तत्व है। व्यवहारिकता अनुभव मूलक होने से ही सफल होता है। फलत: समाज संरचना स्पष्ट होता है अर्थात् संबंध एवं संपर्क के प्रति दायित्व एवं कर्त्तव्य निर्वाह होता है। फलत: समाज की अखण्डता एवं अक्षुण्णता सिद्ध होता है। आयोजन की चरितार्थता अखण्डता में ही है न कि विघटन में। संपूर्ण आयोजन मानव धर्मीयता को प्रसारित करने के लिए बाध्य है। मानव धर्मीयता सार्वभौमिक है। मानव संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था के रूप में ही मानव धर्मीयता प्रसारित होता है।

योजनाएं उत्पादन-विनिमय के संबंध में होती हैं जो साधन नियोजन सहित परियोजना में परिवर्तित होता हैं। व्यवसाय में उत्पादन ही प्रमुख उद्देश्य है। आयोजन में विनियोग संबंधी, योजना में नियोजन संबंधी निश्चय, निर्णय, संभावना, व्यवहारिकता एवं प्रमाण सम्मत होना आवश्यक है। प्रमाण परंपरा पूर्वक ही आयोजनात्मक एवं योजनात्मक कार्यक्रम सफल होता है। आयोजनात्मक कार्यक्रम अर्थ के सदुपयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक तथ्य को स्पष्ट करता है। यही आयोजन का मूल तत्व एवं मूल लक्ष्य है। इसे सफल बनाने के लिए ही ऐतिहासिक प्रेरणा भी सहायक होता है। इन ऐतिहासिक स्मरण परंपराओं में सामाजिकता ही उत्प्रेरक तत्व है। वर्गीयता के आवेश से मानव का ऐतिहासिक सिद्ध होना संभव नहीं है। प्रत्येक आयोजन मानवीयता पूर्ण अथवा अतिमानवीयता पूर्ण संचेतना से ही सफल होता है अन्यथा असफल होता है।

51.

अभ्यास समग्र की उपलब्धि क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता ही है।

इससे अधिक मानव के लिए उपलब्धियाँ शेष नहीं हैं। इनके अतिरिक्त और किसी प्रकार की सिद्धि की चर्चा रहस्यमयता ही है। रहस्यमयता की चर्चा रहस्योन्मूलन के लिए सहायक नहीं है। रहस्य से रहस्य का निराकरण नहीं है। यथार्थता की श्रृंखला में ''अज्ञात'' रहना संभव नहीं है। अज्ञातता रहस्य नहीं है। क्रम से ज्ञान उदय होने की संभावना है। सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के अतिरिक्त और कोई वास्तविकता नहीं है। मानव जीवन जो जागृति के क्रम में प्रत्यक्ष है, उनमें गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता सिद्ध होता है। उसके अतिरिक्त कल्पनात्मक श्रेष्ठ सिद्धि अथवा नेष्ठ सिद्धि दोनों ही सामाजिकता को सिद्ध करने में समर्थ नहीं हैं। हिंसक एवं अनिष्टकारी अथवा प्रलोभनात्मक प्रक्रिया या उसके लिए किया गया अभ्यास भी अमानवीयता ही है। यही रहस्यमयता है। ऐसी सिद्धियों के प्रति तीव्र इच्छा के मूल में स्वयं में रहस्यता का होना आवश्यक है। स्वयं में रहस्यता के बिना रहस्यता प्रिय होना संभव नहीं है। स्वयं में रहस्यता अमानवीय तथा विजय पाने, आक्रमण करने एवं सुविधा संग्रह करने के संदर्भ में होता है। स्वयं के जागृति क्रम एवं कार्यक्रम तथा उसकी प्रतिष्ठा के संदर्भ में पूर्ण बोध न होना ही इसका कारण है।

भौतिकवादी चिन्तन के आनुषंगिक जो रासायनिक एवं भौतिक प्रक्रियाएं विश्लेषण पूर्वक स्पष्ट हुई हैं, उनमें मानव का विश्लेषण न होना, साथ ही भौतिकता को जीवन सर्वस्व क्रियाकलाप स्वीकार किया जाना अमानवीयता के लिए परमावधि प्रोत्साहन सिद्ध हुआ है। भौतिकवादी चिन्तन जड़ प्रकृति का अध्ययन है। मानव जड़ प्रकृति में सीमित नहीं है। जड़ प्रकृति पर चैतन्य प्रकृति का अधिकार एक वास्तविकता है। चैतन्य प्रकृति के स्पष्ट अध्ययन के बिना मानव का अध्ययन अपूर्ण है। अपूर्ण अध्ययन पूर्वक पूर्ण जीवन को अभिव्यक्त करना संभव नहीं। यही अपूर्णता वर्ग में परिणत होता है। अपूर्णता सार्वभौमिक होना संभव नहीं है। अस्तु, मानवीयता पूर्ण जीवन पद्धति, प्रणाली एवं नीति पूर्वक ही मानव अखण्डता का अनुभव करता है।

''**चिदानन्द, आत्मानन्द एवं ब्रह्मानन्द ही परमावधि उपलब्धि है।**'' यही अभ्यास का संपूर्ण लक्ष्य है। चिदानन्द का प्रधान लक्षण अभय है। यही सजगता सतर्कता की सर्वोच्च उपलब्धि है। ये सब क्रिया पूर्णता के द्योतक हैं। इसका प्रत्यक्ष रूप ही सामाजिकता है। अभाव के अभाव में ही चिदानंदानुभूति होती है। चिदानन्द का आधार समाधान ही है। क्रिया पूर्णता में समाधान स्वभाव सिद्धि है। विधिवत् अभ्यास की प्रथमोपलब्धि चिदानंद है। चिदानंद ही पूर्ण सामाजिकता को प्रकट करता है अथवा चिदानंद की उपलब्धि पूर्ण सामाजिकता है।

चिदानंद के बिना अथवा चिदानंद में अनुगमन के बिना सामाजिकता की अभिव्यक्ति नहीं है अथवा सामाजिकता का सार्वभौम होना संभव नहीं है।

आत्मानंद जीवन में एक महोपलब्धि है। यह प्रत्यावर्तन सिद्धि है। आत्मानंद प्रत्यावर्तन का प्रधान लक्षण है। मानवीयता पूर्ण जीवन से समृद्ध होने के अनन्तर ही प्रत्यावर्तन प्रक्रिया सम्पन्न होता है। आत्मानुशासित जीवन का प्रतिष्ठित होना ही प्रत्यावर्तन का प्रधान लक्षण है। आत्मानुशासित जीवन स्वतंत्रतापूर्वक मानवता को अभिव्यक्त करता है। साथ ही देव मानव पद में प्रतिष्ठित होता है। देव मानव में निवृत्ति परिचय होता है। प्रत्यावर्तन के अनन्तर ही मध्यस्थ जीवन स्थापित होता है। यह स्वतंत्रता का प्रधान कारण है। मानव स्वतंत्रता के लिए अनादिकाल से प्रतीक्षारत है। प्रत्यावर्तन के अनन्तर स्वभावत: मानव स्वतंत्र होता है। यही देव मानव पद है। देव मानव अन्य मानव के लिए मार्गदर्शक होता है। प्रत्यावर्तन के अनन्तर ही आत्मा से बुद्धि, बुद्धि से चित्त, चित्त से वृत्ति एवं वृत्ति से मन अनुशासित होता है। मन से मेधस, मेधस से इंद्रिय व्यापार संपन्न होता है। इस पद्धति से आत्मानुशासित जीवन प्रकट होता है।

''ब्रह्मानंद ही अभ्यास की परमोपलब्धि है अथवा अभ्यास का चरमोत्कर्ष है।'' ब्रह्मानंद ही सत्तामयता में अनुभूति है। यही जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अभीष्ट है। चैतन्य प्रकृति का अंतिम जागृति सोपान यही है। देव मानवीयता से दिव्य मानवीयता में यही संक्रमण है अथवा आचरण पूर्णता में संक्रमण है। आचरण पूर्णता का प्रधान लक्षण ही ब्रह्मानंद है। ऐसे ब्रह्मानुभूति सम्पन्न व्यक्ति ही आप्त पुरूष हैं। इनमें आप्त कामना स्वभाव रूप में निष्पन्न होता है। यही मध्यस्थ जीवन की सर्वोच्च स्थिति है। ऐसी इकाईयाँ संसार के लिए मार्गदर्शक, पथदर्शक एवं जीवन के रहस्योन्मूलक होती हैं।

''चिदानंद स्थूल एवं सूक्ष्म जीवन की निर्विरोधिता में, आत्मानंद स्थूल-सूक्ष्म-कारण जीवन में एकसूत्रता के रूप में तथा ब्रह्मानंद सत्तामयता में सहअस्तित्व सहज अनुभूति के रूप में प्रमाणित है।'' चिदानंद सर्वसुलभ होना ही आत्मानंद एवं ब्रह्मानंद की संभावना है। मानवीयतापूर्ण जीवन में चिदानंद, देव मानवीयतापूर्ण जीवन में आत्मानंद एवं दिव्य मानवीयतापूर्ण जीवन में ब्रह्मानंद चरितार्थ होता है। चिदानंद एवं आत्मानंद ब्रह्मानंदानुभूति में समाये रहते हैं अर्थात् ब्रह्मानुभूति में सहजत: मानवीयता एवं देव मानवीयता अभिव्यक्त होती है। चिदानंद के सर्वसुलभ होने की संभावना है। मानवीयतापूर्ण समाज संरचना, शिक्षा एवं व्यवस्था, आचरण ही उसके लिए आवश्यकीय तत्व है। मानवीयता मानव का स्वत्व है। स्वत्व का व्यवहृत होना न होना शिक्षा एवं व्यवस्था पर, शिक्षा एवं व्यवस्था धर्मनैतिक एवं राज्यनैतिक संस्थाओं की क्षमता पर, धर्मनैतिक एवं राज्यनैतिक संस्थाओं की क्षमता उपलब्ध दर्शन पर और दर्शन भौतिक-बौद्धिक-आध्यात्मिकता पर आधारित होना पाया जाता है।

अध्यात्म चिंतन सत्तामयता को स्पष्ट करने के लिए, बौद्धिक चिंतन (मनोवैज्ञानिक चिंतन) संवेदनशीलता एवं चैतन्य जीवन का विश्लेषण करने में तथा भौतिक चिंतन रासायनिक एवं भौतिक क्रिया का निरीक्षण, परीक्षण एवं सर्वेक्षण करने में क्रम से ज्ञान एवं अनुभूति, दर्शन एवं अनुभूति, प्रयोग एवं अनुभूति होती है।

52.

अमानवीयता से ग्रसित वर्ग संघर्ष की सीमा में प्रलोभन व भय का अभाव नहीं है।

भय मुक्ति के बिना आश्वस्त होना संभव नहीं है। अभ्यास के लिए आश्वस्त एवं विश्वस्त होना आवश्यक है। उससे अर्थात् भय से मुक्त होने के लिए प्रचलित वैयक्तिक सीमा में साधना व अभ्यास हुआ है। ऐसे वातावरण में किया गया सफल अभ्यास ही आदर्श के रूप में गण्य है। संपूर्ण आदर्श आचरण योग्य है ही। आचरण योग्य न होने की स्थिति में वह आदर्श नहीं है। आचरण में आया हुआ दर्शन ही जीना होता है। अन्य जो आचरण योग्य शेष हैं वे सब आदर्श हैं। जब तक आदर्श शेष है तब तक जीवन में परिमार्जन भावी है। वैयक्तिक जीवन में किया गया अभ्यास ही उनके आचरण में प्रत्यक्ष होता है। यही अन्य के लिए आदर्श होता है। यही अभ्यास सिद्ध आचरण एवं सामान्य जनजाति की दूरी है। आदर्श जब संप्रदाय परंपरा में प्रस्तुत होता है तब उसमें अनेक संदिग्धताओं का निर्माण होता है। फलत: आदर्श के प्रति संदिग्ध होना पाया जाता है। आदर्श परंपरा नहीं है। आदर्शात्मक आचरण साधना से उद्गमित होता है न कि परंपरा से। इसका निराकरण मानवीयता पूर्ण जीवन शिक्षा, व्यवस्था एवं समाज संरचना ही है। मानवीयता पूर्ण जीवन में आचरण एवं व्यवहार संबंधी आदर्श सामान्य हो जाता है। फलत: उसकी औपचारिकता पूर्वक जो अवांछनीय तत्व निर्मित होते हैं उनका निराकरण होता है साथ ही सभी प्रकार की संदिग्धताएं दूर होती है।

''**आदर्श पर्यन्त रहस्यता का अभाव नहीं है।**'' रहस्यता निर्भ्रमता का द्योतक नहीं है। शंका एवं प्रतिशंका रहस्य की देन है। यह मानव के लिए पीड़ा है। ईश्वर तंत्रित धर्म, स्वर्ग एवं पुनर्जन्म के संदर्भ में रहस्यमय प्रचार पुन: रहस्य का कारण होता है। यह अंततोगत्वा पीड़ा एवं समस्या ही रह जाती है। भय और प्रलोभन पर आधारित जितनी भी चर्चा है वह रहस्य ही है। यह रहस्य से ही आरंभ होता है, रहस्य का ही वर्णन करता है, साथ ही रहस्य में ही इसका अंत होता है अर्थात् विचार गति अवरूद्ध होती है। प्रलोभन से संविधा, विलासिता एवं अतिभोग में मानव आसक्त-प्रसक्त होता है जो प्रसिद्ध है। इस तथ्य से यह स्पष्ट हुआ कि प्रलोभन एवं भय पर आधारित जितने भी आख्यान, व्याख्यान, मनोरंजन, कालपेक्षात्मक

कार्यक्रम है वे मानव में गुणात्मक परिवर्तन के लिए अथवा वास्तविकताओं को स्पष्ट करने में समर्थ नहीं है। वास्तविकताएं भय या प्रलोभन नहीं है। वास्तविकताएं केवल गुणात्मक परिवर्तन के लिए बाध्यता एवं उसके अनुसरण में केवल समाधान है। समाधानमयता के लिए बाध्यता एवं उसके अनुसरण में केवल समाधान है। समाधानमयता ही मानव में सुख, शांति एवं संतोष को प्रमाणित करती है।

पुनर्जन्म के पक्ष-विपक्ष में जो कुछ भी रहस्यात्मक चर्चा है उसका निराकरण वास्तविकता पर आधारित है। वास्तविकता सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। विकास क्रम में पायी जाने वाली गठन पूर्णता अमरत्व को स्पष्ट करती है। क्रिया पूर्णता स्वर्ग, स्वर्गीयता, समाधान एवं समृद्धि को प्रकट करती है। आचरण पूर्णता भ्रम मुक्ति एवं परमानंद को प्रमाणित करती है। ये वास्तविकताएं अभ्युदय में पाये जाने वाले तथ्य हैं।

''अभ्यास केवल वास्तविकताओं के अनुसंधान एवं अनभव के लिए कार्यक्रम है।'' कार्यक्रम सघन व्यवस्था है। सघन व्यवस्था स्वयं प्रक्रिया है। स्वयं प्रक्रिया स्वभावाभिव्यक्ति है। स्वभावाभिव्यक्ति ही नियंत्रण है। नियंत्रण ही सत्तामयता में संपृक्तता है। सत्तामयता में नियंत्रण ही अनुभूति है। सत्तामयता में अनुभूति ही चैतन्य प्रकृति की विशालता है। सत्तामयता के अर्थ में व्यापक शब्द प्रायोजित है। प्रकृति की अभ्युदय पूर्णता ही सत्तामयता में अनुभूति है। अभ्युदय पूर्णता ही जागृति पूर्णता है। जागृति पूर्णता ही सतर्कता एवं सजगता है। सतर्कता एवं सजगता ही अभ्यास का चरमोत्कर्ष है। सतर्कता व्यवहार पूर्णता एवं सजगता ही अनुभव पूर्णता का द्योतक है।

53.

मानव जीवन में भक्ति जागृति के अर्थ में वांछित प्रक्रिया है।

भजन एवं सेवा का योगफल ही भक्ति है। भय से मुक्त होने के लिए किया गया कायिक, मानसिक एवं वाचिक क्रियाकलाप ही भजन है। तदानुकूल व्यवहार एवं आवश्यकता से अधिक उत्पादन तथा शेष का विधिवत् विवरण एवं परिचर्या ही सेवा है। भय मुक्ति के लिए परम सत्य में तन्मयता ही प्रधान आधार है। यह भक्ति की विशेषता है। तन्मयता ही क्रम से तदात्मयता एवं तद्‌रूपता भी है। इसके मूल में अर्पण-समर्पण अनिवार्य है। यह जागृत के साथ अर्पण-समर्पण पूर्वक ही चरितार्थ होती है। समर्पण का तात्पर्य पूर्णता हेतु प्रस्तुत होने से तथा

अर्पण का तात्पर्य सेवा-सुश्रुषा से है। इनकी चरितार्थता उसी स्थिति में प्रत्यक्ष होती है जब जो जिसमें अर्पित-समर्पित होता है उसकी क्षमता तथा अर्पण-समर्पण की पूर्णता के योगफल में भक्ति चरितार्थ होती है अर्थात् तन्मयता से तदात्मयता तथा तदात्मयता से तद्रूपता सिद्ध होती है। जिसका प्रत्यक्ष रूप गुणात्मक परिवर्तन ही है। गुणात्मक परिवर्तन सिद्ध न हो ऐसी तद्रूपता, तदात्मयता एवं तन्मयता की मौलिकता सिद्ध नहीं होती है। गुणात्मक परिवर्तन का प्रमाण मानवीयता, देव मानवीयता एवं दिव्य मानवीयता में प्रमाणित होता है। जागृति ही तन्मयता का मूल उद्देश्य है अथवा उसकी चरितार्थता है। जागृति पूर्वक ही यह प्रमाणित होती है। जागृति न होने की स्थिति में इन सब प्रयासों का निरर्थक होना भावी है। निरर्थकता मानव की वांछित उपलब्धि नहीं है। उससे यह स्पष्ट होता है कि भक्ति में सफलता उभयाधिकार पर निर्भर करती है। सफलता ही प्रमाण एवं परम्परा है। क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता ही जीवन का चरमोत्कर्ष है। पूर्णता से अधिक उपलब्धि प्रमाण सिद्ध नहीं है। पूर्णता के लिए ही जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति श्रम, गति, परिणामशील है। पूर्णता से अधिक मानव में, से, के लिए आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता विहीन उपलब्धि के लिए प्रयास नहीं है। यदि है, सफल नहीं है। स्थापित मूल्य का अनुभव सहित शिष्टता पूर्ण आचरण ही भय मुक्ति का प्रत्यक्ष रूप है। स्थापित मूल्यानुभूति एवं शिष्टता के बिना भय मुक्ति नहीं है। भय मुक्ति के लिए तन्मयता में प्रसक्ति है। यह क्रम से अमानवीयता से विवश इकाई के लिए मानवीयता पूर्ण सेव्य, मानवीयता पूर्ण इकाई के लिए देव मानवीयता पूर्ण सेव्य, देव मानवीयता पूर्ण इकाई के लिये दिव्य मानवीयता सेव्य अथवा दिव्य मानवीयता पूर्ण इकाई अन्य सब के लिए सेव्य और देव मानवीयता पूर्ण इकाई अमानव एवं मानव के लिए सेव्य होना प्रसिद्ध है। यही सफलता है। पूर्ण मूल्यानुभूति ही भक्ति की पराकाष्ठा है।

54.

योगाभ्यास जागृति के अर्थ में चरितार्थ होता है।

यह मानवीयतापूर्ण जीवन के साथ आरंभ होता है जो श्रवण, मनन एवं निदिध्यास पूर्वक अथवा धारणा, ध्यान एवं समाधि पूर्वक चरितार्थ होता है। जीवन चरितार्थता ही आचरण पूर्णता है। योगाभ्यास शास्त्राध्ययन, उपदेश एवं स्वप्रेरणा का योगफल है। इन सब में प्रमाणिकता का होना अनिवार्य है। मानवीयता पूर्ण जीवन के साथ वांछित वस्तु देश एवं तत्व में चित्त-वृत्तियों का संयत होना पाया जाता है। यही धारणा है। धारणा पर पूर्णाधिकार के अनंतर उसके

सारभूत भाग में अथवा वांछित भाग में चित्त-वृत्ति का केन्द्रीभूत होना पाया जाता है जो ध्यान का द्योतक है। ध्येय के अर्थ मात्र में अर्थात् ध्येय के मूल्य में चित्त-वृत्ति एवं संकल्प का निमग्न होना ही समाधि है। यही सत्तामयता में अनुभूति है। यही योगाभ्यास की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। इसी क्रम के अर्थ में श्रवण, मनन एवं निदिध्यास चरितार्थ होता है। श्रवण का तात्पर्य धारणा से है। मनन का तात्पर्य निष्ठा एवं ध्यान से है। निदिध्यास का तात्पर्य सहज निष्ठा एवं सहज समाधि है। सहज समाधि का तात्पर्य सत्ता में अनुभूतिमयता की निरंतरता या अक्षुण्णता है। अक्षुण्णता प्रत्येक क्रियाकलाप एवं कार्यक्रम में भी स्थिर रहने के अर्थ में है। यही भ्रम मुक्ति है। योगाभ्यास पूर्णतया सामाजिक एवं व्यवहारिक है। अव्यवहारिकता एवं असामाजिकता पूर्वक योगाभ्यास होना संभव नहीं है। मानवीयता के अनंतर ही अभ्युदय का उदय होता है। पूर्णता पर्यन्त इस उदय का अभाव नहीं हैं। उदय एवं अभ्यास का योगफल ही गुणात्मक परिवर्तन है जो योगाभ्यास पूर्वक चरितार्थ होता है।

व्यायाम, आसन व प्राणायाम योगाभ्यास के लिए सहायक हैं। शरीर का स्वेच्छानुरूप उपयोग करने, स्वस्थ रखने के लिए ये प्रक्रियाएं आवश्यक हैं। वातावरण अभ्यास के लिए सहज उपलब्धि है। कृत्रिम वातावरण ही अति प्रभावशाली है जिसका निर्माण मानव ही करता है। कृत्रिम वातावरण मानवीयता पूर्ण या अमानवीयता भेद से दृष्टव्य है। कृत्रिम वातावरण के लिए शिक्षा एवं व्यवस्था प्रधान तत्व हैं। प्रकाशन, प्रदर्शन व प्रचार भी उसी के अनुरूप संपन्न होता है। विपरीत वातावरण अर्थात् अमानवीय वातावरण में योगाभ्यास होने के लिए स्वयं मानवीयता से परिपूर्ण होना अनिवार्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह साधनों में गण्य है। योगाभ्यास का पूर्व साधन या मूल साधन मानवीयता ही है। मानवीयता पूर्ण जीवन में वैचारिक समत्व स्वभावत: सिद्ध होता है जिसमें कायिक एवं वाचिक समत्व प्रत्यक्ष होता है। स्थापित मूल्यानुभूति एवं उसकी निरंतरता ही योगाभ्यास की अर्थवत्ता है। चैतन्य प्रकृति में ही अनुभव योग्य क्षमता योगाभ्यासपूर्वक स्थापित होती है। मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा में ही अनुभव योग्य क्षमता जागृत होती है। ये सब चैतन्य इकाई में होने वाली अविभाज्य क्रियाएं हैं। अनुभूति मूल्यों में, से, के लिए होती है। मन एवं वृत्ति के योग से उपयोगिता एवं मूल्यानुभूति, वृत्ति और चित्त के योग से उपयोगिता एवं कला मूल्यानुभूति, चित्त और बुद्धि के योग से शिष्ट मूल्यानुभूति, बुद्धि व आत्मा के योग से स्थापित मूल्यानुभूति होती है। फलत: सत्तामयता में अनुभूति योग्य क्षमता सिद्ध होती है। यही सत्तामयता में संपृक्तता की अनुभूति है जो ब्रह्मानुभूति है। यही प्रेमानुभूति है। यह आत्मा में होने वाली विशेषानुभूति है। व्यापकता एवं विशालता में ही अनुभूतियाँ हैं।

साम्य सहज एवं पूर्ण भेद से शिष्टता, विशाल, विशालतर एवं विशालतम भेद से स्थापित मूल्य हैं जो इस प्रकार है :-

	विशाल मूल्य		**साम्य शिष्टता**
1.	ममता	-	उदारता
2.	वात्सल्य	-	सहजता
3.	सम्मान	-	सौहार्द्रता
	विशालतर मूल्य	-	**सहज शिष्टता**
4.	कृतज्ञता	-	सौम्यता
5.	श्रद्धा	-	पूज्यता
6.	गौरव	-	सरलता
	विशालतम मूल्य	-	**पूर्ण शिष्टता**
7.	स्नेह	-	निष्ठा
8.	विश्वास	-	सौजन्यता
9.	प्रेम	-	अनन्यता

अलंकार जीवन जागृति क्रम में एक अनिवार्य भाग है। अलंकार यश के अर्थ में प्रायोजित होता है। जीवन जागृति के अर्थ में प्रयोजित है। यश जागृति के लिए प्रेरणा स्रोत है। यश प्रेरणा में ही चरितार्थ है। मानव जीवन में भाषा, भाव, संस्कृति एवं सभ्यता का यश होना प्रसिद्ध है। इनकी प्रमाणिकता ही इनका अलंकार है। जीवन सतर्कता एवं सजगता में, भाषा तात्विकताभिव्यक्ति अथवा रसाभिव्यक्ति में, भाव मौलिकता में, संस्कृति मानवीयता में एवं सभ्यता गुणात्मक परिवर्तन में अलंकृत है। अलंकार की चरितार्थता जागृति के ही अर्थ में होती है। जागृति गुणात्मक परिवर्तन ही है। प्रमाणिकता ही अलंकार है। अलंकार यश का होना स्वाभाविक है। उसकी कीर्तिमानता ही परंपरा है। प्रमाण विहीन परंपरा का परिवर्तन होना भावी है। प्रमाण केवल प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभूति सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन ही है।

रस जीवन में अविभाज्य तत्व है। रस ही मूल्य है। जीवन का मूल्य मूल्यानुभूति योग्य क्षमता है। मूल्य विहीन जीवन रसानुभूति करने में सक्षम नहीं होता है। इसी सत्यतावश उसे जन सामान्य सहज सुलभ सिद्ध करने के लिए रसानुसंधान एवं उसके लिए कार्यक्रम है। स्थापित मूल्य ही मूलत: रस हैं। रस का तात्पर्य ही जीवन सार से है। उसमें से पूर्ण मूल्य ही पूर्ण रस है। यही रसैश्वर्य है। इसे जीवन में प्रत्येक मानव अनुभव करना चाहता है। रसानुभूति के लिए

जीवन में संपूर्ण कार्यक्रम तथा इसी के लिए प्रदर्शन क्रियाकलाप भी सहायक है। इसी में नाट्य अभिनय, नृत्य और प्रहसन भी सहायक हैं। प्रधानत: साहित्य ही इसका माध्यम है। रसानुभूति रति शब्द से इंगित है। मूल्यानुभूति ही अंततोगत्वा तात्विकता एवं रति है। यही साहित्य की मौलिकता, उपादेयता एवं चरितार्थता है। सत्यता ही तात्विकता है। मूल्य और मूल्यानुभूति से अधिक तात्विकता कुछ भी नहीं है। यही रसानुभूति है। साहित्य द्वारा इसी सत्यता के उद्घाटन की अपेक्षा है। सत्यता के उद्घाटन हेतु प्रयुक्त, प्राप्त एवं स्थित साधन ही साहित्य है। ऐसे साधन मानव में शब्दादि पाँच रूपों में हैं। उनमें से शब्द ही वरीयतम साधन है। उसकी तुलना में दूर-दूर तक फैलने व फैलाने योग्य उपयुक्त साधन और कोई नहीं है। शब्द ही भाषा, साहित्य, काव्य, संहिता एवं सूत्र के रूप में प्रयोजित होता है। शब्द भाषा विज्ञान से सुसंस्कृत होकर भाषा के रूप में अवतरित होता है तब वह सार्थक होता है। सार्थकता ही भाषा है। भाषा का तात्पर्य ही है भास-आभास एवं प्रतीति की व्यंजना। साथ ही, उसमें भावग्राही व भाव प्रदायी व्यंजनीयता सिद्ध होती है। मौलिकता ही भाव है। व्यंजनीयता ही संवेदनशीलता है। संवेदनशीलता ही व्यंजनोत्पादीय एवं व्यंजनारत है। अस्तु, भाषा में भाव की, भाषा भाव में शैली एवं भाषा भाव शैली में अलंकार एवं रस की, भाषा भाव शैली अलंकार एवं रस में भाषा विज्ञान तथा भाषा विज्ञान में भाषा के आश्लिष्ट एवं संश्लिष्ट भेद-प्रभेद से साहित्य रचनाएं हैं। साहित्य परंपरा में मौलिक अक्षुण्णता यह है कि मानव की परस्परता में स्थित या स्थिति निर्मित जो रसानुभूति की वाँछाएं-आकाँक्षाएं हैं वे भावपूर्ण वाङ्मय मूर्तियों की सम्प्रेषण एवं स्वागत अथवा व्यंजित होने एवं व्यंजनोत्पादन क्रिया-प्रक्रिया पूर्वक समय सन्निवेशात्मक साधन सहित व्यंजनास्थल में रसारोपण एवं पोषण में रत है। रत का गन्तव्य रति ही है। रति केवल अनुभवात्मक एवं सान्निध्यात्मक ही चरितार्थ हुई है। रस रति में, से, के लिए ही है। इन दोनों प्रकार की रति की मौलिकता को व्यक्त करना और उसे सर्वसुलभ बनाना ही साहित्य का आद्यान्त उद्देश्य है। सान्निध्यात्मक रति संबंध एवं संपर्क मूलक है। यह शिष्टता पूर्वक रसानुभूति का क्रम है। अनुभवात्मक रति स्थापित मूल्यानुभूति के अनंतर शिष्टता एवं सामाजिकता को अभिव्यक्त करती है। यही साहित्य का मूल तत्व है। रस विहीन साहित्य निरर्थक है। रसाभिव्यक्ति होना ही साहित्य में आद्यान्त गरिमा एवं चरितार्थता है। रस ही जीवन सर्वस्व है। मानव जीवन चरितार्थता के लिए अनवरत प्यासा है। साहित्य के माध्यम से रस का मुखरित होना पाया जाता है। संयोग विकास जागृति पूर्वक रसानुभूति होती है। जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य का अनुभव ही रस है। रसानुभूति योग्य प्रेरणा ही साहित्य है। मानव जीवन में पाण्डित्य पूर्वक ही साहित्य स्पष्ट है। यही जीवन दर्शन है। जीवन दर्शन विहीन साहित्य सार्थक नहीं है। जीवन दर्शन ही मानव एवं मानवता को स्थापित करता है। यह रसानुभूति का प्रथम सोपान है। इसी सोपान में रस में तन्मयता सर्वसुलभ होती है। इसी

रसमयता में अधिकार पाने की श्रृंखला में ही देव मानवीयता एवं दिव्य मानवीयता सिद्ध होती है। रसानुभूति में विषमता का अत्याभाव होता है। ऐसे रस नौ स्थापित मूल्यों के रूप में अभिप्रेत हैं। ये सभी मूल्यात्मक रस मानव जीवन में ही चरितार्थ होते हैं। इनमें प्रसक्ति ही रसिकता है। रसिकता गुणात्मक परिवर्तन की द्योतक है न कि कामुकता की। कामुकता गुणात्मक परिवर्तन के लिए सहायक नहीं है। कामुकता परतंत्रित आवेश है। रसानुभूति स्वतंत्राभिव्यक्ति है। रसानुभूति सामाजिक, व्यवहारिक एवं प्रमाणिक है जबकि कामुकता असामाजिक, अव्यवहारिक एवं अप्रमाणिक है। प्रमाणिकता प्रमाणिक क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता के संदर्भ में है। वह केवल गुणात्मक परिवर्तन है। जीवन सर्वस्व रसानुभूति में प्रमाणित है न कि कामुकता में। संपूर्ण प्रकार के अभ्यास की चरितार्थता रसानुभूति में ही है। यही सफल जीवन है। मानवीयता पूर्ण संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्थापूर्वक इसके सर्वसुलभ होने में ही भूमि स्वर्ग होने, मानव देवता होने, धर्म सफल होने एवं नित्य मंगल होना रहना ही सर्वशुभ है।

नित्य मंगल हो।
नित्य उत्सव हो।

परिशिष्ट

अनुभव समुच्चय : ब्रह्मानुभूति में परमानन्द, आत्मानुभूति में आनन्द, बुद्धि की अनुभूति में संतोष, चित्त की अनुभूति में शांति, वृत्ति की अनुभूति में सुख

मूल्य समुच्चय : जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, वस्तु मूल्य

चतुष्टय

अवस्था चतुष्टय : पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था

आयाम चतुष्टय : उत्पादन, व्यवहार, विचार, अनुभव

भय चतुष्टय : प्राणभय, पद भय, धन भय, मान भय

विषय चतुष्टय : आहार, निद्रा, भय, मैथुन

चतुर्दिग उदय : संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था

जीवन लक्ष्य : सुख, शांति, संतोष, आनन्द

मानव लक्ष्य : समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व

त्रय

ऐषणा त्रय : पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा

कार्यक्रम त्रय : आर्थिक कार्यक्रम, सुरक्षात्मक कार्यक्रम, सदुपयोगात्मक कार्यक्रम

क्रिया त्रय : भौतिक क्रिया, बौद्धिक (जीवन) क्रिया, रासायनिक क्रिया

चक्र त्रय : प्राण पद चक्र, भ्राँति पद चक्र, देव पद चक्र

तथ्य त्रय : परिणाम, निर्णय प्रक्रिया के कारण, गुण, गणित ही आद्यान्त आधार है। यही निर्णायक तथ्य त्रय है।

तात्रय : मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता

नियम त्रय : सामाजिक नियम, प्राकृतिक नियम, बौद्धिक नियम

नीति त्रय : धर्म नीति, अर्थ नीति, राज्य नीति

प्रतिष्ठा त्रय : अनुभव में परमानन्द प्रतिष्ठा, विचार में समाधान प्रतिष्ठा, व्यवहार में प्रेम प्रतिष्ठा

सुलभ त्रय	:	प्रयोग, व्यवहार, अनुभव सुलभ
प्रमाण त्रय	:	व्यवहार, प्रयोग, अनुभूति
पूर्णता त्रय	:	गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता
मूल्य त्रय	:	जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य
व्यवहार त्रय	:	कायिक, वाचिक, मानसिक
वाद त्रय	:	समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद, अनुभवात्मक अध्यात्मवाद
शक्ति त्रय जागरण	:	इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति, ज्ञान शक्ति का जागरण
काल त्रय	:	भूत, भविष्य, वर्तमान
त्रिधा कार्यक्षेत्र	:	धार्मिक, आर्थिक, राज्यनैतिक
आकांक्षा द्वय	:	सामान्याकाँक्षा संबंधी वस्तुयें, महत्वाकाँक्षा संबंधी वस्तुयें
नीति द्वय	:	अर्थ नीति, राज्य नीति
पंच कोटि मानव	:	पशु मानव, राक्षस मानव, मानव, देव मानव, दिव्य मानव
पाँच स्थितियाँ	:	व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, अंतर्राष्ट्र
विकार	:	**षड् विकार (भ्रम की स्थिति में) :**

1. काम – सम्मोहन पूर्वक
2. क्रोध – विरोधवश
3. लोभ – संग्रहवश
4. मोह – रहस्यतावश
5. मद – अभिमानवश
6. मात्सर्य – असहअस्तित्ववश व द्रोहवश

षड् विकार का गुणात्मक परिवर्तन (मानवीयता की स्थिति में):

1. काम – शिष्टतापूर्ण लज्जा में
2. क्रोध – धैर्य साहस में
3. लोभ – उदारतापूर्वक दया में

4. मोह – अर्हतापूर्वक अपेक्षा में
5. मद – सम्मानाभिव्यक्ति सहित कृतज्ञता में
6. मात्सर्य – सहअस्तित्वपूर्ण अभयता में

नवधा स्थापित मूल्य : कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान, स्नेह

नवधा शिष्ट मूल्य : सौम्यता, सरलता, पूज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, उदारता, सौहार्द्रता, निष्ठा

द्विधा वस्तु मूल्य : कला मूल्य (सुंदरता मूल्य), उपयोगिता मूल्य

ग्रंथ

''अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन''
बनाम
''मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद''

दर्शन (मध्यस्थ दर्शन)

★ मानव व्यवहार दर्शन
★ मानव कर्म दर्शन
★ मानव अभ्यास दर्शन
★ मानव अनुभव दर्शन

वाद (सहअस्तित्ववाद)

★ व्यवहारात्मक जनवाद
★ समाधानात्मक भौतिकवाद
★ अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

शास्त्र (अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन)

★ व्यवहारवादी समाजशास्त्र
★ आवर्तनशील अर्थशास्त्र
★ मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

संविधान

★ मानवीय आचार संहिता रूपी मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

परिभाषा

★ परिभाषा संहिता

अन्य

★ विकल्प
★ अध्ययन बिंदु
★ आरोग्य शतक
★ जीवन विद्या योजना
★ मानव संचेतनावादी शिक्षा-संस्कार योजना
★ परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना

:: मध्यस्थ दर्शन आधारित उपयोगी संकलन ::

परिचयात्मक संकलन

★ जीवन विद्या एक परिचय

सहयोगी संकलन

★ संवाद - भाग-1

★ संवाद - भाग-2

पुस्तक प्राप्ति संपर्क एवं निःशुल्क PDF डाउनलोड के लिए

Website : www.madhyasth-darshan.info

Email. : books@madhyasth-darshan.info